भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन

लेखक
डॉ० एस०एस०सेंगर
एवं
डॉ० वी०डी०मुद्गल

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन

लेखक

डॉ. एस.एस. सेंगर

वरिष्ठ वैज्ञानिक

पशु पोषण विभाग

भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान

इज्जतनगर–243 122 (उत्तर प्रदेश)

एवं

डॉ. वी.डी. मुद्‌गल

निदेशक (भूतपूर्व) केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान

हिसार–125 001 (उत्तर प्रदेश)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग),

भारत सरकार

2000

भारत सरकार, 2000

Government of India 2000

पुनरीक्षक

डा. गुरुचरण सिंह

वरिष्ठ वैज्ञानिक (सेवानिवृत)

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

नई दिल्ली

प्रथम संस्करण : 2000

प्रकाशक

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,

पश्चिमी खण्ड–7, रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली–110 066

प्रस्तावना

भारतीय भाषाओं को स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तरों पर शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इन भाषाओं में उच्च कोटि के प्रामाणिक ग्रंथ पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हों। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने विभिन्न विषय–क्षेत्रों में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण तथा विकास और विश्वविद्यालय–स्तरीय मानक ग्रंथों के मौलिक लेखन तथा अनुवाद की विस्तृत योजना बनाई। 1962–63 में यह दायित्व वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंपा गया। आयोग अब तक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मानविकी, प्रशासन आदि विषय–क्षेत्रों के लगभग 8 लाख हिंदी तकनीकी शब्द विकसित कर चुका है।

इन शब्दों का अब कंप्यूटरीकरण किया जा रहा है जिसके प्रथम चरण में समेकित प्रशासनिक शब्दावली और सामाजिक विषयों की समस्त शब्दावली का कंप्यूटरीकरण किया जाएगा। इस प्रक्रिया में सभी विषयों के शब्द–संग्रहों के हिंदी–अंग्रेजी तथा अंग्रेजी–हिंदी दोनों संस्करण साथ–साथ तैयार होंगे। कंप्यूटरीकरण के दूसरे चरण में अंग्रेजी–हिंदी के अतिरिक्त विभिन्न भारतीय भाषाओं को डाटाबेस में भरा जाएगा जिसके आधार पर एक कंप्यूटर–आधारित राष्ट्रीय शब्दावली बैंक विकसित करने की योजना है। इसके पश्चात् हिंदी की तकनीकी शब्दावली को विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिपिबद्ध किया जाएगा और अंत में राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र द्वारा देश के विभिन्न जिलों में स्थापित की जा रही उपग्रह सूचना सेवा (Nicnet) से तकनीकी शब्दावली के इस डाटाबेस को जोड़ा जाएगा जिससे देश के विभिन्न भागों में कंप्यूटर के माध्यम से भारतीय भाषाओं के पर्याय तुरंत उपलब्ध हो सकेंगे।

पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग को सहज बनाने तथा इसकी परिभाषागत संकल्पनाएँ स्पष्ट करने की दृष्टि से आयोग विभिन्न विषयों के मानक परिभाषा–कोशों का निर्माण कर रहा है। तकनीकी शब्दावली को अखिल भारतीय स्वरूप तथा मान्यता देने की दृष्टि से ग्यारह भारतीय भाषाओं में विभिन्न विषयों के अखिल भारतीय मूलभूत शब्द तैयार किए जा रहे हैं। आयोग द्वारा विकसित तकनीकी शब्दावली के प्रयोग को बढ़ावा देने और कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में हिंदी के माध्यम से तकनीकी विषयों के अध्यापन का विकास करने की दृष्टि से विश्वविद्यालय के विभिन्न विषयों के अध्यापकों के लिए शब्दावली कार्यशालाएँ/प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित

किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त ज्ञान–विज्ञान की हिंदी पत्रिकाएं भी आयोग द्वारा प्रकाशित की जाती हैं।

हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में सभी प्रकार से उपादेय पारिभाषिक शब्दावली के उपलब्ध हो जाने के पश्चात् इनके प्रयोग हेतु विभिन्न विषयों में विश्वविद्यालय स्तर के मौलिक ग्रंथों के निर्माण तथा अनुवाद का विशाल कार्य हाथ में लिया गया। भारत सरकार ने राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों और प्रकाशकों के सहयोग से 1962–63 में ग्रंथ निर्माण का कार्य शुरू किया। सन् 1967 के अखिल भारतीय कुलपति सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि स्नातक स्तर पर भारतीय भाषाओं को शिक्षा एवं परीक्षा का माध्यम बना देना चाहिए। सन् 1968 में संसद के दोनों सदनों द्वारा अपनाई गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्यान्वयन के लिए शिक्षा मंत्रालय ने माध्यम परिवर्तन की आवश्यक तैयारी के रूप में ग्रंथ निर्माण का एक व्यापक कार्यक्रम अपनाया, जिसके अधीन चौथी पंचवर्षीय योजना में 18 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया और प्रत्येक राज्य को अपनी प्रादेशिक भाषा में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकें तैयार करने के लिए एक–एक करोड़ रुपए की धनराशि देने की व्यवस्था की गई। इसी क्रम में भारत सरकार के अनुदान से 15 राज्यों में राज्य–स्तरीय ग्रंथ अकादमियां तथा पाठ्य-पुस्तक मंडल स्थापित किए गए जिनका कार्य भारतीय भाषाओं में विभिन्न विषयों की विश्वविद्यालय–स्तरीय पाठ्य पुस्तकें निर्मित तथा प्रकाशित करना है। विश्वविद्यालय–स्तरीय ग्रंथ निर्माण के इस कार्यक्रम के अंतर्गत विज्ञान, मानविकी तथा सामाजिक विज्ञान से संबंधित महत्वपूर्ण विषयों की पांडुलिपियों के लेखन और प्रकाशन का दायित्व इन संस्थाओं को सौंपा गया और इनकी मॉनीटरिंग तथा समन्वय स्थापित करने का दायित्व वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंपा गया।

अब तक किए गए प्रयासों के फलस्वरूप तकनीकी विषयों की हिंदी में लगभग 2,900 पुस्तकें तथा अन्य भारतीय भाषाओं की 8,700 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कृषि, आयुर्विज्ञान और इंजीनियरी की पुस्तकों का निर्माण शब्दावली आयोग के तत्वावधान में हो रहा है। अब तक कृषि की 240, आयुर्विज्ञान की 76 तथा इंजीनियरी की 85 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन ग्रंथों के तैयार हो जाने से भारतीय भाषाओं में विज्ञान तथा मानविकी के लगभग सभी विषयों में स्नातक स्तर की पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता काफी हद तक पूरी हो चुकी है। स्नातकोत्तर तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के क्षेत्र में पर्याप्त पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है लेकिन अभी भी काफी कार्य शेष है।

हमारे देश की संपूर्ण अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। अतः यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को अपनी क्षेत्रीय भाषा में कृषि विज्ञान के स्नातक और स्नातकोत्तर स्तरों के मानक ग्रंथ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों जिससे उन्हें कृषि विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने में किसी प्रकार की असुविधा न हो।

प्रस्तुत पुस्तक 'भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन' नामक पुस्तक का लेखन डॉ. एस. एस. सेंगर, वरिष्ठ वैज्ञानिक, पशु पोषण विभाग, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर और डॉ. वी. डी. मुदगल, निदेशक, गोधन परियोजना निदेशालय, जी–123 शास्त्री नगर, मेरठ ने तथा पुनरीक्षण कार्य डॉ. गुरुचरण सिंह, वरिष्ठ वैज्ञानिक (सेवानिवृत्त), भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने किया है। पुस्तक की विषयवस्तु को 11 अध्यायों में विभाजित किया गया है जिसमें भैंस के संबंध में विविध पहलुओं यथा – विभिन्न नस्लों, जनन एवं भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक, प्रजनन, पोषण एवं आहार, बछड़े–बछड़ियों के पालन–पोषण एवं प्रबंधन, दूध एवं मांस, बीमारियाँ एवं उनकी रोकथाम आदि का सविस्तार वर्णन किया गया है। पुस्तक के अंत में संदर्भ साहित्य, हिंदी–अंग्रेजी शब्दावली और देश में उपलब्ध भैंस उत्पादन फार्मों का विवरण भी दिया गया है। पुस्तक की भाषा को सरल व सुबोध बनाने की भरसक कोशिश और चित्रों व रेखाचित्रों के माध्यम से विषयवस्तु को समझाने की चेष्टा की गई है। इसमें वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार द्वारा निर्मित पारिभाषिक शब्दावली का अधिकाधिक प्रयोग करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः लेखक और पुनरीक्षक के अथक परिश्रम के फलस्वरूप यह कार्य संपन्न हो पाया है जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

आशा है, यह पुस्तक पशु विज्ञान विषय से संबंधित पाठ्य पुस्तकों के अभाव को पूरा करने में सहायक सिद्ध होगी और छात्र, अध्यापक, अनुसंधानकर्ता, प्रसार कार्यकर्ता, पशुपालक सभी इससे लाभान्वित होंगे।

(डॉ. हरीश कुमार)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
(मानव संसाधन विकास मंत्रालय)
भारत सरकार

नई दिल्ली
दिसंबर, 2001

दो शब्द

भैंस हमारा अपना पशु है और हमारे ग्रामीण जन–जीवन में इसका एक विशेष स्थान है। आरम्भ से ही इस पशु का योगदान दुग्ध उत्पादन, भार वाहन एवं कुछ हद तक शारीरिक प्रोटीन के उत्पादन में विशेष रूप से रहा है। आज हम दुग्ध उत्पादन में विश्व स्तर पर तीसरे स्थान पर हैं और देश के दुग्ध उत्पादन में 55% से भी अधिक भाग भैंस द्वारा प्राप्त होता है। इतना होते हुए भी हमारे विद्यार्थियों एवं पशु पालकों के लिये यह पशु एक पहेली ही बना हुआ है और यह आवश्यक है कि इस पशु के बारे में अधिक से अधिक ज्ञान दिया जाये। इसी बात को ध्यान में रखते हुए "भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबन्धन नामक पुस्तक की रचना की गयी है। इस पुस्तक में भैंस के सम्बन्ध में सभी पहलुओं पर सविस्तार वर्णन किया गया है। सबसे पहले इसके बारे में जानकारी एवं विभिन्न नस्लों का सटीक वर्णन एवं देश–विदेश में इसके पालन–पोषण पर प्रकाश डाला गया है, उसके पश्चात् भैंसों में जनन एवं भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीकी का विवेचन है तथा इसके पश्चात् विभिन्न जलवायुओं में इस पशु का पालन–पोषण एवं प्रजनन को व्यापक रूप से बताया गया है। वैसे तो रूमनधारी पशुओं में गाय, भैंस, बकरी तथा भेड़ सभी आते हैं परन्तु भोजन को पचाने एवं उसका उपयोग करने में सभी भिन्नता रखते हैं। यह पशु निष्कृष्ट चारों को अच्छी प्रकार पचाने में समर्थ हैं और यह क्षमता भैंस में गायों की अपेक्षा अधिक है। इसीलिए भैसों का पोषण एवं आहार विषय के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश भी डाला गया है। इनके रख–रखाव एवं गृह व्यवस्था सम्बन्धी जानकारी भी दी गयी है। बछड़े–बडड़ियों के पालन पोषण एवं प्रबन्ध के महत्व को देखते हुए इस पर विशेष सामग्री दी गयी है। इस पशु में दूध एवं मांस दोनों के उत्पादन की विशेष क्षमता है इसलिए इन दोनों का विवरण भी दिया गया है। इन पशुओं में होने वाली बीमारियों एवं उनकी रोकथाम की जानकारी भी इस पुस्तक में दी गयी है। अन्त में साहित्य में उपलब्ध सन्दर्भों को भी दिया गया है एवं दो परिशिष्टों में से एक में हिन्दी-अंग्रेजी शब्दावली एवं दूसरे में हमारे देश में उपलब्ध भैंस उत्पादन फार्मों का विवरण है।

पुस्तक की भाषा को सरल एवं सुबोध बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है एवं विषय को चित्रों एवं रेखाचित्रों द्वारा अधिक से अधिक स्पष्टता प्रदान करने की चेष्टा की गयी है। तकनीकी शब्दों को "पारिभाषिक शब्दकोष" (वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित) से प्रयुक्त किया गया है। यथास्थान इन शब्दों को आम भाषा में भी देने का प्रयत्न किया गया है।

अभी तक इस विषय पर बहुत कम पुस्तकें ही उपलब्ध हैं और वे केवल अंग्रेजी भाषा में ही हैं। परन्तु इस पुस्तक में सभी सम्बन्धित साहित्य को हिन्दी में दिया गया है और भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनुसन्धानों को विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और अधिकांश विद्यार्थी इसे समझते एवं प्रयोग करते हैं। इसलिये आज की आवश्यकता को देखते हुए और राष्ट्रभाषा में शिक्षा के प्रसार हेतु मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के अनुरोध पर यह पुस्तक विशेष रूप से विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिये लिखी गयी है। अतः हम ऐसी आशा करते हैं कि यह पुस्तक अनुसंधानकर्ताओं, स्नातकों, पशुपालकों एवं पशु पालन के विस्तार हेतु लगे कार्यकर्ताओं के लिए भी सहायक सिद्ध होगी और इससे उपयोगी व समुचित जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

हिन्दी भाषा में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन पर लिखी गयी यह मौलिक पुस्तक सभी को लाभान्वित करेगी और इसके द्वारा हिन्दी भाषा का पठन–पाठन का अधिक प्रसार हो सकेगा, ऐसी हमारी आशा है।

इस पुस्तक को प्रस्तुत करने के लिए जिन–जिन महानुभावों का विशेष योगदान रहा है उनका हम हृदय से आभार प्रकट करना चाहते हैं।

एस.एस. सेंगर
एवं
वी.डी. मुद्गल

जनवरी, 1999

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
1.	**भैंसों की स्थिति एवं वितरण**	
	विश्व में भैंसों की संख्या	1
	केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान की स्थापना	5
	अखिल भारतीय भैंस अनुसंधान समन्वित योजनाऐं	5
	भारत में भैंसों की वर्तमान संख्या एवं दुग्ध उत्पादन	7
2.	**भैंसों की नस्लें**	9
	भैंसों का वर्गीकरण	10
	मुर्रा	10
	नीली–रावी	11
	कुण्डी	13
	सूरती	15
	मेहसाना	16
	जाफरावादी	18
	भदावरी	20
	तराई	21
	नागपुरी	22
	पंथारपुरी	23
	माण्डा	23
	जेरन्गी	24
	कालाहाण्डी	25
	सम्बलपुर	26
	टोंडा	26
		27

निकट पूर्व और यूरोप की भैंसें 27
ईराक 27
ईरान 28
सीरिया 28
मिस्र 28
इजराइल 28
भैंसों के संकरण 29
फिलीपाइंस 29
कम्पूचिया 30
वियतनाम 30
चीन 30
इण्डोनेशिया 32

3. भैंसों में जनन 33
परिपक्वता 33
प्रथम बार बच्चा देने की आयु 34
मद चक्र 35
बच्चा जनन के पश्चात् भैंसों में मद 36
भैंसों में सर्विस पीरीयड 37
भैंसों में गर्भावधि 38
दुग्ध स्रवण अवधि 38
बच्चा देने का अन्तराल 39
भैंसों में प्रजनन क्षमता 40
भैंसों में कृत्रिम गर्भाधान 41
भैंसों में जनन अंग 41
भैंसों में जनन समस्यायें 43
शारीरिक कारण 43
दुर्घटना संबंधी कारण 48
मनोवैज्ञानिक कारण 48

पोषण संबंधी कारण 50
वैकृति संबंधी कारण 50
भ्रूण प्रतिरोपण तकनीकी 51
भारत में भ्रूण प्रतिरोपण कार्य 52
भ्रूण प्राप्ति की विधियां 52
भैंसों में भ्रूण प्रतिरोपण की विधि 52

4. भैंस पालन एवं जलवायु 56
निम्न अक्षांश वाली जलवायु 56
विषवत रेखीय वर्षावन जलवायु 56
उष्ण कटिबंधी वृष्टि सवाना जलवायु 57
उष्ण कटिबंधीय मानसून जलवायु 57
उष्ण मरूस्थल जलवायु 58
मध्य अक्षांश वाली जलवायु 58
भूमध्यसागरीय जलवायु 58
श्वसन दर, नाड़ी गति, शारीरिक ताप एवं जलवायु 59
रक्त कोशिकायें एवं जलवायु 63
भैंसों में वृद्धि एवं जलवायु 64
भैंसों में जनन एवं जलवायु 65
आहार प्राप्ति, उपयोग एवं जलवायु 69
दुग्ध उत्पादन एवं जलवायु 75
पशु उत्पाद भंडारण एवं जलवायु 75

5. भैंसों में प्रजनन 79
प्रजनन की कला 79
प्रजनन की विधियाँ 80
प्राकृतिक प्रजनन 80
कृत्रिम प्रजनन 80
अंतः प्रजनन 82
संकरण 82

भारत 82
नेपाल 83
चीन 85
थाइलैंड 90
बुलगेरिया 94
मिस्र 96
वरण एवं निकृष्टन 96
समलक्षणी वरण 98
पारवारिक वरण 98
संतति परीक्षण 99
संतति परीक्षण में समस्यायें 101
संतति परीक्षण में सावधानियाँ 102
संतति परीक्षण की सफलता के सुझाव 106
भैंसों में आर्थिक उपयोगिता के गुण एवं प्रजनन क्षमता 107
जन्म भार 107
वृद्धि दर 107
परिपक्वता 110
गर्भावधि 111
ब्यांत अवधि 111
दूध संघटन 113
बच्चा जनन का अंतराल 115
प्रजनन क्षमता 115
चयन (वरण) 116
वरण के परिणाम 117

6. भैंसों का पोषण एवं आहार 119
रूमेन का विकास 119
रूमेन का वातावरण 121
रूमेन पाचन एवं चयापचय 125

लाभकारी प्रभाव के लिए रुमेन किण्वीकरण का नियंत्रण 136
विटामिनों का संश्लेषण 140
भैंसों की पोषक आवश्यकता 140
ऊर्जा 143
अनुरक्षण 143
बढ़वार 145
गाभिन अवस्था 146
दुग्ध उत्पादन 147
कार्यकारी 149
प्रोटीन 150
अनुरक्षण 152
बढ़वार 152
गाभिन अवस्था 153
दूध उत्पादन 154
कार्यकारी 156
खनिज 157
कैल्सियम 158
फॉस्फोरस 158
पशु पोषण के विशेष पहलू 159
स्थूल चारे 161
अपुष्टिकर योगज 162
अच्छे राशन की विशेषतायें 164
अनुरक्षण राशन 164
उत्पादन राशन 165
खनिज मिश्रण पूरक रूप में 169
संतुलित राशन खिलाना 170
राशन में ऊर्जा पूर्ति की समस्या 173
अपने फार्म पर उगाये गये चारे का महत्व 177

प्रमुख कृषि एवं ओद्योगिकी उपोत्पादों का भैंसों के आहार में उपयोग 187
गेहूँ का भूसा 190
धान का भूसा (पुआल) 195
मक्का का भुट्टा 199
नीम की खली 199
महुआ की खल 201
करंज की खल 201
कुसुम की खल 207

7. भैंसों की गृह व्यवस्था 208
पशुशाला का निर्माण 208
फार्म भवनों की क्रम से स्थापना 210
पशु पालक के गृह की स्थिति 210
पशुशालाओं की दिशा 210
वायु की दिशा 211
समय एवं श्रम की उपयोगिता 211
पशुशालाओं का रेखाचित्र करने के लिए आवश्क जानकारी 211
पशु रक्षा 211
पशु उत्पादन 211
आर्थिक दृष्टिकोण 212
संवातन 212
पशु आवास के प्रकार 212
खुला आवास 212
खुले आवास के लाभ 213
खुले आवास की सीमायें 214
बंद आवास 214
बंद अपास के लाभ 214
बन्द आवास की सीमायें 215

खुला आवास बनाने की योजना तथा निर्माण 215
आहार व्यवस्था 215
विश्राम करने का क्षेत्र 216
पानी की सुविधा 217
दूध निकालने का कक्ष 217
बछड़ा गृह 220
दूध अभिलेखन कक्ष 221
बच्चा जनन कक्ष 223
अस्वस्थ पशुओं का बाड़ा 223
नवजात बच्चों का बाड़ा 223
बाल पशुओं का बाड़ा 224
सांड़ कक्ष 224
विद्युत प्रकाश की सुविधा 225
बंद आवास (स्टाल/बार्न) की रचना योजना एवं निर्माण 225
सहायक भवन 228
भंडारण भवन 228
अनाज भंडारण 228
चारों का भंडारण 238
यंत्र भंडारण 230
कार्यकर्त्ता कक्ष 233
खाद का भंडारण 233
बाड़ (फेन्सिंग) 233
पशु पकड़ने का यार्ड 233
डेयरी भवनों के रेखा चित्रण 238
भवन निर्माण सामग्री एवं निर्माण 238
लकड़ी 238
ईटें 239
गारा (मोरटार) 239

कंक्रीट 239
नींव 240
दीवारें 240
फर्श 241
छत 242
आहार नांद 245
जल नांद अथवा टंकी 247
नल 247
निकास नाली 247
दरवाजे एवं मार्ग 247
पद स्नान 250
स्प्रे प्लेटफार्म 251
फार्म घेरे 251

8. भैंसों का प्रबंधन 255
प्रबंधक के कार्य 255
प्रबंधकीय उपकरण 256
डेयरी फार्म पर अभिलेख 257
विभिन्न दशाओं में भैंसों का प्रबंधन 259
गाभिन भैंसों की देखभाल एवं प्रबंधन 260
दूध देने वाली भैंसों का प्रबंधन 262
भैंसों में उच्च दूध उत्पादन एवं समुचित प्रबंधन 264
प्रजनन 266
जनन 267
आहार व्यवस्था 268
पानी की आवश्यकता 268
शुष्क भैंसों का प्रबंधन 272
सांड़ों की देखभाल एवं प्रबंधन 274
अंगूठी पहनाना 274

साड़ों को गिराना 274
पैरों को छांटना 275
सीगों को छांटना एवं पॉलिश करना 275
साड़ों की देखभाल में सावधानियाँ 275
सांड़ों की आहार व्यवस्था 275
भारवाही भैंसों का प्रबंधन 276
भारवाही शक्ति उपयोग के क्षेत्र 276
भारवाही भैंसों के गुण 278
आहार व्यवस्था एवं देखभाल 279
भारवाही पद्धति में सुधार लाना 280
भैंस प्रबंधन की अन्य उपयोगी बातें 281
देखभाल में नियमानुकूलन 281
देखभाल में दयालुता 282
व्यायाम 282
डेयरी पशुओं पर खुरैरा करना 283
डेयरी पशुओं की छंटनी 284
भैंसों के अवांछित स्वभाव पर नियंत्रण 284
दूध पीना 284
चाटना 284
रस्सी तोड़ना 285

9. भैंसों में बछड़ा पालन एवं प्रबंधन 297
नवजात शावकों की देखभाल 297
नाड़ बांधना 299
बछड़ों की मृत्युदर 299
नवजात शावकों को खीस खिलाना 300
एंटीबायोटिक खिलाना तथा निवारक उपचार 301
शावकों में आहार पाचन 301
बछड़ों की आहार व्यवस्था 306

बछड़ों को दूध पिलाने का कार्यक्रम 306
बछड़ों को दूध प्रतिस्थापक खिलाना 308
तीन माह से अधिक आयु के बछड़ों की आहार व्यवस्था 311
बछड़ों को दाना खिलाना 313
बछड़ों का रख रखाव 319
बछड़ों की उच्च मृत्यु दर का नियंत्रण 319
वयस्कता की आयु कम करना 320
ग्रीष्म से बचाव के लिए ओसरों का प्रबंधन 321
बछड़ों को सींग रहित करना 325
बछड़ों को बधिया करना 326
पशुओं को चिन्हित करना 327
भैंस के बच्चों की वृद्धि ज्ञात करना 329
जनन अंगों का विकास ज्ञात करना 331
वृद्धि करने वाले बच्चों को टीका लगाना 332
भैंस के बच्चों में कृमि नष्ट करना 332

10. भैंसों में दूध, मांस एवं कार्य उत्पादन 335
दूध उत्पादन 335
भैंस के दूध का संघटन 339
वसा 339
कुल ठोस 340
प्रोटीन 340
लैक्टोज 341
कोलिस्ट्राल 341
सिट्रिक अम्ल 341
खनिज 346
विभिन्न पशुओं के दूध का संघटन 347
दूध पदार्थ बनाने की दृष्टि से दूध का रासायनिक संघटन 351
दूध उत्पादन को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक 361

2- -140/CSTT/ND/2K

ऋतुओं का प्रभाव 361
स्तनों एवं अयन का आकार एवं आकृति 364
थाइरॉइड एवं प्रोलैक्टिन स्तर का प्रभाव 365
जैविक रूप से सक्रिय अमीनों का प्रभाव 365
मांस उत्पादन 367
एशिया प्रशांत महासागर क्षेत्र में मांस की मांग एवं आपूर्ति 369
भारत में भैंस के मांस उत्पादन की स्थिति 372
शव उत्पादन एवं गुणवत्ता 374
मांस उत्पादन एवं गुणता 380
मांस का रासायनिक संघटन 383
तकनीकी गुण 387
संवेदनशील अंग परीक्षण 391
पशु उत्पादों से आय 392
मृत पशु 392
वधशालाओं से प्राप्त पशु उपोत्पाद 394
भैंस के मांस उत्पादन में व्यर्थ पदार्थों की उपयोगिता 394
भैंस के मांस निर्यात की वर्तमान स्थिति एवं भावी अपेक्षायें 396
मांस उत्पादन में विकास की योजनाऐं 399
भैंसों में कार्य उत्पादन 400
भैंसों द्वारा कृषि कार्य 403
संकर भैंसों की कार्यकुशलता 407

11. भैंसों के रोग और उनकी रोकथाम 410
जीवाणुओं से फैलने वाले रोग 410
गलघोंटू 410
लंगड़ी 415
क्षय रोग 417
सूखा रोग 422
एन्थ्रेक्स 425

संक्रामक गर्भपात 425
थनैला 431
न्यूमोनिया 439
पशु प्लेग 441
खुरपका, मुंह पका 445
चेचक 448
चीचड़ी ज्वर 450
खूनी पेचिस 453

संदर्भ 456

हिंदी–अंग्रेजी शब्दावली – परिशिष्ट–I 477
मुख्य भैंस उत्पादन फार्म (अंग्रेजी में) – परिशिष्ट–II 483

अध्याय-1

भैंसों की स्थिति एवं वितरण

हमारे देश में भैंस एक महत्वपूर्ण पशु है। किसानों के लिए यह पशु अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। यद्यपि भैंसों की संख्या गोवंशों की कुल संख्या के एक तिहाई से भी कम है तथापि भारतीय उपमहाद्वीप में भैंसों ने दूध उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हमारे यहां विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा दूध उत्पादन तीव्र गति से बढ़ा है, जहां भैंस एक प्रमुख दुधारू पशु है। भारत के महानगरों और संगठित डेयरी क्षेत्रों में दूध प्राप्त करने का मुख्य साधन भैंस है। यहां पर पशु का मूल्य, उसमें वसा की मात्रा के आधार पर आंका जाता है और भैंस के दूध में इसकी मात्रा अधिक होती है। स्वदेशी डेयरी उत्पाद बनाने के लिए भी भैंस के दूध की उपयोगिता अधिक मानी जाती है। मिश्र, इटली इत्यादि देशों में भी भैंस के दूध को अधिक पसन्द किया जाता है।

यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय उप–महाद्वीप में अधिक दूध देने वाली भैंसों को संभ्रांत पशु–पालकों द्वारा नगरों एवं महानगरों में लाया जाता है और जब ये भैंसें दूध देना बंद कर देती हैं तो उन्हें वध गृह (कसाई खाना) भेज दिया जाता है। परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में अधिक दूध देने वाली भैंसों और उनकी संतानों का विनाश हो जाता है। हरियाणा राज्य में यह कानून बना दिया गया है कि पहले दो ब्यांत वाली भैंसों को बाहर न जाने दिया जाये। अन्य राज्यों में भी इसी प्रकार के प्रयत्न किये जाने चाहिए। ऐसा करने से अच्छी भैंसों से कुछ नर तथा मादा बच्चे प्राप्त हो सकेंगे। मादा भविष्य में अधिक उत्पादन देने वाली भैंसें बन सकेंगी और नर प्रजनन तथा भार वाहन के लिए उपलब्ध हो सकेंगे। सौभाग्य से अब इस देश में भी भ्रूण प्रतिरोपण (एम्ब्रियो ट्रांसफर) तकनीकी को अपनाने का प्रयास किया जा रहा है, इससे अच्छे गुणों वाली भैंसों को सुरक्षित रखा जा सकेगा।

भारत में 1969 से आपरेशन फ्लड् प्रोग्राम प्रारंभ है और इस समय इसके अंतर्गत 52,000 गांव तथा 55 लाख फार्म सम्मिलित हैं, जो कि देश के 23

राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों के 250 जनपदों के 169 दूध शेडों में फैले हुए हैं। निकट भविष्य में डेयरी विकास योजना के अंतर्गत तकनीकी मिशन की स्थापना की जा रही है, जिसमें 275 जनपदों में सहकारी ढांचे स्थापित करने की योजना है, इससे देश के लगभग 60 प्रतिशत भाग में विकास हो सकेगा। इस योजना में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों का भी सक्रिय योगदान रहेगा।

भैंसों की प्रजनन योजनाओं को सफलतापूर्वक चलाने में कुछ समस्यायें इस समय देश के समक्ष हैं और इनका मुख्य कारण संततियों की वंशावलियों एवं संतति परीक्षण तथा भैंसों के चयन में उनकी उपयोगिता के रिकार्डों की अनुपलब्धता है। कुछ संस्थानों के फार्म जहां नर भैंसों के संतति परीक्षण का कार्य होता है, संभवतः उपयोगी नहीं है। अतः नर भैंसों की मांग को पूरा करना संभव नहीं हो पा रहा है। भैंसों के कृत्रिम गर्भाधान को अभी तक हमारे देश में मात्र 10 प्रतिशत तक ही अपनाया जा सका है, जब कि पशुओं की संपूर्ण संख्या में इसका प्रतिशत 70 तक पाया गया है। हिमीकृत वीर्य (फ्रोजन सीमन), अच्छी वंशावली वाले नरों की कमी तथा कृत्रिम गर्भाधान की दर का कम होना, इत्यादि कारणों से अभी तक हमारे देश में भैंसों में कृत्रिम गर्भाधान की तकनीकी को बड़े पैमाने पर अपनाया नहीं जा सका है। भैंसों में देरी से वयस्कता आना, एक जनन काल से दूसरे जनन काल के मध्य अधिक अंतर होना तथा प्रथम बच्चा उत्पन होते–होते भैंस की आयु अधिक हो जाना इत्यादि कारणों से भैंसों की प्रजनन क्षमता प्रभावित होती है। यद्यपि हमारे देश में 138 सघन पशु विकास परियोजनाऐं, 17,213 पशु औषधालय और बड़ी संख्या में कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र उपलब्ध हैं, जिनसे प्रति वर्ष लगभग एक करोड़ गर्भाधान कराये जा सकते हैं तथापि इस दिशा में भविष्य में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

भैंस प्रमुख रूप से निर्धन देशों का पशु है, जहां पशुओं और मनुष्यों की संख्या अधिक है, अतः उन्हें उचित मात्रा में आहार मिलने में भी कठिनाई होती है। यहा पर लगभग प्रत्येक कृषि परिवार में 1–2 भैंसें रखी जाती हैं जो कि पूर्ण रूप से छोटे फार्म प्रक्षेत्र पर निर्भर करती है। भारतीय उप–महाद्वीप में, भार वाहन और मांस प्राप्ति की दृष्टि से अभी तक इस पशु का पूरी तरह से उपयोग नहीं किया जा सका है। भैंसों के अधिकतर कटड़े (नर बच्चे) प्रतिकूल परिस्थितियों में अल्प आयु में ही मर जाते हैं।

विश्व में जोती–बोई जाने वाली कुल भूमि की लगभग 84 प्रतिशत भूमि को जोतने बोने का कार्य पशुओं और हाथों द्वारा किया जाता है। विश्व की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या मात्र चावल के आहार पर निर्भर करती है और धान बोये जाने वाली भूमि की जुताई–बुआई प्रायः भैंसों की सहायता से की जाती है। हमारे देश के विभिन्न भागों में जहां खेतों को तैयार करने के लिए गहरा जोता जाता है, भैंसे (झोटे) इस कार्य को अधिक सुचारू रूप से कर सकते हैं क्योंकि शक्तिशाली होने के साथ–साथ उनके पैरों के खुरों की बनावट ऐसी होती है कि खेतों में कीचड़ उठा कर धान की बुआई की जा सकती है। इसके अतिरिक्त भारी बोझ ढोने, गाड़ी खींचने, कोल्हू चलाने तथा कुऐं से पानी खींचने में भी भैसों का सराहनीय योगदान है। अधिक वर्षा वाले स्थानों में खेती करने के लिए भैंसों को विशेष रूप से काम में लाया जाता है। कुछ देशों में भैंसों पर सवारी भी की जाती है। हमारे देश के इतिहास से भी ज्ञात होता है कि असुर (राक्षस) सवारी के रूप में नर भैंसों का प्रयोग करते थे। भार वाहन के गुणों के कारण भैंसों को 'जीवित ट्रैक्टर' और अच्छी मात्रा में खाद के लिए गोबर देने के कारण 'चलती–फिरती खाद फैक्ट्री' कहा जाता है।

भैंस के मांस का पोषक मूल्य प्रशंसनीय पाया गया है। अन्य जातियों की अपेक्षा भैंस के मांस में भरपूर प्रोटीन होती है। देश के कुल मांस उत्पादन का लगभग 18.7 प्रतिशत भैंसों से प्राप्त होता है। देश में 1975, 1980 एवं 1985 में भैंस के मांस का उत्पादन क्रमशः 117, 120 एवं 135 हजार टन हुआ था। सन् 1974–75 में भैंस के मांस से लगभग 5 करोड़ रुपये और 1975–76 में लगभग 10 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई थी। आगरा, दिल्ली, मुंबई आदि बड़े शहरों में, बड़े पैमाने पर पशु मांस के लिए वध किये जाते हैं और इस मांस को विदेश भेज कर विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है। हमारे देश में पशु पालक भैंस की कटरियों (मादा बच्चों) का इसलिए ध्यान रखते हैं कि भविष्य में इनसे झोटी तैयार होगी और इनसे दूध प्राप्त होगा तथा विक्रय करके अच्छी धनराशि प्राप्त हो सकेगी परन्तु कटड़ों (नर बच्चों) के पालन–पोषण में वे अधिक रूचि नहीं लेते हैं क्योंकि उनको पिलाये जाने वाले दूध को बचा कर अन्यत्र बेचने से उन्हें पर्याप्त धन प्राप्त हो जाता है। माँ के थनों से पर्याप्त दूध प्राप्त न हो सकने के कारण, जन्म के प्रारंभिक काल में ही बच्चे निर्बल हो जाते हैं और बड़ी संख्या में इनकी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार पशु प्रोटीन के स्रोत की प्रचुर मात्रा में हानि होती है। देश में उपलबध

कुल भैंसों की संख्या का अभी तक, मात्र 1.5 प्रतिशत ही मांस के लिए प्रयोग किया जा सका है। यदि अवांछित कटरों को वैज्ञानिक विधि से पाला–पोषा जाये तो पशु–पालकों को जीविका भी प्राप्त हो सकती है और देशवासियों को मांस के रूप में उच्च पौष्टिक मूल्य का खाद्य पदार्थ भी कम लागत में मिल सकता है।

निम्न कोटि के खाद्य पदार्थों को अच्छे गुणों वाले दूध अथवा मांस में बदलने के लिए भैंस बहुत उपयोगी मानी जाती है। गायों की अपेक्षा भैंसों में दुष्पचनीय तन्तु (क्रूड फाइवर) को 5 प्रतिशत अधिक पचाने की क्षमता होती है। ये पशु दूध उत्पादन के लिए उपापचय ऊर्जा को 4–5 प्रतिशत अधिक प्रयोग करने की क्षमता रखते हैं। भैंसों में ये क्षमताऐं, आंशिक रूप से रूमेन में जीवाणुओं की संख्या तथा आंशिक रूप से उनके पाचन संस्थान में आहार का अधिक समय तक रूकना है जिससे जीवाणुओं को क्रिया करने के लिए अधिक समय मिल जाता है। भैंसों में अन्वेषणों के द्वारा सिद्ध किया गया है कि वे कम प्रोटीन वाले आहार पर निर्वाह कर सकती हैं तथा आहार में नाइट्रोजन की मात्रा बराबर–बराबर देने की स्थिति में भैंसों में गायों की अपेक्षा अधिक मात्रा में नाइट्रोजन की संतुलन (धारण) क्षमता पायी गयी है।

भैंसों में एक और महत्वपूर्ण समस्या जीवन के प्रारंभिक काल में बच्चों की मृत्यु दर का अधिक होना है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भैंस एक विशेष ऋतु, प्रायः अगस्त से नवम्बर तक बच्चा देती है, इसके पूर्व के महीनों (ग्रीष्म ऋतु) में हरे चारों की उपलब्धि कम होने के कारण बच्चा देने वाले पशुओं के आहार में विटामिन ए की मात्रा कम हो जाती है। इसका प्रभाव बच्चों को प्राप्त दूध पर भी पड़ता है, जिससे बच्चों में रोगों को सहन करने की क्षमता कम हो जाती है और वे अधिक संख्या में मरते हैं। भैंसों से अच्छा और अधिक दूध प्राप्त करने के लिए, हरे चारों की व्यवस्था परमावश्यक है परन्तु देश के अनेक भागों में सिंचाई के पर्याप्त साधन न होने से हरे चारों की उपलब्धता में कठिनाई होती है और ऐसी विषम परिस्थितियों में सूखे चारों को खिलाने की आवश्यकता पड़ जाती है। सूखे चारे जिनमें कि धान का पुआल, गन्ने की खोई और गेहूँ का भूसा आते हैं, पोषण की दृष्टि से निकृष्ट होते हैं। इनमें प्रोटीन, ऊर्जा एवं विटामिन की मात्रा अत्यंत कम तो होती ही है, साथ में इनकी पाचनशीलता भी कम होती है। अतः आवश्यक है कि ऐसे चारों को उपचारित करके खिलाया जाये। उपचारण की सर्वोत्तम विधि यह है कि 100 किलोग्राम

चारे पर, 40 लिटर पानी में 4 किलोग्राम यूरिया घोल कर, हजारे (फव्वारे) द्वारा छिड़क कर भली–भांति मिला दिया जाये। इस चारे को साइलों में भर कर अथवा अलकाथिन चद्दर लपेट कर एक माह में भूसे का साइलेज बन कर तैयार हो जाता है। इसको खिलाने से पशुओं को कुछ हद तक दूध उत्पादन के लिए ऊर्जा एवं प्रोटीन की मात्रा प्राप्त हो सकती है। लगभग 4–5 किलोग्राम हरा चारा प्रतिदिन प्रति पशु खिलाने से पशुओं को पर्याप्त विटामिन 'ए' बनाने के लिए, कैरोटिन की आवश्यक मात्रा प्राप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन प्रति पशु लगभग 30 ग्राम साधारण नमक तथा 40 ग्राम खनिज मिश्रण प्राप्त होना आवश्यक है। आधुनिक परिस्थितियों में जब कि चारों के उगाने के क्षेत्र में कमी हो रही है तथा चारागाह पहले से ही कम हो गये हैं, दूध देने वाले पशुओं को निम्न पोषक मूल्य वाले फार्म अवशेष पर निर्भर रहना पड़ेगा। पशुओं के आहार में सामान्यतः प्रयोग न किये जाने वाले खाद्य पदार्थ उदाहरणार्थ – वधगृह के अवशेष, बबूल के बीज, महुआ, कुसुम और करंज की खलियाँ इत्यादि का प्रयोग भी बड़े पैमाने पर प्रारंभ हो गया है।

विश्व में भैंसों की संख्या

विश्व की कुल भैंसों में लगभग 97 प्रतिशत भैंसें एशिया में पाई जाती हैं और विश्व की गाय तथा भैंसों की पूरी संख्या को मिलाकर लगभग 10 प्रतिशत भैंसों की संख्या हैं। एशिया में गाय और भैंसों की कुल संख्या का लगभग 25 प्रतिशत भैंसें हैं और दोनों प्रजातियों से प्राप्त होने वाले दूध का लगभग 45 प्रतिशत दूध, मात्र भैंसों से प्राप्त होता है। भारत में भैंसों की संख्या, गाय और भैंसों की कुल संख्या का लगभग 25 प्रतिशत है तथा देश में उत्पन्न होने वाले दूध (50 मिलियन टन) का लगभग 55 प्रतिशत, मात्र भैंसों द्वारा उत्पन्न किया जाता है।

केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान की स्थापना

सांड संतति परीक्षण फार्म, हरियाणा को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा अधिग्रहण कर लेने के पश्चात् इसी फार्म पर 1985 में केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार की स्थापना हुई। विश्व में भैंस अनुसंधान संस्थान की स्थापना एक ऐतिहासिक घटना थी। इस संस्थान का प्रारंभ 1255 एकड़ भूमि और लगभग 1,100 भैंसों की कुल संख्या के साथ हुआ। इस संस्थान में प्रशासनिक अनुभाग के अतिरिक्त भैंसों पर अनुसंधान कार्य करने के लिए

सारणी-1.1 विश्व के विभिन्न देशों में भैंसों की संख्या (हजारों में) तथा दूध उत्पादन (हजार टनों में) की मात्रा।

देश का नाम	भैंसों की संख्या			भैंसों के दूध का उत्पादन		
	1975	1985	1988	1975	1985	1988
1. भारतवर्ष	60,544	64,500	75,605	16,098	21,270	26,800
2. चीन	29,923	19,546	20,860	1,035	1,620	–
3. पाकिस्तान	10,563	13,070	13,900	3,998	7,100	–
4. थाइलैंड	5,947	6,250	6,403	6	7	–
5. फिलीपाइंस	5,050	4,325	2,890	18	18	–
6. नेपाल	3,860	4,500	2,890	450	560	–
7. मिश्र	2,204	2,415	2,550	1,150	1,350	–
8. इंडोनेशिया	2,786	2,424	3,040	–	–	–
9. वियतनाम	2,250	2,800	2,680	29	56	–
10. बर्मा (मयानमार)	1,719	2,100	2,200	36	68	–
11. बंगला देश	696	1,800	1,964	43	27	–
12. रूस	427	320	–	–	–	–
13. रोमानिया	209	230	212	–	–	–
14. ब्राजील	165	720	1,234	–	–	
15. इटली	89	100	113	60	58	–
16. बुलगेरिया	68	33	23	31	23	–
17. यूगोस्लाविया	66	41	25	–	–	–
विश्व	131,135	129,283	–	23,365	32,503	–

प्रमुख चार विभाग हैं – 1. भैंस पोषण, 2. भैंस प्रजनन एवं आनुवंशिकी, 3. भैंस क्रिया विज्ञान, जनन एवं कृत्रिम गर्भाधान तथा 4. भैंस प्रबन्ध। इसके अतिरिक्त चारा उत्पादन, प्रसार और भैंस स्वास्थ्य एकक भी हैं। फार्म मशीनरी की देखभाल के लिए संस्थान ने एक छोटी 'कार्यशाला' की स्थापना की है। संस्थान का एक उप–अहाता (कैम्पस) पंजाब में नाभा (वीर डोसान्जट फार्म) पर स्थित है। हिसार मुख्य अहाता पर 'मुर्रा' और नाभा में 'नीली–रावी' भैंसों का रखा गया हैं इस संस्थान के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. भैंस उत्पादन बढ़ाने के लिए भैंस पोषण, भैंस क्रिया विज्ञान, जनन तथा कृत्रिम गर्भाधान, भैंस प्रजनन एवं आनुवंशिकी एवं भैंस प्रबंधन जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर अनुसंधान कार्यों को चलाना।

2. दूध, मांस तथा भार वाहन के लिए भैंसों पर अन्तर्देशीय अनुसंधान की परियोजना को प्रारंभ करना।

3. देश के विभिन्न भागों में भैंस अनुसंधान की समन्वित योजनाओं का संचालन करना।

4. प्रयोगशालाओं में किये गये अन्वेषणों के आधार पर तकनीकी हस्तांतरण का कार्य करना।

अखिल भारतीय भैंस अनुसंधान समन्वित योजनाएँ

भैंस उत्पादन के विभिन्न विषयों पर अनुसंधान कार्यों का संचालन करने के लिए चतुर्थ योजना (1970–71) के मध्य हमारे देश में ये योजनाएँ प्रारंभ की गई थीं। इसके अन्तर्गत भैंस पालन के विभिन्न विषयों पर दक्षता प्राप्त वैज्ञानिकों की टीम परस्पर मिल–जुल कर अनुसंधान कार्य करते हैं। अखिल भारतीय भैंस अनुसंधान समन्वित योजनाएँ देश के निम्नलिखित भागों में कार्यरत हैं।

1. राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
2. कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)
3. कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़ (कर्नाटक)
4. राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

इन योजनाओं के अन्तर्गत, करनाल और लुधियाना केन्द्रों पर मुर्रा एवं मुर्रा टाइप तथा अन्य दो केन्द्रों पर सूरती जाति की भैंसें रखी गई हैं। इन योजनाओं के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

1. भैंसों की आर्थिक उपयोगिता की दृष्टि से उपयोगी आनुवंशिकी सामर्थता का मूल्यांकन करना और इसके लिए उपर्युक्त प्रजनन तथा प्रबंधन कार्यों का विकास करना।

2. भैंस के मौसमी प्रजनन से संबंधित समस्याओं का अध्ययन करके इनमें सुधार करना।

3. भैंसों से संबंधित उपयोगी क्रियाओं का अध्ययन करके, ग्रामीण क्षेत्रों में उपयोगी तकनीकी को पहुंचाना जिससे पशु पालकों के पशुओं में सुधार हो सके।

4. कम आयु में भैंसों की मृत्यु दर पर अन्वेषण करके, इस समस्या का समाधान निकालना।

5. भैंसों में आर्थिक दृष्टि से सुधार लाने के लिए पशु पालकों से मिलकर संतति परीक्षण कार्य करना।

उपलब्धियाँ

लुधियाना एवं करनाल केन्द्रों पर सांडों के प्रथम चार सेटों का श्रेणीकरण किया गया है और यहां इन सांडों का हिमीकृत वीर्य (फ्रोजन सीमन) अधिक दुधारू भैंसों को गाभिन कराने के लिए प्रयोग किया जा रहा है। धारवाड़ और उदयपुर केन्द्रों पर सांडों के प्रथम दो सेटों का मूल्यांकन किया गया है। लुधियाना कृषि विश्वविद्यालय के सांड नं. 888 ने दूध उत्पादन के पूर्व सभी रिकार्डों को तोड़ दिया है क्योंकि इसकी एक पुत्री ने 305 दिनों के प्रथम ब्यांत में 2,058 से 3,860 लीटर दूध उत्पादन किया है। इसी प्रकार की उपलब्धियाँ राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल पर भी प्राप्त की गई हैं।

अन्वेषणों द्वारा ज्ञात किया गया है कि मादा बच्चों की मृत्यु दर पर जन्म भार का प्रभाव पड़ता है और अधिकतर बच्चों की मृत्यु एक माह की कम आयु में ही हो जाती है।

भैंसों में लगभग 63 प्रतिशत अंतड़ी रोगों से, 12.0 प्रतिशत निमोनिया से और लगभग 9.0 प्रतिशत मृत्यु दोनों के संयुक्त प्रभाव से होती हैं।

आनन्द केन्द्र पर किये गये अन्वेषणों से सिद्ध हो गया है कि 15–16 माह की आयु में ही कटरे, कटियां युवावस्था प्राप्त कर सकते हैं।

भैंसों में ज्ञात किया गया है कि यदि उन्हें व्यायाम कराया जाए (3.29 मि.लि.) तो व्यायाम न कराये जाने (2.25 मि.लि.) की अपेक्षा अधिक वीर्य प्राप्त किया जा सकता है परन्तु वीर्य की गुणवत्ता पर व्यायाम का महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है। वीर्य को हिमीकृत (फ्रीजिंग) करते समय उसमें प्रयोग किये जाने वाले तनक (डाइल्युटर) का महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है। भैंसों को गाभिन करते समय यह ज्ञात हुआ है कि भैंस के पतलेपन से उनमें बच्चे ठहरने की दर में लगभग 18.0 प्रतिशत की कमी हो जाती है। मध्यम शारीरिक दशा वाली भैंसों में बच्चा ठहरने की दर सर्वाधिक पाई गई है। अधिक मोटी भैंसों में भी बच्चे ठहरने की दर सामान्य से लगभग 36.0 प्रतिशत कम पाई गई है।

वैज्ञानिक परीक्षणों से सूरती भैंसों में जल्दी–जल्दी पेशाब करने की आदत को ऋतुमयी भैंसों को पहचानने की सर्वाधिक विश्वसनीय विधि पाया गया है। इससे पशु पालकों को भैंसों को गाभिन कराने में बहुत सहायता मिलती है।

भारत में भैंसों की वर्तमान संख्या एवं दुग्ध उत्पादन

मुद्गल (1988) ने एक राष्ट्रीय कार्यशाला में स्पष्ट किया कि वर्तमान में हमारे देश में भैंसों की संख्या 8.5 करोड़ है जो कि एशिया की भैंसों की कुल संख्या का 54% और विश्व का 56% है। देश में 1951 की अपेक्षा दूध का उत्पादन प्रतिवर्ष 1.7 करोड़ टन से लगभग चार गुना बढ़ कर 1996 में 6.6 करोड़ टन हो गया है और अब देश के प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 200 ग्राम दूध प्राप्य हो गया है। यद्यपि आवश्यकता से यह मात्र अब भी थोड़ी कम है। वर्ष 1998 में हमारे देश में दूध का उत्पादन 7.4 करोड़ टन था जो कि विश्व में सर्वाधिक है। इस स्थिति में पहुंचने का मुख्य श्रेय हमारे देश के उन किसान, मजदूर एवं भूमिहीन निर्धन पशुपालकों को जाता है जिन्होंने लगन एवं जी तोड़ कर प्रयास किये। सस्ते आहार की देश में उपलब्धता के कारण दूध की उत्पादन लागत का कम होना और पशुपालकों को अपने उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त होना भी देश में दूध उत्पादन में वृद्धि के महत्वपूर्ण कारण है।

अध्याय-2

भैंसों की नस्लें

भारत के अतिरिक्त अन्य देश जिनमें भैंसें पाई जाती हैं, चीन, थाइलैंड, पाकिस्तान और फिलीपाइन देश हैं। भारत में भैंसों की छः भली–भांति परिभाषित नस्लें हैं। उदाहरणार्थ – मुर्रा, सूरती, नीली–रावी, जाफराबादी, मेहसाना, नागपुरी। मुर्रा भैंसें सर्वाधिक दूध देने वाली नस्ल है और इसके पश्चात् नीली–रावी, सूरती तथा जाफराबादी आदि नस्लों की गणना की जाती है। भैंसों की मेहसाना नस्ल को मुर्रा एवं सूरती नस्लों के संकरण से उत्पन्न माना जाता है। भैंसों की अन्य नस्लें जैसे कि भदावरी, नीलगिरि, टोडा, तराई और जेरंगी आदि को स्थानीय महत्व की नस्लें माना जाता है।

भैंसों का वर्गीकरण

भैंसों को मुख्यतः नदी (रिवराइन) एवं स्वाम्प वर्गों में विभाजित किया गया है। यद्यपि इन दोनों की एक ही प्रजाति (स्पिशीज) है परन्तु उनके उद्गम स्थान और आनुवंशिकी में भिन्नता है। स्वाम्प नस्ल की भैंसें दक्षिण पूर्वी एशिया में पाई जाती हैं और मुख्यतः धान के खेतों में कार्य करने तथा मांस उत्पादन के लिए प्रयोग की जाती हैं। इस नस्ल के पशु गठीले होते हैं तथा दलदल वाली भूमि से इस नस्ल का उद्गम हुआ है और इनमें 48 क्रोमोसोम पाये जाते हैं। नदी (रिवराइन) वर्ग की भैंसें शरीर में भारी–भरकम और मुड़े हुए सींगों वाली होती हैं। ये साफ पानी में ही धंसना पसन्द करती हैं। इस नस्ल के पशुओं में क्रोमोसोम की संख्या 50 होती है। भारत और पाकिस्तान के अतिरिक्त ये भैंसें मिश्र में भी पाई जाती हैं। विश्व में भैंसों की कुल संख्या का लगभग 65 प्रतिशत तथा कुल दूध उत्पादन का लगभग 92 प्रतिशत इस नस्ल द्वारा उत्पन्न किया जाता है।

नदी (रिवराइन) नस्लों की भैंसों को उनके शारीरिक लक्षणों के आधार पर निम्नलिखित पांच समूहों में विभाजित किया गया है (सारणी–2.1)।

सारणी-2.1 एशिया की नदी (रिवराइन) भैंसों का वर्गीकरण

	समूह	नस्लों के नाम
1.	मुर्रा	मुर्रा, नीली–रावी, मुंडी
2.	गुजरात	सूरती, मेहसाना, जाफराबादी
3.	उत्तर प्रदेश	भदावरी एवं तराई
4.	मध्य प्रदेश	नागपुरी, पंधारपुरी, माण्डा, जेरन्गी, कालाहाण्डी, सम्बलपुर
5.	मध्य भारतीय	कनारा, टोडा

भैंसों की विभिन्न नस्लों का विवरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

1. मुर्रा

(क) उद्‌गम स्थान

हरियाणा के हिसार, रोहतक और जींद तथा पंजाब के नाभा और पटियाला जनपद इस नस्ल के उद्‌गम स्थान माने जाते हैं।

(ख) शारीरिक वर्णन

इस नस्ल के पशुओं का रंग काला होता है, कभी–कभी कत्थई रंग के पशु भी पाये जाते हैं परन्तु सफेद रंग के पशु दुर्लभ हैं। पूंछ पर सफेद रंग का धब्बा पाया जाता है। इनका शरीर लम्बा, गहरा तथा भारी और वेज आकार का होता है। मादा पशुओं के शरीर का अग्रिम भाग संकरा और हल्का परन्तु पिछला भाग स्थूल और चौड़ा होता है। इसकी दूसरी ओर नरों के शरीर का अगला भाग स्थूल तथा पिछला भाग हल्का होता है। मादाओं में ग्रीवा पतली एवं लंबी तथा नरों में मोटी और स्थूल होती है। इस नस्ल में गलकम्बल नहीं पाया जाता है। इनके सींग छोटे तथा सर्पिल (स्पाइरल) शक्ल के होते हैं। सिर का प्रथम भाग (ललाट) स्पष्ट होता है। इनमें कूबड़ नहीं पाया जाता है। मादाओं में आंखें स्पष्ट, चुस्त और चमकदार होती हैं परन्तु नरों में उतनी स्पष्ट नहीं होती हैं। कान छोटे, पतले तथा लटकते हुए होते हैं। मुर्रा नस्ल की भैंसों

का अयन पूर्ण विकसित, अच्छे आकार के स्तन और कूल्हे चौड़े होते हैं। पूंछ लम्बी तथा टखने तक लटकती रहती है। स्मिथ (1928) के अनुसार इस नस्ल के व्यस्क नरों के शरीर का औसत भार 450–800 किलोग्राम तथा व्यस्क मादाओं के शरीर का औसत भार 350–700 किलोग्राम होता है। (चित्र 2.1 एवं 2.2)। राइफ (1950) के अनुसार व्यस्क नरों का भार 540 किलोग्राम और व्यस्क मादाओं का भार 450 किलोग्राम होता है (सारणी–2.2)।

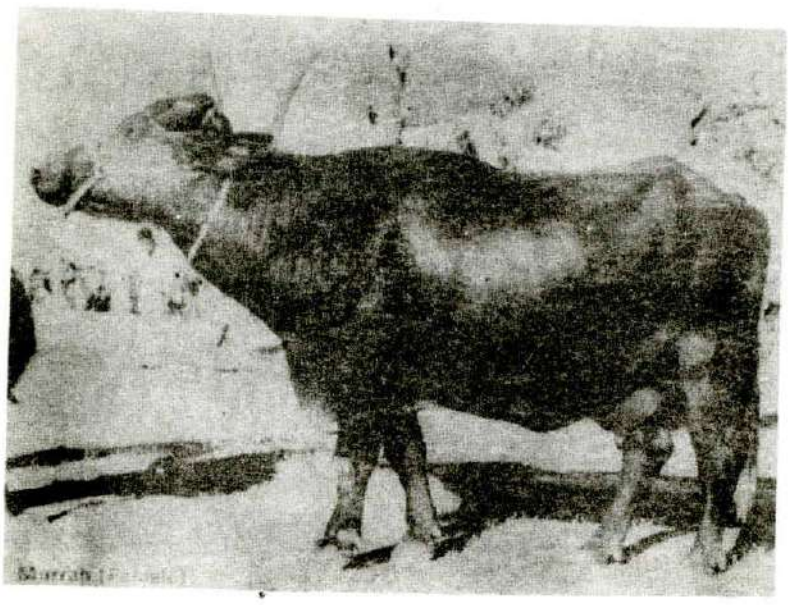

चित्र-2.1 मुर्रा भैंस

सारणी-2.2 मुर्रा नस्ल की भैंसों के शरीर की औसत माप (से.मी.)

विवरण	लंबाई (स्कंध से पिन)	ऊंचाई (हुक अस्थि)	ऊंचाई (स्कंध पर)	परिधि (गर्थ)	चौड़ाई (नितंब अस्थि)
भैंसा (नर)	151	142	142	223	62
भैंस (मादा)	149	130	133	220	61

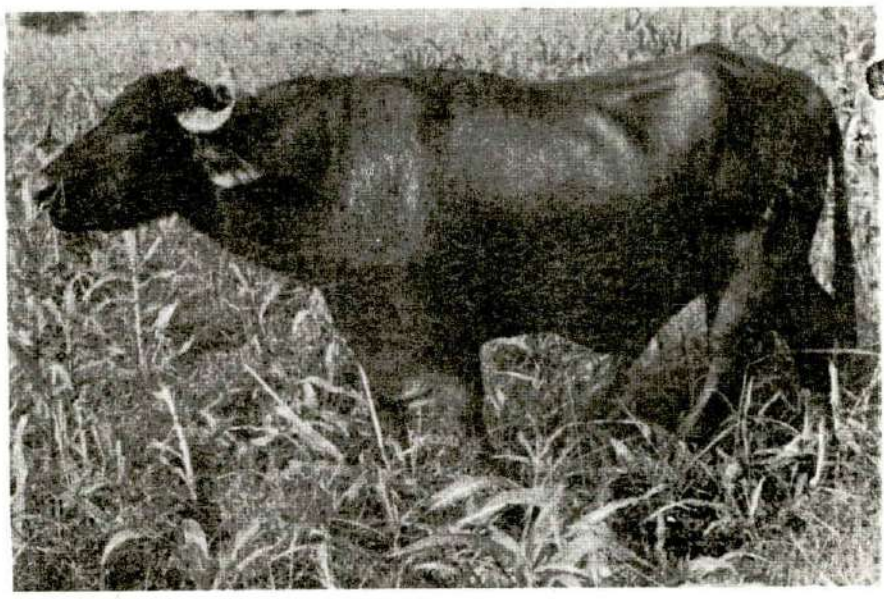

चित्र-2.2 मुर्रा साड

(ग) उत्पादन तथा कार्य-क्षमता

इस नस्ल के बैल परिश्रम करने के लिए अच्छे होते हैं और मादा पशु दूध उत्पादन के लिए बहुत अच्छी होती हैं। इनका औसत दूध उत्पादन प्रति ब्यांत लगभग 1400–1800 किलोग्राम है जिसमें 7.0 प्रतिशत से अधिक वसा होती है। कुछ भैंसों का प्रतिदिन दूध उत्पादन 22–27 किलोग्राम तक पाया गया है।

2. नीली-रावी

इस नस्ल का 'नीली' नाम सतलुज नदी के नीले रंग के कारण तथा 'रावी' नाम रावी घाटी इनका मूल स्थान होने के कारण पड़ा है।

(क) उद्‌गम स्थान

भैंस की इस नस्ल का उद्‌गम स्थान सतलुज घाटी, पंजाब के फिरोजपुर जनपद तथा पाकिस्तान का साहीवाल जनपद है।

(ख) शारीरिक वर्णन

सामान्यतः इस नस्ल के पशुओं का रंग काला होता है परन्तु शरीर के पांच स्थानों अर्थात् ललाट, आंखों की गोलाई, पैरों के अंतिम भागों, प्रोथ (मजल) और पूंछ के गुच्छे पर सफेद रंग के धब्बे पाये जाते हैं। इन भैंसों का सिर कुछ लंबा, ऊपर की ओर उभरा हुआ तथा दोनों आंखों के बीच दबा हुआ होता है। इनका धड़ लंबा, गहरा, क्षमता वाला और पसलियां पूर्ण विकसित होती हैं। मादायें वेज आकार वाली, संकरा अग्रिम परन्तु चौड़ा तथा पर्याप्त पिछले भाग वाली होती हैं परन्तु इसके विपरीत नरों में शरीर का अग्रिम भाग स्थूल तथा पिछला भाग हल्का होता है। नासिका एवं सामने की अस्थियां स्पष्ट, प्रोथ (मजल) सुन्दर और नथुने चौड़े होते हैं। मादाओं की आँखें स्पष्ट, कान मध्यम आकार के और धरातल के समानान्तर होते हैं। मादाओं में ग्रीवा लम्बी और पतली तथा नरों में मोटी एवं शक्तिशाली होती हैं। वक्षस्थल गहरा, पूर्ण विकसित तथा नाड़ा (नाभि प्लैप) छोटा होता है। इनमें गलकम्बल नहीं होता है। पैर अपेक्षाकृत छोटे और इनकी अस्थियां अच्छी होती है। अयन भली–भांति आगे और पीछे की ओर फैला हुआ तथा विकसित होता है। अयन की त्वचा पतली, कोमल परन्तु इस पर उपस्थित बाल कड़े और थोड़ी संख्या में होते हैं (चित्र 2.3)। स्तन लम्बे, दूध शिरायें स्पष्ट, लम्बी तथा टेड़ी–मेढ़ी

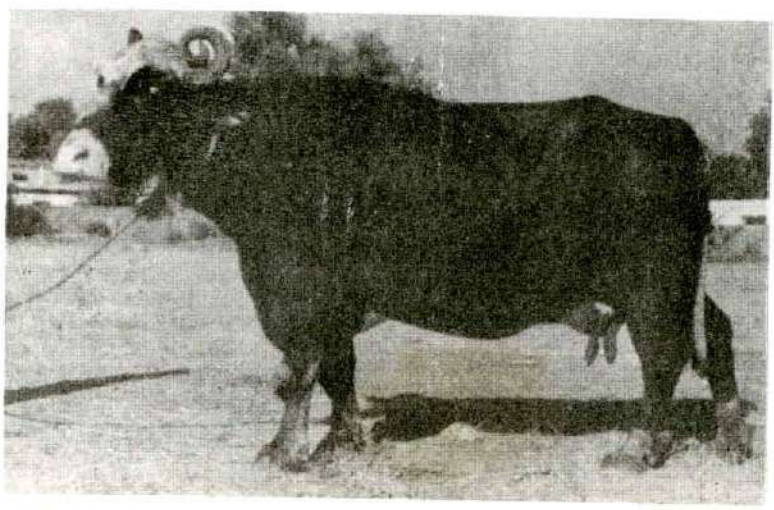

चित्र-2.3 नीली–रावी भैंस

होती हैं। इस नस्ल के वयस्क पशुओं का भार 500–550 किलोग्राम होता है, जो कि मुर्रा नस्ल के लगभग समान ही है (सारणी 2.3)।

सारणी-2.3 नीली एवं रावी नस्ल की भैंसों के शरीर की औसत माप (से.मी.)

विवरण	लंबाई (स्कंध से पिन)	ऊंचाई (हुक अस्थि)	ऊंचाई (स्कंध पर)	परिधि (गर्थ)	चौड़ाई (नितंब अस्थि)
		नीली भैंस			
भैंसा (नर)	159	137	137	226	55
भैंस (मादा)	149	133	136	225	53
		रावी भैंस			
भैंसा (नर)	155	133	133	224	51
भैंस (मादा)	150	131	127	215	51

(ग) उत्पादन तथा कार्य क्षमता

बैल परिश्रम के कार्यों के लिए अच्छे होते हैं। मादा अच्छा दूध उत्पादन करती है और 250 दिन के एक ब्यांत में लगभग 1600 किलोग्राम तक दूध उत्पन्न कर सकती है।

3. कुण्डी

(क) उद्‌गम स्थान

पाकिस्तान के करॉंची और हैदराबाद जनपद इस नस्ल के उद्‌गम स्थान हैं।

(ख) शारीरिक वर्णन

सामान्यतः इस नस्ल के पशु स्याह काले रंग के होते हैं परन्तु हल्के कत्थई रंग के पशु अप्राप्य नहीं हैं। सिर का अग्रिम भाग थोड़ा स्पष्ट, चेहरा धंसा हुआ और आँखें छोटी तथा चुस्त होती हैं। इनके सींग, आधार पर मोटे,

पीछे की ओर झुक कर, ऊपर की ओर जाते हुए, सामान्यतः कसे हुए मुड़ते हैं। इस नस्ल का नाम इनके कुन्धी सींगों के कारण ही पड़ा है। इनके शरीर का पिछला भाग स्थूल होता है। अयन विशाल, दूध शिरायें स्पष्ट, स्तन वर्गाकार स्थिति में, बड़े तथा समान आकार वाले और छूने में कोमल होते हैं। नीली–रावी की अपेक्षा कुण्डी भैंसें छोटी होती हैं। इनके वयस्क पशु का औसत भार 320–450 किलोग्राम पाया जाता है।

(ग) उत्पादन तथा कार्य क्षमता

इस नस्ल का औसत दैनिक दूध उत्पादन लगभग 9 किलोग्राम है परन्तु अच्छे पशु 18 किलोग्राम तक दूध दे सकते हैं। भैंसों की ये दूध देने वाली नस्ल है।

4. सूरती

(क) उद्‌गम स्थल

माही और साबरमती नदियों के बीच गुजरात के कैरा एवं बड़ौदा जनपद इस नस्ल के उद्‌गम स्थान हैं। इस नस्ल के सर्वोत्तम पशु नादियाड़, आनन्द, बोरसाड और पेठलाड में पाये जाते हैं।

(ख) शारीरिक वर्णन

इस नस्ल का रंग सामान्यतः काला अथवा कत्थई होता है। जबड़ों के चारों और तथा गलकम्बल (ब्रिस्कट) पर सफेद रंग की धारियां पाई जाती हैं। बालों की एक सफेद धारी आँखों की भौं पर और कान के निचले किनारे पर पाई जाती है। पूंछ का गुच्छा भी सफेद रंग का हो सकता है। सिर लम्बा तथा चौड़ा और सींगों के बीच गोलाकार होता है। सींग हँसिया (सिकिल) की शक्ल के होते हैं। चेहरा स्पष्ट तथा नथुने बड़े आकार के होते हैं। कान मध्यम आकार के तथा अंदर की ओर लाल रंग के होते हैं। पीठ सीधी और आँखें स्पष्ट होती हैं। ग्रीवा मादाओं में लम्बी परन्तु सांडों में स्थूल और मोटी होती हैं। इस नस्ल में गलकम्बल नहीं पाया जाता है। पैरों के बीच चौड़ा वक्षस्थल और स्पष्ट गलकम्बल (ब्रिस्कट) पाया जाता है। इस नस्ल के पैर मध्यम आकार के तथा इनके खुर चौड़े और रंग में काले होते हैं। धड़ सुगठित, मध्यम तथा वेज आकार का, मादाओं में शरीर का अग्रिम भाग संकरा तथा पिछला भाग चौड़ा और भारी होता है। नरों में इसके विपरीत शरीर का अग्रिम भाग भारी

तथा पिछला भाग हल्का होता है। इस नस्ल के पशुओं के नाड़ा (नैवल फ्लैप) छोटा होता है और सांडों में शीथ मध्यम आकार की होती है। अयन पूर्ण विकसित, सुगठित और धड़ पर अच्छी तरह लगा रहता है। अयन कोमल तथा इसकी त्वचा रंग में गुलाबी होती है। स्तन मध्यम आकार के तथा वर्गाकार स्थिति में लगे रहते हैं। दूध शिरायें पूर्ण विकसित एवं स्पष्ट होती हैं (चित्र 2.4 एवं 2.5)। वयस्क मादाओं के शरीर का औसत भार 550–650 किलोग्राम तथा नरों का 640–730 किलोग्राम पाया जाता है (सारणी–2.4)।

सारणी-2.4 सूरती नस्ल की भैंसों के शरीर की औसत माप (से.मी.)

विवरण	लंबाई (स्कंध से पिन)	ऊंचाई (हुक अस्थि)	ऊंचाई (स्कंध पर)	परिधि (गर्थ)	चौड़ाई (नितंब अस्थि)
भैंसा (नर)	143	133	131	185	52
भैंस (मादा)	138	125	124	191	52

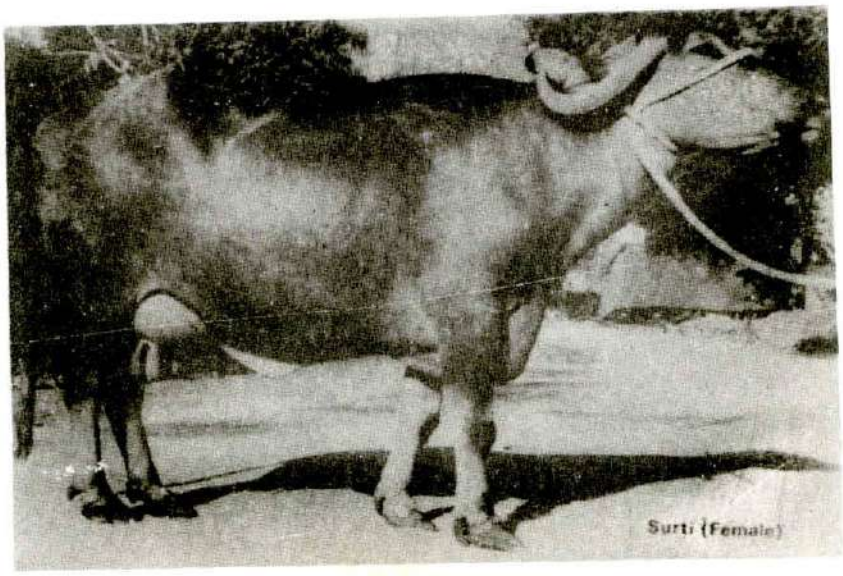

चित्र-2.4 सूरती भैंस

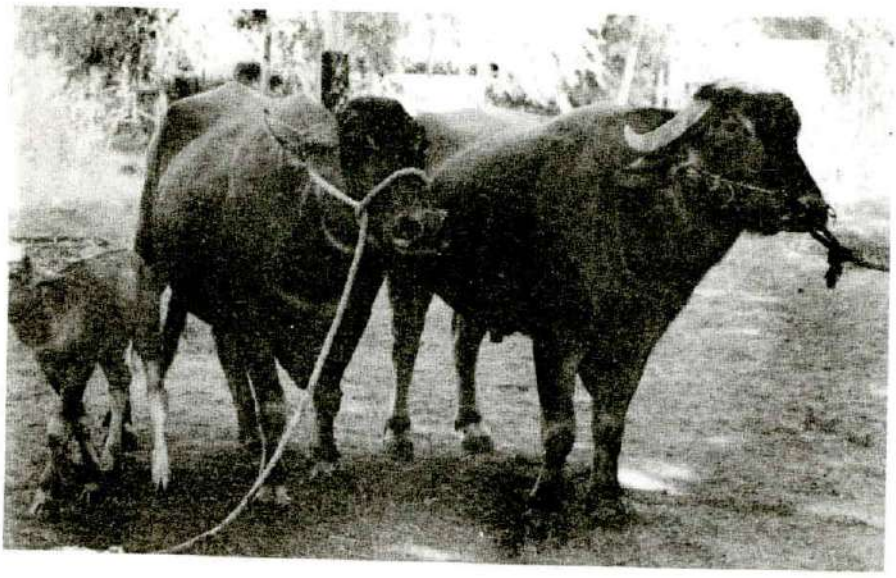

चित्र-2.5 सूरती सांड, भैंस एवं शावक

(ग) उत्पादन तथा कार्य-क्षमता

सूरती नस्ल के बैल हल्के कार्य के लिए अच्छे माने जाते हैं। दुबे (1938, 40) के अनुसार इस नस्ल की भैंसों का औसत वार्षिक उत्पादन 1765 किलोग्राम तथा इसमें वसा की मात्रा 7.0 प्रतिशत होती है। पूना कृषि विश्वविद्यालय के रिकार्ड में 350 दिन के ब्यांत में इसके दूध का उत्पादन 2090 किलोग्राम दर्शाया गया है।

5. मेहसाना

(क) उद्‌गम स्थान

गुजरात के मेहसाना, सावरकाण्ठा और बानस्काण्ठा जनपद इस नस्ल के उद्‌गम स्थान माने जाते हैं। इस नस्ल के प्रतिरूपी पशु पटान, सिद्धपुर, बीजापुर, काडी, काइल और राधनपुर में पाये जाते हैं।

(ख) शारीरिक वर्णन

प्रमुख लक्षणों में यह नस्ल मुर्रा और सूरती के बीच की है और यह भी मान्यता है कि इन दोनों के संकरण से प्राप्त हुई है। इस नस्ल के पशुओं का रंग स्याह काला होता है। धूसर रंग अथवा चेहरा, पूंछ और पैरों पर सफेद चिन्ह वाले पशु भी पाये जाते हैं परंतु इन्हें कम पसन्द किया जाता है। मुर्रा की अपेक्षा इस नस्ल के पशु लम्बे होते हैं। टांगें, हल्की तथा लम्बी और सिर भारी होता है। मुर्रा नस्ल की अपेक्षा, किनारे पर सींग कम मुड़े परन्तु लम्बे होते हैं। इन पशुओं का धड़ लम्बा और गहरा होता है और पसलियां पूर्ण रूप से फैली रहती हैं। मादाओं में शरीर का अग्रिम भाग हल्का और पिछला भाग भारी तथा चौड़ा होता है। पीठ सीधी और दृढ़ होती है। अयन पूर्ण रूप से विकसित और भली–भांति शरीर से लगा रहता है। स्तन मोटे एवं कोमल, दूध शिरायें स्पष्ट होती हैं (चित्र 2.6)। व्यस्क बैलों का शारीरिक भार 500–530 किलोग्राम होता है (सारणी–2.5)।

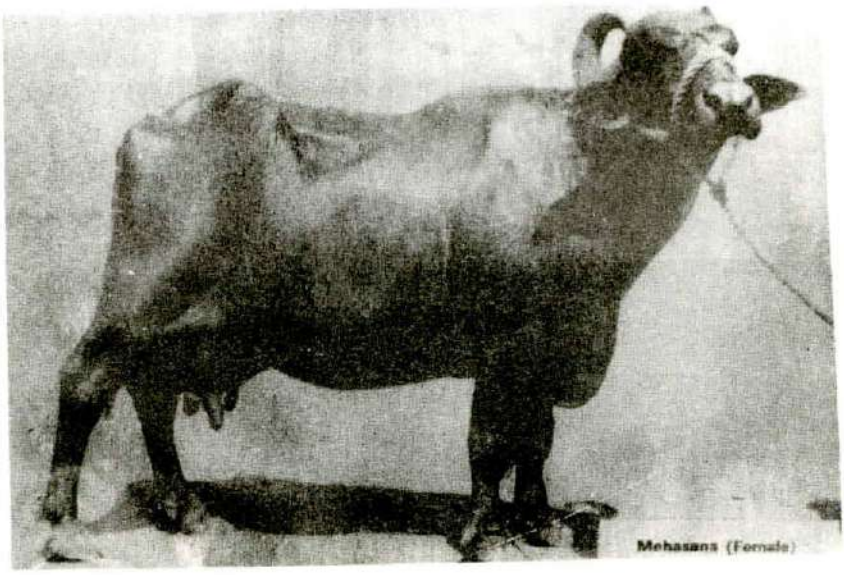

चित्र-2.6 मेहसाना भैंस

सारणी-2.5 मेहसाना नस्ल की भैंसों के शरीर की औसत माप (से.मी.)

विवरण	लंबाई (स्कंध से पिन)	ऊंचाई (हुक अस्थि)	ऊंचाई (स्कंध पर)	परिधि (गर्थ)	चौड़ाई (नितंब अस्थि)
भैंसा (नर)	133	121	132	181	43
भैंस (मादा)	137	122	132	198	51

(ग) उत्पादन एवं कार्य क्षमता

यद्यपि चलने–फिरने में मंद परन्तु बैल भारी कार्य के लिए अच्छे होते हैं। भैंसे मुंबई और अहमदाबाद में दूध के लिए पाली जाती है और आर्थिक दृष्टि से मुर्रा से इन्हें अधिक उपयोगी समझा जाता है।

6. जाफराबादी

(क) उद्‌गम स्थान

गुजरात के कच्छ, जूनागढ़ एवं जमनानगर जनपद इस नस्ल के उद्‌गम स्थान हैं। काठियावाढ़ (सौराष्ट्र) के गिर वनों विशेष कर जाफराबाद में ये पशु पाये जाते हैं।

(ख) शारीरिक वर्णन

इस नस्ल का रंग प्रायः काला होता है। पैरों तथा चेहरे पर सफेद धब्बे होते हैं। जाफराबादी नस्ल स्थूल और लम्बे धड़ वाली होती है परन्तु शरीर सुगठित नहीं होता है। मादाओं में गलकम्बल (ड्यूलैप) ढीला होता है। सिर का अग्रिम भाग (ललाट) स्पष्ट तथा उभरा हुआ होता है। सींग दोनों ओर गिर कर ऊपर की ओर मुड़ते हैं। सींग भारी और चौड़े होते हैं तथा कभी–कभी आँखों को ढक लेते हैं। मुर्रा की अपेक्षा इनके सींगों का मोड़ कम घुमावदार होता है। सिर तथा ग्रीवा स्थूल नहीं होते हैं। अयन बड़ा और पूर्ण रूप से विकसित होता है। व्यस्क बैलों के शरीर का भार 500–550 किलोग्राम होता है (चित्र 2.7)।

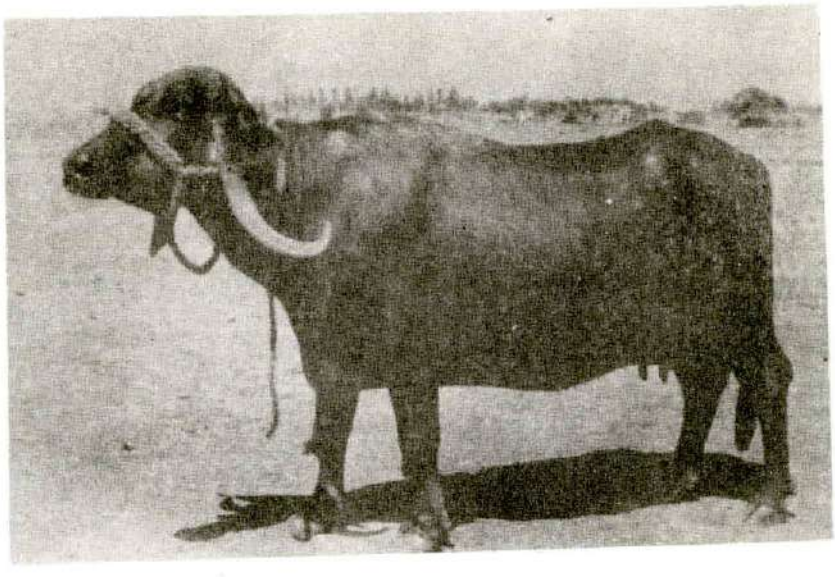

चित्र-2.7 जाफराबादी भैंस

(ग) उत्पादन एवं कार्यक्षमता

भारी जुताई और गाड़ी चलाने जैसे पारिश्रमिक कार्यों के लिए बैलों का प्रयोग किया जाता है। अच्छे मादा पशुओं का औसत दूध उत्पादन 14–18 लिटर प्रति दिन तक अथवा एक ब्यांत में 1800–2700 किलोग्राम तक पाया गया है। दूध में वसा की मात्रा अधिक होने के कारण घी बनाने में इसका अधिक प्रयोग किया जाता है।

8. भदावरी

(क) उद्‌गम स्थान

उत्तर प्रदेश में बाह तहसील, ग्वालियर एवं इटावा जनपद इस नस्ल के उद्‌गम स्थान माने जाते हैं। उत्तर प्रदेश के आगरा, कानपुर, इटावा और जालौन तथा आंशिक रूप से झांसी में इस नस्ल की ख्याति है।

(ख) शारीरिक वर्णन

शरीर का रंग तांबे जैसा तथा जड़ों पर काले बाल पाये जाते हैं। कभी–कभी बाल पूर्ण रूप से कत्थई होते हैं। इनमें ग्रीवा मध्यम आकार की, सिर अपेक्षाकृत छोटा, आंखें स्पष्ट, चुस्त और चमकीली होती हैं परन्तु नर पशुओं में ऐसी आंखें नहीं पाई जाती हैं। गलकम्बल (ड्यूलैप) नहीं होता है। मादाओं में शरीर के अग्रिम भाग की अपेक्षा पिछला भाग अधिक भारी होता है। वक्षस्थल पूर्ण विकसित होता है, पैर छोटे, दृढ़ और काले खुरों वाले होते हैं। पतली लोचदार, काली सफेद अथवा शुद्ध सफेद पूंछ होती है जो टखने तक पहुंचती है। कान औसत आकार के, खुरदरे और लटकते हुए होते हैं। अयन मुर्रा की भांति पूर्ण विकसित नहीं होता है परन्तु दुग्ध शिरायें स्पष्ट होती हैं। स्तन मध्यम आकार के तथा लंबाई में समान नहीं होते हैं।

(ग) उत्पादन तथा कार्यक्षमता

बैल ताप सहिष्णु और श्रम कार्य के लिए अच्छे होते हैं। औसत दूध उत्पादन 3 किलोग्राम और इसमें वसा की मात्रा 13.0 प्रतिशत तक पाई जाती है अतः इस नस्ल के दूध को घी बनाने के लिए बहुत उपयुक्त माना जाता है। सिंह एवं देसाई (1962) के अनुसार भरारी फार्म पर एक ब्यांत (276 दिन) का उत्पादन 1250 किलोग्राम पाया गया है।

9. तराई

(क) उद्‌गम स्थान

उत्तर प्रदेश टकनपुर से रामपुर तक का तराई क्षेत्र इस नस्ल का उद्‌गम स्थान माना जाता है।

(ख) शारीरिक वर्णन

इस नस्ल के पशुओं का रंग काला अथवा कत्थई पाया जाता है। इनके पूंछ का गुच्छा सफेद होता है। कभी–कभी ललाट पर सफेद रंग का धब्बा पाया जाता है। स्पष्ट तथा उभरा हुआ सिर, चपटे घुमावदार सींग जिनके किनारे ऊपर की ओर मुड़े हुए होते हैं। आंखों से नीचे छोटा गड्ढ़ा, छोटी आंखें और कान लम्बे होते हैं। पैर छोटे परन्तु दृढ़ होते हैं। पूंछ लंबी होती है और टखनों के नीचे तक लटकती रहती है।

(ग) उत्पादन तथा कार्यक्षमता

इस नस्ल की विशेषता यह है कि ये पशु तराई क्षेत्र की अस्वास्थ्यकर जलवायु को सहन करने की क्षमता रखते हैं। श्रम कार्य के लिए बैल अच्छे होते हैं। औसत दूध उत्पादन 2–3 किलोग्राम प्रतिदिन तथा 250 दिनों के एक ब्यांत में 450 किलोग्राम पाया गया है।

10. नागपुरी

(क) उद्‌गम स्थान

महाराष्ट्र के नागपुर, अकोला और अमरावती जनपद इस नस्ल के उद्‌गम स्थान हैं।

(ख) शारीरिक वर्णन

इनके शरीर की त्वचा का रंग काला होता है परन्तु चेहरे, पैरों और पूंछ पर धूसर तथा सफेद रंग के धब्बे वाले पशु अप्राप्य नहीं हैं। इनका चेहरा लम्बा और पतला होता है। ग्रीवा लम्बी, पैर हल्के और पूंछ टखनों के थोड़े नीचे तक पहुंचती है। इनके सींग लम्बे, आधार पर चपटे, ग्रीवा के दोनों ओर घूम कर पीछे की ओर कंधों तक जाते हैं। पैर पतले और लम्बा गठीला धड़ होता है और इस संदर्भ में सूरती से ये नस्ल मिलती–जुलती है। अयन बहुत स्पष्ट नहीं होता है परन्तु दूध शिरायें स्पष्ट होती हैं। वयस्क नर पशुओं के शरीर का भार 450–500 किलोग्राम तक पाया जाता है (चित्र 2.8)।

(ग) उत्पादन एवं कार्यक्षमता

यद्यपि बैल मंद गति से चलते हैं परन्तु भार वाहन के लिए प्रसिद्ध होते हैं। प्रतिदिन दूध का उत्पादन औसतन 5–8 किलोग्राम पाया गया है। इसके दूध में 7–9 प्रतिशत वसा पाई जाती है जिससे गायों की अपेक्षा लगभग दो गुणा घी और खोया बनाया जा सकता है।

11. पन्धारपुरी

(क) उद्‌गम स्थान

दक्षिण महाराष्ट्र, पश्चिमी आन्ध्र प्रदेश एवं उत्तर कर्नाटक प्रदेश इसके उद्‌गम स्थान हैं।

चित्र-2.8 नागपुरी भैंस

(ख) शारीरिक वर्णन

इस नस्ल के पशुओं का चेहरा लम्बा तथा संकरा होता है। सींग नागपुरी नस्ल की भैंसों से लम्बे, चपटे और मुड़े हुए होते हैं। शरीर मध्यम आकार का परन्तु गठीला होता है।

12. माण्डा

(क) उद्‌गम स्थान

उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश के सीमावर्ती क्षेत्रों के गनजम जनपद में ये पशु पाये जाते हैं। इनका पालन–पोषण पहाड़ों के वनों में होता है और विक्रय के लिए उन्हें समतल क्षेत्रों में लाया जाता है।

(ख) शारीरिक वर्णन

इनका रंग सामान्यतः कत्थई अथवा धूसर होता है, घुटने और टखने

पर पीले बालों का गुच्छा होता है और पूंछ पीलापन लिए सफेद होती है। वक्षस्थल के चारों ओर अर्ध चन्द्राकार लाल रंग की लगभग 7–8 सेंटीमीटर चौड़ी धारी होती है। इनके सींग चौड़े और अर्ध चन्द्राकार होते हैं। आंखें तेज और पलकों के चारों ओर लाल रंग की धारी होती है। अन्य भैंसों की अपेक्षा नथुने और जबड़े चौड़े तथा स्पष्ट होते हैं। ललाट (सिर का अग्रिम भाग) चपटा तथा प्रोथ (मजिल) बहुत छोटा होता है। ग्रीवा और अग्रिम पैर छोटे परन्तु दृढ़ और वक्ष पूर्ण विकसित होता है। पसलियां पशु के आकार के अनुसार और दृढ़ होती हैं। वयस्क पशु के शरीर का भार 280–350 किलोग्राम होता है।

(ग) उत्पादन एवं कार्यक्षमता

इस नस्ल के पशु तेज धूप में भी परिश्रम का कार्य कर सकते हैं और मेहनती होते हैं। ये धीमी गति से लगभग आधा टन भार वाहन कर सकते हैं।

13. जेरन्गी

(क) उद्‌गम स्थान

उड़ीसा में विशाखापट्‌नम तथा पश्चिमी गंजम में ये पशु पाये जाते हैं।

(ख) शारीरिक वर्णन

रंग काला, सींग छोटे और पीछे की ओर जाते हुए होते हैं। यह एक छोटे आकार का पशु है। इसका चेहरा छोटा, पूंछ विलक्षण रूप से पतली और छोटी होती है। इसकी लंबाई मात्र 46 सेंटीमीटर होती है। अन्य भैंसों की अपेक्षा इसकी त्वचा पतली होती है।

(ग) उत्पादन तथा कार्य क्षमता

नम और हल्की भूमि में श्रम कार्य के लिए ये पशु बहुत उपयोगी हैं। एक जोड़ी पशु लगभग 450 किलोग्राम भार सुगमता से वाहन कर सकते हैं। ये मेहनती होते हैं परन्तु ताप को अधिक सहन नहीं कर सकते हैं। आकार में छोटे होने और गति में तेज होने के कारण, इन्हें 'मृग भैंसों' के नाम से पुकारा जाता है।

14. कालाहाण्डी

(क) उद्‌गम स्थान

आन्ध्र एवं उड़ीसा प्रदेशों के पहाड़ी भाग इस नस्ल के उद्‌गम स्थान हैं। पहाड़ों पर पाले जाने के कारण आन्ध्र प्रदेश की अन्य नस्लों से यह नस्ल अधिक कठोर है।

(ख) शारीरिक वर्णन

इस नस्ल के पशुओं का रंग धूसर अथवा भस्म जैसा होता है। पूंछ का गुच्छा प्रायः सफेद होता है। सींग चौड़े, आधे मुड़े हुए, पीछे की ओर जाकर, किनारे पर थोड़े आगे की ओर मुड़ जाते हैं। सम्बलपुर नस्ल की अपेक्षा इनके सींग चौड़े होते हैं। ललाट थोड़ा स्पष्ट, आंखें बड़ी, स्पष्ट और पलकों के चारों ओर संकर लाल किनारा पाया जाता है। ग्रीवा और शरीर का अग्र भाग पूर्ण विकसित और अग्र पैर दृढ़ होते हैं। वक्ष विशाल पूर्ण विकसित तथा कंकाल दृढ़ होता है। पशु यद्यपि बड़े आकार के परंतु सम्बलपुर नस्ल की अपेक्षा छोटे आकार के होते हैं।

(ग) उत्पादन तथा कार्यक्षमता

इस नस्ल के पशु सीधे और पहाड़ों पर कठिन परिश्रम करने में सक्षम होते हैं। सम्बलपुर नस्ल की अपेक्षा ये पशु सूर्य के ताप को अधिक सहन कर सकते हैं परन्तु इस नस्ल की अपेक्षा दूध देने में अच्छे नहीं होते हैं।

15. सम्बलपुर

(क) उद्‌गम स्थान

मध्य प्रदेश का बिलासपुर जनपद इस नस्ल का उद्‌गम स्थान है।

(ख) शारीरिक वर्णन

त्वचा और बालों का रंग प्रायः काला होता है परन्तु कत्थई और धूसर रंग के पशु भी देखे जाते हैं। पूंछ का गुच्छा सफेद होता है। ललाट स्पष्ट तथा चेहरा लम्बा होता है। सींग छोटे, संकरे और अर्ध चन्द्राकार तथा पीछे की ओर जाकर, ऊपर की ओर मुड़ जाते हैं और किनारों का झुकाव अगली ओर होता है। लम्बे और संकरे, धड़ के साथ ये पशु आकार में बड़े और

शक्तिशाली होते हैं। पूंछ लम्बी और संकरी तथा त्वचा अपेक्षाकृत पतली होती है।

(ग) उत्पादन तथा कार्यक्षमता

अन्य स्थानीय नस्लों की अपेक्षा ये नस्ल अच्छा आहार देने और प्रबन्ध करने पर, कालाहाण्डी, माण्डा, और जेरन्गी की अपेक्षा अधिक दूध उत्पादन करती हैं।

16. टोंडा

(क) उद्‌गम स्थान

दक्षिण भारत में नीलगिरी पहाड़ियां इस नस्ल का उद्‌गम स्थान हैं।

(ख) शारीरिक वर्णन

बाल कालापन लिए तथा शरीर पर मोटे बालों का आवरण होता है। सिर बड़ा और भारी होता है। सींग पर्याप्त दूरी पर स्थित अंदर की ओर जाकर फिर बाहर की ओर मुड़ कर आगे की ओर मुड़ जाते हैं। शरीर लम्बा, चौड़ा और गहरा वक्षस्थल परन्तु पैर छोटे और दृढ़ होते हैं।

(ग) उत्पादन तथा कार्यक्षमता

मादा पशु प्रतिदिन लगभग 4.4–8.8 किलोग्राम, सुस्वादु दूध देती हैं। यद्यपि जन्म और मृत्यु जैसे अवसरों पर इन पशुओं का विशेष महत्व है परंतु कृषि कार्य और मांस के लिए इनका प्रयोग नहीं किया जाता है।

निकट पूर्व और यूरोप की भैंसें

भैंसों की प्रमुख आबादी ईराक, ईरान, मिश्र, सीरिया तथा इजराइल में पाई जाती हैं।

ईराक: इस देश में 'हिला' नाम की भैंसें दूध उत्पादन के लिए प्रयोग की जाती हैं जो कि दक्षिण ईराक के दलदल में पाई जाती हैं। सामान्यतः इनका रंग स्लेटी काला होता है परंतु अनेक भैंसों का रंग धूसर देखा गया है। सिर, पैरों और पूंछ पर सफेद रंग के बड़े धब्बे पाये जाते हैं परन्तु कुछ पशु ऐसे देखे गए हैं जिन पर सफेद और काले धब्बे होते हैं। बहुत से पशुओं की आंखें बड़ी–बड़ी होती हैं। इनके सींग हंसिया की शक्ल के होते हैं। भारतीय

भैंसों की अपेक्षा ये नस्ल स्थूल होती है तथा इसकी त्वचा में चिकनापन की कमी होती है। अच्छी भैंसों से भी सिर स्थूल (बेडोल) तथा लम्बी मोटी ग्रीवा पर ऊंचाई तक जाता है। चेहरा सीधा, थोड़ा तश्तरीनुमा और शरीर लम्बाकार होता है। शरीर की अपेक्षा इनके पैर लम्बे तो होते हैं परन्तु बेडोल नहीं। अयन कदाचित बड़ा और मंसीला होता है तथा पीछे की ओर भली–भांति लगा रहता है जिस पर स्तन ठीक से स्थित होते हैं। इस नस्ल के पशुओं के अयन की त्वचा आश्चर्यचकित रूप से उत्कृष्ट क्वालिटी की होती है। दलदली भैंसें 4–5 माह के ब्यांत में लगभग 5 लीटर दूध प्रतिदिन देती हैं परन्तु उचित प्रबन्ध व्यवस्था होने पर लगभग 8 माह के ब्यांत में 1600–1800 लिटर दूध दे सकती हैं।

ईरान: इस देश की भैंसें गहरे काले रंग की होती हैं। ऊंचाई में ये भैंसें 140 सेंटीमीटर से अधिक ऊंची और भार में लगभग 400 किलोग्राम होती हैं। भैंसें एक ब्यांत में (200 दिन) लगभग 2500 लिटर तक दूध देती हैं और नर भार ढोने के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

सीरिया: सीरिया की दलदली भूमि में कुछ हजार पशु मिलते हैं। इनका रंग गंदा काला, सींग मध्यम आकार के जो कि पीछे की ओर मुड़े रहते हैं। एक वर्ष में ये पशु 400–600 लिटर दूध दे सकते हैं तथा भार ढोने के कार्य के लिए भी प्रयोग किए जा सकते हैं।

मिश्र: इस देश की भैंस धूसर काले रंग की होती हैं। इनमें सूरती और स्वाम्प नस्लों की भांति पीले रंग की धारी भी पाई जाती है जो कम स्पष्ट होती है। इनके सींग 'मिश्र सींग' कहलाते हैं। इनके सींग वीणा से तलवार की शक्ल के होते हैं जो कि कभी–कभी छोटे, पीछे सिर के दोनों ओर मुड़े हुए होते हैं। सिर लम्बा, संकरा और जबड़े, लम्बे तथा दृढ़ होते हैं। कान लंबे और लटकते हुए होते हैं। ग्रीवा अपेक्षाकृत लंबी, पतली और सीधी होती है। शरीर का भार 500–600 किलोग्राम पाया जाता है। पशु पालकों के पास लगभग 6 किलोग्राम प्रतिदिन तथा संगठित फार्मों पर एक ब्यांत में 1300–2000 किलोग्राम दूध उत्पादन रिपोर्ट किया गया है।

इजराइल: इजराइल में पाई जाने वाली भैंसें दलदली भूमि के समाप्त होने से, अहश्य हो गई हैं। मिश्र तथा ईराकी नस्लों से आकार में ये छोटी होती हैं।

भैंसों में संकरण

विभिन्न देशों में भैंसों की स्थानीय नस्ल को उन्नत करने के लिए संकरण का कार्य चलाया जा रहा है।

रिवराइन भैंसों का स्वाम्प भैंसों से संकरण

यद्यपि इन दोनों प्रकार की भैंसों में आनुवंशिकी भिन्नता पाई जाती है, क्योंकि रिवराइन भैंसों में 50 क्रोमोजोम और स्वाम्प में 40 क्रोमोजोम पाये जाते हैं। तथापि दोनों के संकरण से उर्वरक संकर एफ–1 प्राप्त हुए हैं। इस सिद्धांत के आधार पर विभिन्न देशों में रिवराइन भैंसों का कार्य प्रारंभ किया गया है।

फिलीपाइन्स: इस देश में 1917–1956 के मध्य, भारत से नीली–रावी नस्ल कोरलाकर 854 भैंसों को उन्नत किया गया था। इन भैंसों को अनेक संस्थानों में बांटा गया था, जहां पर इस समय 150 शुद्ध नस्ल के पशु हैं। इनके शेष बचे हुए पशु अत्यधिक अंशों तक अन्तः संकर (इन ब्रेड) हैं। अतः इनका शारीरिक भार 450 किलोग्राम तक और दूध उत्पादन 1400–1500 लिटर प्रति ब्यांत तक गिर गया है। इनको स्थानीय नस्ल का संकरण करने के लिए प्रयोग किया गया है।

(क) फिली-मुर्रा

स्थानीय कारबाओं का दूध उत्पादन, मांस उत्पादन तथा भार वाहन की दृष्टि से उत्थान करने के लिए फिलीपाइंस के विभिन्न प्रदेशों में फिल–मुर्रा नस्ल को उत्पन्न किया गया है। बाह्य रिवराइन रक्त के 25, 50, 75 प्रतिशत तथा अन्य ग्रेड प्राप्त हुए हैं। ग्रेड 50 प्रतिशत एवं अधिक बाह्य मुर्रा रक्त की भैंसों का रंग स्याह काला होता है और इनमें धारी (चेबरान) नहीं होती है। ग्रेड 25 प्रतिशत तथा नीचे ग्रेड वाली भैंसें, पैर और लंबी पूंछ के अतिरिक्त मूल पशुओं की भांति दिखाई देती हैं परन्तु इनमें सफेद घेरा अदृश्य हो गया है।

(ख) फिली-रावी

इनके ग्रेड एफ–1, मुर्रा नस्लों की भांति ही होते हैं परन्तु कभी–कभी नीली–रावी नस्ल की तरह इनके ललाट और पूंछ पर सफेद रंग के धब्बे दिखाई

देते हैं। फिली–रावी नस्ल के सांड का शारीरिक भार जब वे 4.5 वर्ष की आयु में प्रजनन योग्य हो जाते हैं, लगभग 760 किलोग्राम पाया जाता है।

कम्पूचिया

कम्पूचियन-मुर्रा: इस ग्रेड की भैंसें फिली–मुर्रा की तरह दिखाई देती हैं और 4 वर्ष की आयु में इनका भार लगभग 550 किलोग्राम हो जाता है। कम्पूचिया में उबय पशुधन फार्म, बोहोल पर ये पशु उपलब्ध हैं। बेहोल काराबाओं विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत इनके प्रयोग का उद्देश्य फिलीपाइन्स काराबाओं को उन्नत करने का है।

वियतनाम: भारत से 650 भैंसों को मंगाकर 1978 में भैंस एवं चारा अनुसंधान केन्द्र, बोन पर भैंसों का फार्म स्थापित किया गया था। आगे चल कर 1981 में इन भैंसों की संख्या 480 ही रह गई थी। यद्यपि मुर्रा नस्ल की भैंसों का अनुकूलन वियतनाम की जलवायु में हो गया है परन्तु मुर्रा नस्ल की अपेक्षा इनका मानक (स्टैण्डर्ड) नीचा है। इसके मुख्य कारण पोषक तत्वों की उचित मात्रा में उपलब्धि न होना तथा अन्य तकनीकी त्रुटियां हो सकते हैं।

वियतनाम में शुद्ध मुर्रा नस्ल के पालन–पोषण के साथ, स्थानीय नस्ल के संकरण का कार्य भी किया जा रहा है और एफ–1, एफ–2 तथा एफ–3 ग्रेड के संकर प्राप्त किए गए हैं। एफ–1 संकर का औसत दूध उत्पादन 282 दिनों के ब्यांत में 1195 किलोग्राम और इसमें 7.5 से 7.8 प्रतिशत वसा की मात्रा पाई गई है। भविष्य में एफ–2 और एफ–3 ग्रेड्स के उत्पादन क्षमता में बढ़ोत्तरी होने की संभावना है (सारणी–2.6)।

चीन: भारत से 1957 में मुर्रा और पाकिस्तान से 1974 में नीली–रावी भैंसों को चीन में आयात किया गया था। यहां पर भैंस प्रजनन सहकारिता ग्रुप के अन्तर्गत, स्थानीय भैंसों के साथ गहन संकरण किया गया है जिससे चीन के दक्षिणी प्रदेशों में 150 हजार से अधिक संकर पशुओं की संख्या हो गई है। चीन में उत्पन्न तथा पालन–पोषण किए गए मुर्रा पशुओं का 213 दिनों के ब्यांत में 1382.9 किलोग्राम तक दूध उत्पादन पाया गया है। मुर्रा तथा स्थानीय एफ–1 के साथ नीली–रावी सांड को मिलाकर त्रिसंकरण किया गया है। चीन में 1500 से अधिक संख्या में त्रिसंकर प्राप्त हैं। त्रिसंकर से उत्पादन क्षमता में पर्याप्त बढ़ोत्तरी हुई है और भविष्य में उचित छंटनी करके प्रजनन करने से उत्पादन में और वृद्धि होने की संभावना है (सारणी–2.7)।

सारणी-2.6 वियतनाम के भैंस एवं चारा अनुसंधान संस्थान पर मुर्रा नस्ल की भैंसों का निष्पादन

निष्पादन विशेषक	संख्या/मात्रा
प्रथम गर्भ धारण के समय आयु (माह)	31
प्रथम बच्चा देने की आयु (माह)	41
बच्चा देने का अंतराल (माह)	16.5
सर्विस का समय (दिन)	94
प्रति गर्भधारण हेतु सर्विस संख्या	2.15
ब्यांत का समय (दिन)	270
प्रति ब्यांत दूध उत्पादन (किलोग्राम)	1400
प्रति दिन औसत दूध उत्पादन (किलोग्राम)	5.3
दूध में वसा का प्रतिशत	6.7

सारणी-2.7 मुर्रा, नीली–रावी तथा इनके संकरण से प्राप्त भैंसों का निष्पादन

निष्पादन विशेषक	मुर्रा	नीली x रावी	मु. x स्था.	नीलीx स्था.	नीलीx (मु.xस्था.)
ब्यांत में औसत दूध–	1573	1973	1153	1097	1540
उत्पादन (कि.ग्रा.)	±524	±690	±397	±265	±687
ब्यांत का औसत समय (दिन)	237	261	271	277	292
औसत दैनिक दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	6.6	7.2	4.3	3.7	5.2
वसा (प्रतिशत)	6.7	7.2	8.5	7.9	8.1
प्रोटीन (प्रतिशत)	4.2	4.3	5.2	4.9	4.7
कुल शुष्क (प्रतिशत)	16.2	17.7	20.1	18.9	18.9

इण्डोनेशिया: इण्डोनेशिया में दूध तथा मांस उत्पादन और भार वाहन में भैंसों का महत्वपूर्ण स्थान है। उत्तरी सुमात्रा में 1958 से 2250 मुर्रा भैंस भारत से आयातित की गई थीं परन्तु 1980 में इनकी संख्या मात्र 1,000 रह गई थी। इन भैंसों का निष्पादन सारिणी–2.8 में प्रदर्शित किया है।

सारणी-2.8 इण्डोनेशिया में मुर्रा नस्ल की भैंसों का निष्पादन

निष्पादन विशेषक	मात्रा/संख्या
जन्म भार (किलोग्राम)	30.7±1.3
ब्यांत का दूध उत्पादन (किलोग्राम)	1999.0±67.3
ब्यांत का समय (माह)	8.0±0.25

अध्याय-3

भैंसों में जनन

प्रजनन की दृष्टि से पशुओं में उर्वरता का विशेष स्थान है। प्रजनन में आने वाली कठिनाईयां आर्थिक दृष्टि से, पशुधन में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। सभी प्रकार के पशुओं में, देर से परिपक्वता आना, कम संख्या में बच्चा उत्पत्ति अथवा बच्चे बिल्कुल ही न होना, लम्बा शुष्क काल, मूक प्रजनन, जल्दी–जल्दी गर्भपात होना, बारम्बार प्रजनन एवं प्रजनन असमर्थता इत्यादि कारणों से जनन क्षमता में कमी आ जाती है।

यद्यपि प्राचीन काल से ही इन कठिनाईयों के बारे में थोड़ा बहुत ज्ञान उपलब्ध था परन्तु पशु विज्ञान की उन्नति के साथ–साथ, अब इस विषय में अन्वेषणों द्वारा बहुत कुछ अध्ययन कर लिया गया है। घरेलू भैंसों के जनन से संबंधित अनेक क्रियाओं का वर्णन यहां पर किया जा रहा है।

परिपक्वता

भैंसों के दोनों लिंगों में परिपक्वता की आयु, नस्ल की किस्म, आहार व्यवस्था तथा प्रबंधन के अनुसार 2–3 वर्ष तक पाई गई है। भैंसों में लैंगिक परिपक्वता का बहुत महत्व है और इसमें देर होने का प्रमुख कारण धीमी गति से वृद्धि होना है। भैंसों में अधिकतम वृद्धि 3–6 माह के मध्य होती है और एक वर्ष की आयु के पश्चात वृद्धि में उतार आता है। भैंस का औसतन 2–2½ वर्ष की आयु में प्रथम बार मद में आती है। भैंसों के बच्चों में 13–15 माह की आयु में व्यस्क होने का सामर्थ होता है और वे 15–16 माह में पूर्ण वयस्क हो जाती हैं। इस आयु में मादाओं में गर्मी आने के लक्षण प्रकट होने लगते हैं और नरों में वीर्य की पूरी मात्रा प्राप्त हो सकती है जिसमें पर्याप्त संख्या में शुक्राणु और गाढ़ापन होता है। सांड मादा को गाभिन करने का कार्य सामान्यतः 2 वर्ष की आयु में प्रारम्भ कर देता है। विभिन्न नस्लों में, प्रथम बार मद में आने की आयु सारणी–3.1 में प्रदर्शित की गई है।

सारणी-3.1 विभिन्न नस्लों में प्रथम मद की आयु

भैंसों की नस्ल	प्रथम मद की आयु (माह)	संदर्भ
मुर्रा	34.0	भट्टाचार्य (1954)
मुर्रा	32.7	सिंह एवं दत्ता (1964)
मुर्रा	29.8	बासु आदि (1984)
मुर्रा	34.2	त्रिपाठी आदि (1985)
मुर्रा	41.8	कौशिक आदि (1988)
नागपुरी	40.0	कैकिनी एवं पारागाओंकार (1969)
सूरती	16.2	जानकीरमन एवं मेहता (1987)

भारत में मिलिट्री फार्मों पर अधिक संख्या में मुर्रा और नीली भैंसों रखी जाती हैं। जहां पर आहार और प्रबंधन की उचित व्यवस्था में भैंसों की ओसरों को 2½ वर्ष की आयु में सांड से मिलाने की प्रथा है। इलाहाबाद कृषि संस्थान में भैंसों को 263 किलोग्राम शारीरिक भार अथवा 2 वर्ष की आयु में जो भी पहले पहुंच जाये, प्रथम बार गाभिन किया जाता है।

प्रथम बार बच्चा देने की आयु

भैंस पालकों के लिए, भैंस द्वारा प्रथम बार बच्चा देने की आयु का आर्थिक महत्व है, क्योंकि जन्म से बच्चा देने तक की आयु तक पालन–पोषण का व्यय और संपूर्ण जीवन काल का उत्पादन तथा उनसे आर्थिक उपार्जन आदि गुण इससे प्रभावित होते हैं। भैंसों द्वारा प्रथम बार बच्चा देने की आयु पर, परिपक्वता, गाभिन होने की आयु और सगर्भता (जेस्टेसन) अवधि आदि का प्रभाव पड़ता है (सारणी–3.2)।

भारत में, भैंसों में प्रथम बार बच्चा देने की औसत आयु 40 माह तथा अच्छे आहार और प्रबंधन की दशाओं में यह आयु 32–36 माह तक पाई गई है।

सारणी-3.2 विभिन्न नस्लों में प्रथम बार बच्चा देने की अवधि

भैंसों की नस्ल	प्रथम बार बच्चा देने की आयु (माह)	संदर्भ
सूरती	48.0	बसु एवं सर्मा (1981)
सूरती	53.7	जैन (1985)
सूरती	36.1	जानकीरमन एवं मेहता
नागपुरी	54.6	कैकिनी एवं पारागाओंकार (1969)
नागपुरी	54.5	कैरे आदि (1977)
नागपुरी	44.3	काडू (1978)
भदावरी	48.3–50.7	शर्मा एवं सिंह (1978)
भदावरी	50.7	सिंह एवं देसाई (1962)
मुर्रा	43.4	अग्रवाल (1952)
मुर्रा	42.3	गौतम आदि (1965)
मुर्रा	40.6	आर्या एवं देसाई (1969)
मुर्रा	42.1–49.0	बसु आदि (1984)
मुर्रा	42.1	तिवाना आदि (1987)
मुर्रा	41.0–42.9	जौहरी एवं भट्ट (1979)

मदचक्र (ईस्ट्रस साइकिल)

मादा भैंसों में स्पष्ट रूप से गर्मी के लक्षण प्रकट न करने तथा इनके मौसमीय प्रजनक होने के कारण जनन क्षमता कम पाई जाती है। ईस्ट्रस के लक्षणों के बारे में अब अनेक आलेख प्राप्त हैं। राय एवं कोडागाली (1983) ने सूरती भैंस के गर्मी में आने के लक्षणों में लिखा है कि इनके प्रमुख लक्षणों में म्युकस का निकलना, आवाज लगाना और दूध का उत्पादन घट जाना है। इसके अतिरिक्त भग (वल्वा) का सूजना और जल्दी–जल्दी पेशाब करना भी महत्वपूर्ण लक्षण हैं। जानकीरमन (1978) ने बतलाया कि सूरती नस्ल की भैंसों को सर्दियों में देर संध्या और तड़के, वर्षा ऋतु में दोपहर बाद और गर्मियों में संध्या के समय गर्मी में आते देखा गया है। सामान्यतः मदचक्र भैंसों में 21

दिनों के पश्चात् आता है परन्तु इसके अरसे तथा टिकाऊपन में भिन्नता पाई जाती है। जानकीरमन (1978) के अनुसार वर्षा, शीत और ग्रीष्म ऋतु में मद का समय क्रमशः 14, 18 और 8–10 दिनों का होता है। भैंसों में मदचक्र और मद काल एक महत्वपूर्ण समस्या है (सारणी–3.3)।

सारणी-3.3 भैंसों में मदचक्र का अरसा तथा टिकाव

नस्ल	देश	मदचक्र का अरसा (दिनों में)	मदचक्र का टिकाव (घंटे)	संदर्भ
रिवराइन भैंस				
भारतीय	भारत	37	24	ओकाम्पो (1939)
पाकिस्तानी	पाकिस्तान	21	21	आइशा (1957)
मिश्र	मिश्र	21	24	हाफेज (1952)
स्वाम्प भैंस				
चाइनीज	चीन	23	36	फिलिप्स आदि (1945)
फिलीपाइंस	फिलिपाइन	33.6	24	ओकाम्पो (1939)
जापानीज	जापान	21.5	19.9	शिमूजू (1986)

लुकटुके एवं आहूजा (1961) के अनुसार भैंसों की अवर्णित (अनडिफाइन) नस्ल में, डिम्ब क्षरण (ओवूलेशन) का समय पशु के गर्भ होने से 11 घंटों के पश्चात पाया गया है परंतु राव आदि (1960) ने यह समय 20 घंटे का बतलाया है।

भैंसों में मदचक्र के अरसे और टिकाव पर ऋतुओं का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है (सारणी–3.4)।

बच्चा जनन के पश्चात मद (पोस्ट पार्टम ईस्ट्रस)

पशु के सर्विस काल का पोस्ट पार्टम ईस्ट्रस, भौतिकी एवं शरीर क्रिया विज्ञान कारकों के कारण परिवर्तित होता है। अतः नस्ल एवं वातावरणीय कारकों का सर्विस पीरियड पर बहुत प्रभाव पड़ता है (सारणी–3.5)।

सारणी-3.4 स्वाम्प नस्ल की भैंस के ईस्ट्रस चक्र के अरसे और टिकाव पर ऋतुओं का प्रभाव (शिमिजू, 1986)

ऋतु	ईस्ट्रस चक्र का अरसा (दिन)	ईस्ट्रस चक्र का टिकाव (दिन)	डिम्ब क्षरण का समय (घंटे) ईस्ट्रल का प्रारंभ	ईस्ट्रल का अन्त
शीत (विंटर)	20.3	18.4	31.9	13.9
शरद (आट्मन)	22.0	20.1	34.0	14.4
बसंत (स्प्रिंग)	22.2	21.0	34.0	13.0
ग्रीष्म (समर)	21.7	20.6	34.5	13.9

सारणी-3.5 भैंसों में पोस्ट पार्टम ईस्ट्रस अन्तराल

नस्ल	देश	औसत अन्तराल (दिन)	संदर्भ
रिवराइन टाइप			
मुर्रा	भारत	87	राव एवं मुरारी (1956)
मुर्रा	फिलीपाइन	49.6	ओकाम्पो (1939)
सूरती	भारत	33.8	जानकीरमन एवं मेहता (1987)
स्वाम्प टाइप			
फिलीपाइन्स	फिलीपाइन	54	गोन्जालेज (1919)
काराबाओज	फिलीपाइन	35	ओकाम्पो (1939)

भैंसों में सर्विस पीरियड

भैंसों में लम्बे सर्विस पीरियड का कारण, मंद डिम्ब क्षरण, बिना डिम्ब क्षरण ईस्ट्रस, डिम्ब असक्रियता, भ्रूण मृत्यु और अनुर्वरक सर्विस आदि हो सकते हैं। सर्विस पीरियड के अरसे पर प्रति गर्भधारण सर्विसिजों की संख्या और

बच्चा देने की ऋतु का प्रभाव पड़ता है। एल–शेख (1967) की राय में प्रति अतिरिक्त सर्विस की आवश्यकता पड़ने पर औसतन लगभग 39 दिनों की सर्विस पीरियड में बढ़ोतरी हो जाती है (सारणी–3.6)।

सारणी-3.6 भैंसों में सर्विस पीरियड

नस्ल	सर्विस पीरियड (दिन)	संदर्भ
रिवराइन टाइप		
मुर्रा	201.0	कोहली एवं मलिक (1960)
मुर्रा	149.4	लुकटुके एवं रॉय (1962)
मुर्रा	143.9	सिंह एवं दत्ता (1964)
मुर्रा	173.9	वेंकटया आदि (1966)
मुर्रा	117.0•	गोस्वामी एवं कुमार (1968)
स्वाम्प टाइप		
फिलीपाइन	213.6	विलेगास (1930)
	103.0	ओकाम्पो (1939)

• प्रथम बार बच्चा जनन के लिए

भैंसों में गर्भावधि (जेस्टेशन)

पशु के गाभिन होने से बच्चा देने तक के समय को गर्भावधि कहते हैं। गर्भावधि पर, पशु की नस्ल, उत्पन्न होने वाली संतान के लिंग, माँ की आयु, बच्चा देने की ऋतु और वातावरण की अन्य दशाओं का प्रभाव पड़ता है। अनेक स्तनधारियों में मादा संतान की अपेक्षा नर संतान के उत्पन्न होने में अधिक समय लगता है। भैंसों में गर्भावधि को सारणी–3.7 में प्रदर्शित किया गया है।

दुग्ध स्रवण अवधि (ब्यांत या लैक्टेसन)

भैंसों में दुग्ध स्रवण अवधि और दूध उत्पादन परिवर्तनशील होते हैं, विशेषकर पोषण स्तर, नस्ल और प्रबंधन के आधार पर। भारतवर्ष में शुद्ध नस्ल की भैंसों का औसत ब्यांत अवधि 200–300 दिनों के मध्य पाया जाता है और

सारणी-3.7 भैंसों में गर्भावधि

नस्ल	गर्भावधि	संदर्भ
रिवराइन टाइप		
सूरती	313	दुबे (1939)
मुर्रा	317	ओकाम्पो (1939)
मुर्रा	310	राव आदि (1956)
मुर्रा	304	रेड्डी एवं रामाकृष्णनन (1960)
मुर्रा	312	गुप्ता आदि (1963)
मुर्रा	300–320	कौशिक आदि (1988)
कुण्डी	310	ममेरिक (1961)
स्वाम्प टाइप		
फिलीपाइन्स (कारबाओ)	332	माक्ग्रेगर (1941)

प्रति ब्यांत दूध उत्पादन 1500–2300 किलोग्राम तक पाया गया है। भैंसों के दूध उत्पादन और ब्यांत में अत्यधिक अंतर होने से ज्ञात होता है कि आहार, प्रजनन और प्रबंधन व्यवस्था के आधार पर इसे और सुधारा जा सकता है। प्रो. जी. फ्रांसिसिक्स (1982) के अनुसार भैंसों में ब्यांत की औसत अवधि, बच्चा देने की ऋतु के अनुसार, शुष्क ग्रीष्म (ड्राइ हॉट), शरद (आट्मन), शीत (विंटर), बसंत (स्प्रिंग) में क्रमशः 390.2, 305.4, 308.9 और 314.7 दिनों की पाई गई है और इस पर ऋतु का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पाया गया है। इसी प्रकार के परिणाम अन्य वैज्ञानिकों ने भी प्राप्त किये हैं (सिंह, 1975, गिल एवं तिवाना, 1977), परन्तु गुरनानी (1976) के अनुसार ब्यांत की अवधि पर ऋतु का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

बच्चा देने का अंतराल (कार्विंग इंटरवल)

पशु के जीवन काल के सर्वाधिक उपयोग के लिए, उसके बच्चा देने के अन्तराल पर गंभीरता से ध्यान देना चाहिये। अच्छे डेयरी पशु को, ब्यांत

के प्रारम्भ में ही जितना जल्दी हो सके, गर्मी (मद) में आ जाना चाहिए। भैंसों में भी संभव है कि उनके बच्चा देने का अन्तराल 13–14 माह से अधिक न हो। मसून (1954) ने सुझाव दिया है कि यह अन्तराल आनुवंशिकी की अपेक्षा, उचित आहार और प्रबंधन व्यवस्था पर अधिक निर्भर करता है। अतः इन क्रियाओं में सुधार करके बच्चा देने के अन्तराल को कम किया जा सकता है। विभिन्न वैज्ञानिकों ने समय–समय पर इस विषय में अन्वेषण किये हैं (सारणी–3.8)।

सारणी-3.8 भैंसों में बच्चा देने का अन्तराल

भैंसों की नस्ल	देश/स्थान	अंतराल (दिन)	संदर्भ
मुर्रा	भारत के सात ग्रामीण प्रजनन क्षेत्र	541	आई.सी.ए.आर. (1939)
मुर्रा	भारत में ग्रामीण मुर्रा	441	उपर्युक्त
मुर्रा	मिलिट्री डेयरी फार्म, (भारत)	419	करेथा (1941)
मुर्रा	सहकारी पशुधन फार्म हरियाणा (भारत)	513.4	भटनागर आदि (1961)
मुर्रा	कृषि संस्थान, इलाहाबाद (भारत)	442	अग्रवाल (1962)
मुर्रा	ऐरे मिल्क कॉलोनी, मुंबई (भारत)	461	गुडी आदि (1969)

भैंसों में जनन क्षमता (रिप्रोडक्सन इफीसिएन्सी)

भैंसों की जनन क्षमता पशु पालकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है और अन्य पशु–पालकों की भांति भैंस पालक भी इनके लगातार जनन और उर्वरता को विशेष महत्व प्रदान करता है। यद्यपि नर तथा मादा पशुओं की उर्वरता का आधार आनुवंशिकी होती है परन्तु आहार व्यवस्था, प्रबंधन और देख–रेख का उनकी जनन क्षमता पर बहुत प्रभाव पड़ता है। सिंह एवं दत्ता (1964) के

अनुसार उत्तर प्रदेश के मथुरा फार्म पर मुर्रा नस्ल की जनन क्षमता 78.7 प्रतिशत पाई गई थी परन्तु बोनाडोना और रॉय (1970) ने यह आंकड़ा 80.8 प्रतिशत बतलाया है। ऋतु का जनन क्षमता पर बहुत प्रभाव पड़ता है (सारणी–3.9)।

सारणी-3.9 भैंसों की विभिन्न नस्लों में जनन क्षमता प्रतिशत

नस्ल	जनन क्षमता (प्रतिशत)	संदर्भ
मुर्रा	77–80	बासु आदि (1978)
सूरती	77	राव आदि (1973)
भदावरी	83.1	शर्मा एवं सिंह (1978)
नागपुरी	89.7	रिवरे आदि (1977)

भैंसों में कृत्रिम गर्भाधान और जनन अंग

भैंसों में जनन की इस विधि का विकास कुछ वर्षों पूर्व ही हुआ है। कृषि संस्थान, इलाहाबाद में कृत्रिम गर्भाधान विधि से प्रथम बच्चा 1943 में उत्पन्न किया गया था और इसके एक वर्ष पश्चात् (1944) में भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर में इस विधि को प्रारंभ किया गया था। अब दिन–प्रतिदिन विकासशील देशों में कृत्रिम गर्भाधान के प्रयोग में वृद्धि हो रही है। इसकी उपयोगिता को पशु के मद में आने और उसके गाभिन होने की परीक्षण विधि में सुधार करके, वीर्य को अधिक अच्छे ढंग से उपचारित तथा भंडारित करके, अच्छे सांडों का प्रयोग करके तथा उचित रूप से वीर्य को सेचित (इनसेमीनेट) करके, और अधिक सुधारा जा सकता है। वीर्य उपचारण की नवीनतम तकनीकी हिमीकरण (फ्रिजिंग) के अपनाने से अब अच्छे सांडों से प्राप्त किये गये वीर्य का अनिश्चित काल तक भंडारण किया जा सकता है और निश्चित स्थान तक भेजा जा सकता है।

(अ) भैंसों के जनन अंग

पशुओं के जनन अंगों की जीव सांख्यिकी (बायोमेट्री) का बच्चा जनन तथा कृत्रिम गर्भाधान से महत्वपूर्ण संबंध है। लुकटके तथा राव (1962) ने भैंस के विभिन्न जनन अंगों के माप पर गहन अध्ययन किया है (सारणी–3.10)। भैंस के जनन अंगों का उनकी जनन क्षमता पर प्रभाव पड़ता है।

सारणी-3.10 भैंस के जनन अंगों का भार एवं माप (से.मी.)

जनन अंग	लम्बाई	चौड़ाई
1. नर जनन अंग		
(क) वृषण (इपिडिडाइमिस सहित)	6.7–14.5	–
(ख) वृषण (इपिडिडाइमिस रहित)	6.0–9.8	–
(ग) सेमीनल वेसिकिल	3.4–11.8	–
(घ) नर लिंग	83.5	–
2. मादा जनन अंग		
(क) भग (वल्वा)	10.5	9.5
(ख) योनि (वैजाइना)	22.1	6.3
(ग) गर्भाशय (सरविक्स)	5.9	–
(घ) डिम्ब वाहिनी (फैलोपियन ट्यूब)	22.3	0.50
(ड.) डिम्ब ग्रंथि (ओवरी, दाई)	2.5	1.3

(ब) सांड के वीर्य की गुणवत्ता

भैंस के सांड शुक्राणु की आकारिकी, उसके सिर के आकार के कारण, गोवंश सांड से सुगमता से पहचानी जा सकती है। भैंस के शुक्राणु का सिर नर भेड़ (मेमना अथवा रेम) के शुक्राणु के सिर से मिलता–जुलता है (सारणी–3.11)। भारतीय भैंस के वीर्य का रंग अपादर्शी दूधिया होता है। वीर्य की मात्रा और शुक्राणुओं का घनत्व, 2–7 वर्ष की आयु तक प्रति स्खलन तक बढ़ती है। इनमें प्रति मिली लीटर शुक्राणुओं का गाढ़ापन 200–2000 मिलियन तक पाया जाता है। वीर्य में उपस्थित शुक्राणुओं में सबसे अधिक असामान्यता पूंछ का टेढ़ापन और घुमावदार होना है।

सारणी-3.11 भैंस के शुक्राणु के विभिन्न अंगों की औसत माप

शुक्राणु का भाग	लंबाई (म्यु)	चौड़ाई (म्यु)	संदर्भ
सिर	8.00	–	गुहा आदि (1959)
सिर	7.86	5.00	सिंह आदि (1967)
पूंछ	54.6	–	–

भैंसों में जनन समस्यायें

गोवंश की अपेक्षा, भैंसों की जनन क्षमता कम होने के कारण, विश्व में भैंसों का वांछित विकास नहीं हो सकता है। उष्ण देशों की कठोर और असहनीय जलवायु में भी, भैंसों की अत्यधिक उपयोगिता होने पर भैंसों को विश्व में बड़े पैमाने पर अभी तक अपनाया नहीं गया है। इसका मुख्य कारण भैंसों में जनन समस्याओं का होना है।

समस्या जिससे जनन में विघ्न पड़ता है अथवा कमी आती है, 'बन्ध्यता' कहलाती है। बन्ध्यता का प्रतिशत 0–100 तक हो सकता है। निम्न उर्वरकता, एक प्रकार से उर्वरकता और बन्ध्यता के मध्य का समझौता है, जो कि 99 और 1 प्रतिशत तक हो सकता है। निम्न उर्वरकता को बन्ध्यता से अधिक भयावह माना जाता है, क्योंकि इसे सुधारना अधिक व्ययशील है। अनेक वैज्ञानिकों द्वारा बन्ध्यता के अनेक कारण दिए गए हैं।

1. शारीरिक कारण

(क) क्रिप्टोरेचिडिज्म

अण्डकोष थैले में वृषण के न उतरने की दशा को क्रिप्टोरेचिडिज्म कहते हैं और ऐसे पशुओं को क्रिप्टोरचिड्स अथवा रिग्स कहते हैं। यह दशा एक ओर (यूनीलेटरल) अथवा दोनों और (बाइलेटरल) हो सकती है।

(ख) फ्रीमारटिन

कभी–कभी जुड़वां बच्चे उत्पन्न होते हैं और ऐसी दशा में नर के साथ जुड़वां मादा होने पर दोनों के मध्य भ्रूण झिल्ली द्वारा उभयनिष्ठ हार्मोन के स्रवित होने से मादा 90 प्रतिशत दशाओं में नपुंसक हो जाती है और उसके ठीक होने की कोई संभावना नहीं रहती है।

(ग) असुदृढ़ पैर

नर तथा मादा दोनों में असुदृढ़ पैरों के कारण संगम, गर्भधारण और बच्चा देने आदि जनन कार्यों में विघ्न पड़ती है और पशुओं की उर्वरता कुप्रभावित होती है।

(घ) जनन ग्रंथियों का अल्प विकास (हाइपोप्लेसिया ऑफ गोनेड्स)

कभी–कभी पशुओं में डिम्ब तथा वृषण आदि जनन ग्रंथियां अल्पविकसित रह जाती हैं जिससे आवश्यक हार्मोन स्रवित नहीं होते हैं और पशु बन्ध्य हो जाते हैं।

(ड) जनन अंगों की त्रुटिपूर्ण रचना

असामान्य दशाओं में किसी जनन अंग की रचना त्रुटिपूर्ण हो जाती है, उदाहरणार्थ – नर अंग (लिंग) का शीथ से जुड़ना, गर्भाशय का टेड़ापन और योनि का गुब्बारा आकार का होना आदि। इन दशाओं में वीर्य सेचन, गर्भधारण और बच्चा उत्पादन की संभावनायें कम हो जाती हैं।

(च) आकारिकी असामान्यतायें

पशुओं की शारीरिक रचना से संबंधित असामान्यतायें प्रकाशित की गई हैं, ऐसी दशा में जनन दक्षता में कमी आ जाती है (सारणी–3.12)।

सारणी-3.12 भैंसो में जनन अंगों की त्रुटिपूर्ण और असामान्य रचनायें (मलिक, 1955–57)

असामान्यतायें	प्रकट होने की बारम्बारता (प्रतिशत)
भग (वल्वा)	
1. भग शोथ (वल्वाइटिस)	25.8
2. स्थाई हाइमन	0.8
3. वुल्फियन नलिका	0.2
	26.8
योनि (वैजाइना)	
1. योनि शोथ (वैजनाइटिस)	24.3
2. द्वियोनि (डबल वैजाइना)	0.1
3. मूत्र–योनि (यूरो वैजाइना)	0.1
	24.5

गर्भाशय द्वार (सरविक्स)	
1. गर्भाशय द्वार शोथ (सरविसाइटिस)	9.9
2. मुड़ी गर्भाशय द्वार (वेंट सरविक्स)	8.8
3. बंद गर्भाशय द्वार (क्लोज्ड सरविक्स)	0.3
4. लंबी गर्भाशय द्वार	2.4
5. छोटी गर्भाशय द्वार.	1.1
6. द्वि गर्भाशय द्वार (डबल सरविक्स)	0.2
	22.7
गर्भाशय (यूटेरस)	
1. गर्भाशय शोथ (मेट्राइटिस)	11.3
2. पानी भरा गर्भाशय (हाइड्रोमेट्रा)	2.7
3. रक्त, पीव भरा गर्भाशय (हिमटो एवं पायोमेट्रा)	3.4
4. गैस भरा गर्भाशय (पाइसोमेट्रा)	0.2
5. गर्भाशय फोड़ा (यूटेराइन एबसिस)	0.1
6. मृत एवं सड़ा भ्रूण (ममीफाइड एवं डीकम्पोजिंग भ्रूण)	0.3
7. एक हार्न वाला गर्भाशय (यूटेरस यूनीकोरनिस)	0.1
8. बंद हार्न वाला गर्भाशय (बिलाइंड होर्न)	0.1
	18.2
डिम्बवाहिनी	
1. पूय डिम्बवाहिनी (पायोसाल्पिंग्स)	13.9
2. पानीयुक्त डिम्बवाहिनी (हाइड्रोसालिपिंग्स)	2.5
	16.4
डिम्ब ग्रंथियाँ	
1. सिस्टिक	1.8
2. अल्पविकसित (हाअपोप्लास्टिक)	2.3
3. डिम्बग्रंथि शोथ (ओवेराअटिस)	0.7
4. फुटक अछिद्रता (आट्रेटिक फोलीकिल्स)	4.7
5. दोष पूर्ण कारपस लूटियम	1.9
	11.4
चौड़ी झिल्ली (ब्रोडलिगामेंट)	
1. सिस्टिस	3.6
2. पर्युदर्याशोथ (पेरीटोनाइटिस)	3.2
	6.8

उपर्युक्त सारणी में दिए गए आंकड़े आगरा वधगृह में परीक्षण किए गए 1000 (एक हजार) भैंसों की संख्या पर आधारित हैं। इसके अतिरिक्त अन्य वैज्ञानिकों ने समय–समय पर देश और विदेशों में आकारिकी असामान्यताओं पर अनेक अध्ययन किए हैं तथा अपने निष्कर्षों को प्रकाशित किया है जिनका वर्णन यहां किया जा रहा है।

(क) लैंगिक असामान्यतायें

विश्व के अनेक देशों में वैज्ञानिकों ने जो लैंगिक असामन्यतायें ज्ञात की हैं, उन्हें सारणी–3.13 में दिखाया गया है।

सारणी-3.13 विभिन्न देशों से प्रकाशित लैंगिक असामान्यतायें।

देश	असामान्यता (प्रतिशत)	संदर्भ
मिश्र	17.5	स्लाश (1958)
मिश्र	20.1	शोकिइर (1958)
मिश्र	33.5	औसमान (1984)
मिश्र	42.8	अगाग (1986)
मिश्र	58.0–65.7	एल–हारीरी आदि (1980)
भारत	44.3	कोडागाली एवं केरूर (1968)
पाकिस्तान	31.8	सामाद आदि (1984)
ब्राजील	12.6	वाले आदि (1981)

(ख) डिम्ब ग्रंथि असक्रियता

भैंसों में डिम्ब ग्रंथि का सक्रिय न होना, जनन असफलता का एक बड़ा कारण है। विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है (सारणी–3.14)।

असक्रिय डिम्ब ग्रंथि, चिकनी और पारदर्शी होती है और टटोलने पर उस पर फफोला अथवा कारपस लूटिया अनुभव नहीं किया जाता है। इनका भार और आकार सामान्य ग्रंथि से बहुत कम होता है (लुकटुके आदि, 1973)।

सारणी-3.14 विश्व के अनेक देशों में पाई गई डिम्ब ग्रंथि असक्रियता दृश्य।

देश	असक्रियता (प्रतिशत)	संदर्भ
भारत	16.7	भट्टाचार्य आदि (1954)
भारत	32.4	द्विवेदी एवं सिंह (1971)
भारत	14.7	लुकटुके आदि (1973)
भारत	19.4	पंडित आदि (1982)
मिश्र	2.6	स्लाश (1958)
मिश्र	2.7	शोकिइर (1958)
मिश्र	10.3	एल–सवाफ एवं एसमिद् (1962)
मिश्र	10.7	एल–हरीरी आदि (1980) और अहमद (1986)
मिश्र	13.6	ओसमान (1984)

अनेक देशों में भैंसों में मौसमी बच्चा जनन देखा गया है। इस प्रवृत्ति पर वर्षा, आहार प्राप्ति और उच्च वातावरणीय ताप का प्रभाव पड़ता है। उत्तरी गोलार्द्ध में दिन का समय बढ़ने और वातावरण के ताप के गिरने के साथ ही अक्तूबर से जनवरी के मध्य, भैंसों में लैंगिक सक्रियता बढ़ती है और अधिकतम बच्चा जनन नवम्बर से फरवरी तक होता है। यदि इस समय के बाहर बच्चा जनन होता है तो भैंसों के गाभिन होने में समय लगता है क्योंकि बच्चा जनन के पश्चात पशु के मद (गर्मी) में आने में अनियमितता रहती हैं।

भैंसों में डिम्ब असक्रियता के कारण, ग्रीष्म ऋतु में मद काल सामान्यतया नहीं देखा जाता है (स्लाश एवं सालामा, 1960, राव एवं राव, 1970, राव एवं श्रीमन्नारायण, 1982, सिंह आदि 1983 और चौहान आदि, 1984)। इसके प्रमुख कारण उच्च वातावरण ताप, अपेक्षित आर्द्रता एवं आहार व्यवस्था आदि हैं। यदि इस ऋतु में पशुओं को उचित छाया, फव्वारा स्नान एवं पानी में लोटने की सुविधायें प्राप्त कराई जायें तो ग्रीष्मकालीन उर्वरकता में महत्वपूर्ण सुधार किया जा सकता है (सिंगल आदि, 1984)।

(ग) डिम्ब ग्रंथि फफोला (सिस्ट्स)

वधगृह के सर्वेक्षण अध्ययन के आधार पर शर्मा आदि (1967) ने इन घटनाओं का प्रतिशत 2.47–4.88 तथा अहमद (1986) ने 6.6–8.4 प्रतिशत तक बतलाया है।

(घ) डिम्ब वाहिनी असामान्यतायें

मिश्री भैंसों में इनका प्रतिशत 1.7 से 5.9 तक पाया गया है (शोकिइर, 1958, ओसमान, 1984 और अहमद, 1986) ब्राजील में ये आंकड़े 18.6 प्रतिशत (वाले आदि, 1984) तथा मुर्रा भैंसों में 1.76 प्रतिशत प्रकाशित किए गए हैं (राव एवं श्रीमन्नारायण, 1982)।

(ड.) गर्भाशय असामान्यतायें

भैंसों में जनन असफलता का यह एक महत्वपूर्ण कारण है। रोग निदान आंकड़ों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 23.7–46.0 प्रतिशत तक जनन असामान्यतायें संक्रमण कारणों से होती हैं (राव एवं श्रीमन्नारायण, 1982, सामाद आदि 1984)। भैंसों में ग्रीष्म ऋतु में, गर्मी से बचाव हेतु कीचड़ वाले पोखरों में लोटने आदि कारणों से संक्रमण हो जाता है और इससे गर्भाशय की असमान्यतायें हो जाती हैं।

2. दुर्घटना संबंधी कारण

दुर्घटना से पशु अल्प अवधि के लिए जनन के लिए अयोग्य हो जाता है परन्तु शीघ्र उपचार कर लेने से इसमें सुधार किया जा सकता है।

3. मनोवैज्ञानिक

इस प्रकार के कारणों का प्रभाव पशु शरीर में स्रवित होने वाले हार्मोन पर पड़ता है जिससे निम्न दशायें उत्पन्न हो जाती हैं और सामान्य उर्वरकता पर व्यवधान पड़ता है।

(क) लैंगिक वयस्कता में बाधा

पशु की जनन ग्रंथियों के अल्पविकास अथवा अविकास के कारण थाइरोक्सीन जैसे हार्मोन के सामान्य स्राव में विघ्न पड़ता है जिससे पशु की सामान्य वृद्धि एवं लैंगिक वयस्कता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(ख) कामलिप्सा की कमी

फोलीकिल उत्तेजित करने वाले एवं ल्युटिनाइजिंग हार्मोन की कमी से यह दशा उत्पन्न होती है और उचित हार्मोन द्वारा उपचार करने पर सुधार हो सकता है।

(ग) असामान्य मद चक्र

पशु शरीर में हार्मोन के असंतुलन अथवा असामान्य स्राव से यह देशा हो जाती है। इसमें या तो डिम्ब क्षरण के बिना ही मद में लक्षण प्रकट होते हैं अथवा डिम्ब क्षरण और मद में सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप पशु बार–बार गर्म होता है और समस्या प्रजनक हो जाता है।

(घ) पशु का मद में न आना

पशु के मद में न आने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।

(क) बच्चे का थनों से दूध पीना (सकलिंग)

बच्चों के थनों से दूध पीते रहने से मादा के गर्भाधारण में देर हो जाती है। अन्वेषणों द्वारा ज्ञात किया गया है कि दूध देने वाले पशुओं को यदि हाथ से पसलाया (ले डाउन) जाये तो इसकी अपेक्षा बच्चे द्वारा ये क्रिया करने पर मादा पशु देर में मद में आती है। दूध निकालते समय यदि अधिक समय तक बच्चा दूध पीता है तो उसकी वृद्धि तो निश्चय ही अच्छी होती है परन्तु इससे बच्चे देने का अंतराल बढ़ जाता है। इसके विपरीत यदि बच्चे को थोड़े समय तक ही पसलाने के लिए प्रयोग किया जाये तो न तो बच्चे की वृद्धि पर ही कुप्रभाव पड़ता है और न पशु के मद काल में अनावश्यक देरी होती है।

(ख) डिम्ब का अल्प विकास

आनुवंशिक अथवा पोषण कारणों से ऐसा होता है। पशु गर्मी में नहीं आता है क्योंकि फोलीकिल नहीं बनते हैं और ईस्ट्रोजन हार्मोन स्रावित नहीं होता है।

(ग) स्थाई कारपस ल्यूटियम

सामान्य अवधि के पश्चात भी डिम्ब ग्रंथि पर स्थित कारपस ल्युटियम क्रियाशील रहता है और प्रोजिस्ट्रॉन स्रवित करता रहता है, परिणामस्वरूप

फोलीकिल उत्तेजित करने वाले हार्मोन स्रवित नहीं होते हैं जिससे ईस्ट्रोजन हार्मोन भी स्रवित नहीं होता है और पशु गर्मी (मद) में नहीं आता है।

4. पोषण संबंधी कारण

अधिकतम जनन क्षमता के लिए आवश्यक है कि पशु के स्वास्थ्य को बनाये रखा जाये।

सामान्यतः किसी भी प्रकार की पोषण व्यवस्था जिसमें पशु का शारीरिक भार कम हो जाता है, इसका उर्वरकता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। बच्चा देने के 60–90 दिनों के अंदर यदि दूध देने वाले पशु का भार कम हो जाए तो पशु के मद में आने का समय बढ़ जाता है। पशु का पोषण ठीक न होने पर उसकी दुर्बलता अथवा अधिक पौष्टिक तत्वों के प्राप्त होने पर पशु मोटेपन के कारण जनन ग्रंथियों के चारों ओर वसा के एकत्रित हो जाने से पशुओं में उर्वरकता कम हो जाती है। पशु के शरीर में कार्बोहाइड्रेट की उचित मात्रा न होने पर वीर्य बनने में बाधा पड़ती है और वसा से प्राप्त होने वाली वसीय अम्लें भी जनन क्रिया में सहायक होती हैं। प्रोटीन की कमी से भी जनन कार्य में कठिनाई हो सकती है। खनिजों में फॉस्फोरस का संबंध डिम्ब की वृद्धि से, आयोडीन का वीर्य की गुणवत्ता से तथा विटामिन 'ए' का उत्पन्न होने वाले बच्चे की आंखों से है।

5. वैकृति संबंधी कारण (पैथोलोजीकल)

रोगों के कारण पशु अस्थाई रूप से जनन समस्या से प्रभावित हो जाता है।

(क) ब्रूसेलोसिस

इसे बैंग्स अथवा छूत का गर्भपात भी कहते हैं। सूक्ष्म जीवी ब्रूसेला एबोरटस इस रोग को फैलाते हैं। यह रोग मनुष्यों को भी लग सकता है तथा उनमें अन्डूलेट (कंपकंपी) वाला ताप उत्पन्न कर सकता है। इससे गाभिन पशु के गर्भाशय में संक्रमण हो सकता है और 5–9 माह के गर्भ के अतिरिक्त प्लेसेंटा का रूक जाना, उर्वरकता का कम हो जाना अथवा बंध्यता आदि अवांछित प्रभाव पड़ सकते हैं। नरों में वृषण सूज जाते हैं।

इस रोग के कीटाणु जनन अंगों से निकलने वाले पदार्थों में होते हैं जो कि स्वस्थ पशु के शरीर में पानी, आहार अथवा आंखों की म्युकस झिल्ली के द्वारा प्रवेश कर जाते हैं। इस रोग का उपचार तो संभव नहीं है परन्तु दूध तथा रक्त के परीक्षण किये जा सकते हैं और 4–8 माह के कटरा, कटड़ियों को इसके टीके लगाये जा सकते हैं। इससे पशुओं को इस रोग से बचाया जा सकता है।

भ्रूण प्रतिरोपण तकनीकी

भैंसों में कृत्रिम प्रजनन की सफलता में शांत मद, निम्न गाभिन दर, मौसमी प्रजनन, प्रथम बच्चा देने की अधिक आयु, मद में न आने की प्रवृत्ति की बारम्बारता, बार–बार प्रजनन इत्यादि अनेक समस्यायें हैं जिनसे उनका उत्पादन बढ़ाने में कठिनाईयां आ रही हैं। भैंसों के छोटे–छोटे फार्म होने के कारण संतति परीक्षण में भी वांछित सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

भारत में भैंसों की उत्तम नस्लें उपलब्ध हैं और कुछ भैंसों में तो एक ब्यांत में 3500–4500 किलोग्राम तक दूध देने की क्षमता है। वर्तमान वर्षों में भैंसों की उत्पादन क्षमता को नियंत्रित प्रजनन से बढ़ाने के प्रयास किये जा रहे हैं। भ्रूण प्रतिरोपड़ नियंत्रित प्रजनन की एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा अच्छे पशुओं से प्राप्त होने वाले बच्चों की संख्या शीघ्र ही बढ़ाई जा सकती है। थोड़े समय में अधिक दूध देने वाली भैंसों की संख्या बढ़ाने के लिए, भ्रूण प्रतिरोपण तकनीकी के साथ नरों की संतति परीक्षण भी करते रहने से शीघ्र परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। अतः भ्रूण प्रतिरोपण तकनीकी अपनाने से कुछ वंशों के पश्चात ही देश में अधिक दूध देने वाली भैंसों की संख्या बढ़ाई जा सकती है।

लगभग एक सदी पूर्व, भ्रूण प्रतिरोपण का कार्य, हीवे (1890) ने खरगोशों में सफलतापूर्वक किया था। गोवंश में प्रथम बार केसिड़ा (1940, 43) ने अधिक डिम्बक्षरण कराने में सफलता प्राप्त की थी और विसकोनसिन में पहली बार विलेट (1951) ने इस तकनीकी से बच्चा प्राप्त किया था। इसके पश्चात् रावसन आदि (1969) के प्रयासों से गोवंश में इस तकनीकी का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया गया।

भारत में भ्रूण प्रतिरोपण कार्य

इस देश में प्रथम बार 1986 में राष्ट्रीय स्तर पर भ्रूण प्रतिरोपड़ की तकनीकी को स्वीकृत किया गया है। विज्ञान एवं तकनीकी मंत्रालय, भारत सरकार का जैव तकनीकी विभाग, भ्रूण प्रतिरोपण कार्य का सम्पर्क स्रोत है ओर इसकी निम्नलिखित चार सहयोगी संस्थायें हैं।

1. भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर।
2. राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल।
3. राष्ट्रीय प्रतिरक्षा (इम्यूनिटी) विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली।
4. डेयरी विकास बोर्ड, आनन्द, गुजरात।

भ्रूण प्राप्ति की विधियाँ

प्रतिरोपण पूर्व भ्रूण को एकत्रित करना पड़ता है और इसकी दो विधियां हैं।

1. शल्य क्रिया द्वारा भ्रूण प्राप्ति

शल्य क्रिया द्वारा पशुओं की दाई कोख से भ्रूण प्राप्त किया जाता है परन्तु भैंसों में अभी तक इस प्रकार के कार्य की कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई है।

2. बिना शल्य क्रिया के भ्रूण प्राप्ति

अनेक ख्याति प्राप्त भारतीय वैज्ञानिकों उदाहरणार्थ भट्टाचार्य, आदि (1984) ने गर्भाशय हार्न को फ्लश् करके अधिडिम्बक्षरित भैंसों से 50 प्रतिशत भ्रूणों की प्राप्ति की थी। इस प्रकार के अन्वेषण राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड, आनन्द में भी किए गए हैं। कुछ विद्वान वैज्ञानिकों (आनन्द, 1987, गिल, 1988 और सिंगला एवं मदान, 1988) ने मुर्रा तथा नीली–रावी भैंसों में भ्रूण स्थानांतरण के कार्य को प्रकाशित किया है।

भैंसों में भ्रूण प्रतिरोपण की विधि

यद्यपि एक मादा भैंस एक वर्ष में एक दर्जन से अधिक डिम्बक्षरण करती

है परन्तु उससे एक वर्ष में एक से अधिक बच्चा प्राप्त करना संभव नहीं था परन्तु अब भ्रूण प्रतिरोपण की तकनीकी से एक मादा (दाता) पशु से निषेचित डिम्ब एकत्रित करके, दूसरी मादा (प्रापी) में प्रतिरोपण करना संभव हो गया है। इस प्रकार हम एक वर्ष में एक मादा पशु से कई बच्चे प्राप्त कर सकते हैं। बिना शल्य क्रिया के यदि भ्रूण प्रतिरोपण के लिए एक वर्ष में तीन बार अधिडिम्बक्षरण कराया जाये और इसमें 60 प्रतिशत सफलता प्राप्त हो सके तो एक वर्ष में एक दाता पशु से 9–12 बच्चे प्राप्त किये जा सकते हैं।

मादा पशु जिसकी उच्च जनन तथा उत्पादन क्षमता सिद्ध हो चुकी हो, दाता के कार्य के लिए चयन किया जाता है। इससे न केवल भ्रूण प्रतिरोपण कार्य में अधिक सफलता मिलती है, अपितु तकनीकी की आर्थिक उपयोगिता पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। दाता पशु के अधिडिम्बक्षरण कार्य के लिए दो प्रकार के हार्मोन प्रयोग किये जाते हैं।

1. गाभिन घोड़ी सीरम गोनेडोट्रोफिन (पी.एम.एस.जी.) हार्मोन की एक डोज 3000 + 500 अंतर्राष्ट्रीय यूनिट की दर से इंजेक्शन द्वारा दी जाती है।

2. पुटक उत्तेजक हार्मोन (एफ.एस.एच.) का दिन में दो बार इंजेक्शन लगाया जाता है। इसके पश्चात् प्रोस्टाग्लान्डिन (पी.जी.) दिया जाता है।

बिना शल्य क्रिया के भ्रूण प्राप्त करने के कार्य को सम्प्रवाहक (फ्लशिंग) कहते हैं। इसके लिए 2–3 मार्ग वाले केथीटर की सहायता से अपूतित (एसेप्टिक) दशा में सम्प्रवाहक क्रिया संपन्न करते हैं। इस क्रिया को प्रथम सेचन के 4½–5 दिनों के पश्चात किया जाता है। इसके लिए केथीटर को गर्भाशय हार्न में प्रविष्ट कर दिया जाता है और इसके अंतिम सिरे को दो नलिकाओं से जोड़ देते हैं जिनमें एक भेजने (इन्फ्युजन) का और दूसरी भ्रूण को एकत्रित करके का कार्य करती है। शुक्राणुओं की अपेक्षा भ्रूणों पर ताप का प्रभाव कम घातक होता है परंतु बहुत कम अथवा बहुत उच्च ताप से इनको बचाना आवश्यक होता है।

प्रापी मादा पशु, उर्वर, निरोग और बिना कठिनाई के बच्चा देने वाला होना चाहिये। प्रापी पशु पर्याप्त दूध देने वाला भी हो, जिससे पलने वाले बच्चे

सारणी-3.15 भैंसों से अधिडिम्बक्षरण कराने हेतु अनुसंधान (किशोर टी. मोतवानी, 1987)

	प्रयोग का दिन	हार्मोन/अन्य	मात्रा (मि.ग्रा.)
–18		पी.जी.	25
– 5	पूर्वान्ह	एफ.एस.एच.	7
	अपरान्ह	एफ.एस.एच.	7
–4	पूर्वान्ह	एफ.एस.एच.	6
	अपरान्ह	एफ.एस.एच.	6
– 3	पूर्वान्ह	एफ.एस.एच.	5
	अपरान्ह	एफ.एस.एच.	5
		पी.जी.	25
– 2	पूर्वान्ह	एफ.एस.एच.	5
		पी.जी.	25
	अपरान्ह	एफ.एस.एच.	5
– 1	पूर्वान्ह	एफ.एस.एच.	4
0		मद	

की उचित वृद्धि हो सके। दाता की भांति प्रापी भी भ्रूण ग्रहण करते समय मद में होना चाहिए। इसके लिए प्रोस्टाग्लांडिन का इंजेक्शन दो बार अर्थात् 10–11 दिन और 12 घंटे पूर्व देना आवश्यक होता है। बिना शल्य क्रिया भ्रूण प्रतिरोपण करने के लिए एक प्रकार की बंदूक (गन) प्रयोग की जाती है। यदि भ्रूण प्रतिरोपड़ करते समय पर्याप्त संख्या में प्रापी मद में न हों, तो भ्रूणों का हिमीकरण किया जा सकता है।

बुल्गेरिया में भैंसों में किए गए भ्रूण प्रतिरोपण कार्य से ज्ञात होता है कि 18.5 प्रतिशत प्रापी पशुओं ने ही गर्भ धारण किया और उनमें से मात्र 10 प्रतिशत ने ही जीवित बच्चों को जन्म दिया।

गायों की अपेक्षा भैंसों की दैहिकी एवं आकारिकी में भिन्नता पाई जाती है। डिम्बग्रंथि में कुल पुटकों (फालीकिल्स) की संख्या, अधिडिम्बक्षरण क्रिया,

सारणी-3.16 भैंसों में भ्रूण प्रतिरोपण के कुछ परिणाम (एलेक्सीव आदि, 1985–87)

वर्ष	प्रतिरोपित भ्रूण	प्रापी	गर्भधारण	बच्चा उत्पन्न
1984–85	35	21	1	–
1986	43	32	7	4
1987	21	18	5	3
कुल योग	99	71	13	7

व्योहारिक मद, भ्रूण विकास और मुड़े गर्भाशय हार्न इत्यादि कारणों से भैंसों में भ्रूण प्रतिरोपड़ के कार्य में कठिनाई आती है। अतः स्पष्ट है कि इसमें और अधिक सफलता प्राप्त करने के लिए हिमीकरण, भ्रूण की सूक्ष्म शल्य क्रिया, डिम्बाणुजनन कोशिका (उवोसाइट) सम्बर्ध (कल्चर) एवं इन–विट्रो निषेचन, डी.एन.ए. क्लोनिंग, संयोजन अथवा परिवर्तन आदि पर अधिक अन्वेषणों की आवश्यकता है।

अध्याय-4

भैंस पालन एवं जलवायु

संपूर्ण वातावरण का एक भाग होने के कारण पशु उत्पादन में जलवायु का उपयोगी स्थान है। मृदा विज्ञान, भूमि की आकारिकी और उन पर उत्पन्न होने वाली, वनस्पतियों का पारस्परिक तथा जलवायु से सीधा संबंध है। किसी स्थान विशेष की जलवायु का अध्ययन करने से वहां पर रहने वाले जीवधारियों तथा कृषि क्रिया–कलापों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

विश्व की संपूर्ण भैंस आबादी का 96.5 प्रतिशत, विषवत रेखा और अक्षांश के मध्य, एशिया के 30° उत्तर में स्थित है। यह क्षेत्र एशिया की मौसमी वर्षा वाला भाग है। विश्व की निम्नलिखित जलवायुओं में भैंसें पाली जाती हैं।

1. निम्न अक्षांश वाली जलवायु (उष्ण कटिबंधी क्षेत्र)

(i) विषवत रेखीय वर्षावन जलवायु

ताप, आर्द्रता के साथ अन्य जलवायु संबंधी कारकों में परिवर्तनों के कारण, उष्ण कटिबंधीय जलवायु में भी अनेक प्रकार की सूक्ष्म जलवायु की परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं जो वनस्पतियों और जंतुओं के सहअस्तित्व का महत्वपूर्ण सूचक हैं। यहां की जलवायु पूरे वर्ष उष्ण और समान रूप से तर रहती हैं। इसमें मौसम संबंधी कोई अंतर नहीं पाया जाता है। इस क्षेत्र में वर्ष भर में 80''–120'' वर्षा होती है। वर्ष के अधिकतर महीनों में बादल छाये रहते हैं और मात्र 2–3 माह के लिये मौसम शुष्क होता है। इस क्षेत्र में अधिक वर्षा होने, वर्ष भर उच्च ताप तथा आर्द्रता रहने से वनस्पतियों की वृद्धि तीव्र गति से होती है। अधिक वनस्पतियों से अधिक मात्रा में कार्बनिक पदार्थ भूमि को प्राप्त होता है परंतु तीव्र ऑक्सीकरण और लगातार रिसाव के कारण इसका उपजाऊपन बड़ी मात्रा में स्वयं ही नष्ट हो जाता है। अधिक उत्पादन वाली चारों की फसलों तथा उनमें लगने वाले रोगों की रोकथाम के कार्यों के प्रारंभ होने के साथ ही इस क्षेत्र में भैंसों का रखना प्रारम्भ किया जा सकता है।

(ii) उष्ण कटिबन्धी वृष्टि सवाना जलवायु

इस प्रकार की जलवायु विषवत रेखा के दोनों ओर से प्रारंभ होकर, उष्ण मरूस्थल तक पाई जाती है। अफ्रीका में भली–भांति विकास के कारण इसे 'सूडान टाइप' तथा अपने वानस्पतिक लक्षणों के कारण, 'सावना जलवायु' कहते हैं। यह जलवायु विषवत रेखा एवं उष्ण मरूस्थल के मध्य का प्रतिनिधित्व करती है। इस क्षेत्र में कहीं 70"–80" वर्षा होती है परन्तु विषवत रेखीय वनों के पास उष्ण मरूस्थल में मात्र 10"–15" वर्षा होती है। वर्षा का औसत प्रतिवर्ष बदलता रहता है। उष्ण तर ग्रीष्म ऋतु और शुष्क शीत ऋतु होने के कारण क्षेत्र के बड़े भाग में घासों की उचित वृद्धि होती है। इस क्षेत्र की उष्ण भूमि और सघन चरागाहों का प्रबंधन कार्य अभी तक भली–भांति विकसित नहीं हो सका है। यहां पर उत्पन्न होने वाली घासों का निम्न पौष्टिक मूल्य होने के कारण, उन्हें खिला कर पशुओं से अच्छा उत्पादन लेना संभव नहीं है। परन्तु पूर्वी अफ्रीका, रोडेशिया, एंगोला तथा ब्राजील के बड़े क्षेत्र में कृषि की सुधरी पद्धति का प्रचलन प्रारंभ हो चुका है। कृषि फसलों में अनाज (मक्का तथा अन्य छोटे अनाज) कपास, गन्ना, मूंगफली तथा तेल वाली अन्य फसलें उत्पन्न की जाती हैं।

(iii) उष्ण कटिबंधीय मानसून जलवायु

यह जलवायु कटिबंधीय जलवायु से मिलती–जुलती है। इसमें वर्षा ऋतु उष्ण तथा शीत ऋतु शुष्क होती है। यहां पर वर्ष के निश्चित मौसम में हवाओं के लगातार बहाव से वर्षा होती है। मौसमी वर्षा वाले क्षेत्रों में भारत, पाकिस्तान तथा चीन के भाग अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उष्ण भारतीय जलवायु में तीन स्पष्ट ऋतुयें होती हैं।

1. उष्ण शुष्क ऋतु – मध्य फरवरी से मध्य जून तक।
2. वर्षा ऋतु – मध्य जून से मध्य अक्टूबर तक। इसमें सर्वाधिक वर्षा होती है।
3. शीत ऋतु – मध्य अक्टूबर से मध्य फरवरी तक जिसमें बहुत थोड़ी वर्षा होती है।

इस क्षेत्र की जलवायु अनाज और नकद अदायगी वाली फसलों के

उत्पादन के लिये अति उपयुक्त है। वर्षा ऋतु में यहां घास का अच्छा उत्पादन होता है। चावल, जौ और गेहूं के अतिरिक्त यहां पर कपास, गन्ना तथा तेल वाली फसलें उगाई जाती हैं। इस क्षेत्र में उन्नत बीजों, उर्वरकों तथा सिंचाई की समुचित व्यवस्था के साथ वैज्ञानिक विधि से खेती प्रारंभ हो गई है। इससे अनाजों के उत्पादन में अभूतपूर्व उन्नति हुई है। इस क्षेत्र में विश्व का सर्वाधिक पशुधन उदाहरणार्थ – गोवंश, भैंसों, भेड़, बकरियां, सुअर, और कुक्कुट पाले जाते हैं।

(iv) उष्ण मरूस्थल जलवायु

उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र का भाग उष्ण मरूस्थल का है जो 18–35° उत्तर–दक्षिणी अक्षांश पर स्थित है। यहां वर्षा अनिश्चित तथा वर्ष का औसत बहुत थोड़े से 2"–5" प्रतिवर्ष है।

इस जलवायु में मात्र कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां पर कुछ भी उत्पन्न नहीं होता है। यहां पर सामान्य वनस्पतियों में छोटी–छोटी झाड़ियाँ हैं और पौधों में खजूर का वृक्ष मुख्य है। वर्षा ऋतु में भूमि के छोटे–छोटे टुकड़ों पर शीघ्र वृद्धि करने वाले पौधे उग आते हैं। जिससे ये भाग हरे–भरे दिखाई देने लग जाते हैं। इस क्षेत्र के प्रमुख पशुओं में ऊँट है। इसके अतिरिक्त गोवंश, भैंस, भेड़ तथा बकरियां भी यहां रखी जाती है।

2. मध्य अक्षांश वाली जलवायु (शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र)

(i) भूमध्यसागरीय जलवायु

इस क्षेत्र की जलवायु ठंडी है और ग्रीष्म ऋतु में यहां पर्याप्त समय तक धूप दिखाई देती है। शीत ऋतु का औसत ताप 4–5° सेल्सियस और औसत वर्षा 25"–30" तक होती है। यहां पर उपलब्ध पर्याप्त सूर्य प्रकाश से प्राकृतिक वनस्पति की वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है। अन्य घरेलू पशुओं की भांति यदि यहां पर भी पशुओं के आस–पास की सूक्ष्म जलवायु में परिवर्तन किया जाए तो उन पर इसका लाभकारी प्रभाव होता है। इस क्षेत्र में भैंसों के उद्गम स्थानों को निम्नलिखित जैविक जलवायु क्षेत्रों के आधार पर विभाजित किया गया है।

(i) क्षेत्र जिनमें 40"–60" तक वर्षा होती है।

(ii) वह क्षेत्र जिसमें 10"–40" तक वर्षा होती है। इस क्षेत्र में गेहूं, साधारण अनाज, मूंगफली तथा कपास की प्रमुख फसलें उगाई जाती हैं।

व्यापक विचार के अनुसार वातावरण में वे सभी दशायें सम्मलित होती है जिनमें पशु रहता है। मात्र आनुवंशिक दशाओं को छोड़कर पशु का उत्पादन जलवायु के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कारकों से प्रभावित होता है। अप्रत्यक्ष रूप से ताप, आर्द्रता, वायु प्रवाह, प्रकाश विकरण आदि दशायें उत्पादन पर प्रभाव डालती हैं। वर्षा फसलों के उत्पादन तथा पौष्टिक स्तर को प्रभावित करती है जिससे पशु ऊर्जा संरक्षण नहीं कर सकता है। इससे पशु के एन्जाइम पद्धति और हार्मोनों के स्राव पर कुप्रभाव पड़ता है।

श्वसन दर, नाड़ी गति, शारीरिक ताप एवं जलवायु

पशु–पालकों की रूचि अपने पशुओं के स्वास्थ्य और उनके उत्पादन पर होती है। उष्ण देशों की जलवायु इन दोनों को ही कुप्रभावित करती है। अधिक लाभ के लिए अधिक अनुसंधान कार्यों की आवश्यकता का आभास किया गया है।

भैंसों के शरीर का ताप 37 सेल्सियस, श्वसन प्रति मिनट 40 और नाड़ी गति 51 होती है। गोवंशों में यह आंकड़े उच्च पाये जाते हैं।

अनेक वैज्ञानिकों (फिंडले एवं बीकले, 1954, हरिस आदि, 1960 और मिश्रा, 1963) ने अनुसंधानों द्वारा यह सिद्ध किया है कि वायु के ताप का प्रभाव आपेक्षिक आर्द्रता से अधिक प्रभावकारी होता है। गोस्वामी और नारायण (1962) ने वायु ताप और आपेक्षिक आर्द्रता के अध्ययन से ज्ञात किया है कि स्थिर ताप पर आपेक्षिक आर्द्रता का भैंस के शारीरिक ताप, श्वसन और नाड़ी गति पर महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है। इसका सर्मथन आस्कर, आदि (1952) के मिस्री भैंसों के अध्ययनों से भी होता है। कुछ वैज्ञानिकों ने गहन अध्ययन करके श्वसन और आर्द्रता पर ताप के पड़ने वाले प्रभाव के लिए निम्नलिखित सूत्रों का अन्वेषण किया है।

अन्वेषण किया गया सूत्र	संदर्भ
1. $y = 90.028 + 1.301x_2 + 0.36x_2$	मिश्रा आदि (1951)
2. $y = 0.605x - 26.2$	मलिक और केहर (1951)
3. $y = 0.867x - 56.032$	मिश्रा आदि (1963)

जहां पर

y = श्वसन दर

x एवं x_1 = परिवेशीय ताप, डिग्री फारेनहीट

x_2 = आपेक्षिक आर्द्रता

श्वसन दर शीत ऋतु में कम और ग्रीष्म ऋतु में अधिक पाई जाती है। इसके बढ़ने की दर माह के बढ़ते ताप के अनुरूप होती है। हेमंत और बसंत में शारीरिक ताप और नाड़ी गति निम्न होती है।

गोस्वामी और नारायण (1962) के अनुसार औसत ताप 23.6° सेल्सियस के ऊपर बढ़ने से भैंस भयंकर रूप से प्रभावित होती है और यदि यह ताप 13.3–23.0° सेल्सियस के मध्य हो तो उन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। एक वर्ष से कम आयु के कटड़ा, कटड़ियों पर युवा पशुओं की अपेक्षा ताप का अधिक विपरीत प्रभाव पड़ता है (सारणी–4.1)। ग्रीष्म ऋतु में वे आहार खाना कम कर देते हैं तथा उनका स्वास्थ्य गिर जाता है। पाल (1952) ने

सारणी-4.1 शारीरिक ताप श्वसन एवं नाड़ी गति पर आयु का प्रभाव (बेदरेलडिन आदि, 1951)।

आयु	शारीरिक ताप डिग्री सैल्सियस	श्वसन दर (प्रति मिनट)	नाड़ी गति (प्रति मिनट)
1 वर्ष	38.5	29	69
2 वर्ष	38.3	26	60
3 वर्ष	38.2	25	59
4 वर्ष	38.0	24	56

स्पष्ट किया है कि कम आयु के पशुओं में वयस्क पशुओं की अपेक्षा ताप को नियंत्रित करने की क्षमता कम होती है (सारणी–4.2)। कपूर (1951) द्वारा कम आयु के पशुओं में प्रकाशित की गई बीमारी जो बरेली (यू.पी.) और मुंबई में पाई गयी थी, मात्र ताप घात (हीट स्ट्रोक) थी जिसके मुख्य लक्षण क्षुधा का कम होना, उच्च शारीरिक ताप, खुरों का सूजना और आंखों से पानी जैसा स्राव निकलना आदि पाये गये थे परन्तु किसी भी पशु की मृत्यु नहीं हुई थी।

सारणी-4.2 आयु का शारीरिक ताप पर प्रभाव (पाल, 1952)

आयु	गुदा ताप डिग्री सैल्सियस (7.00 घंटे)	(16.00 घंटे)	ताप में वृद्धि डिग्री सैल्सियस
एक वर्ष से कम	38.7	39.1	0.4
1–2 वर्ष	38.2	38.5	0.3
2 वर्ष से ऊपर	38.2	38.5	0.3
वयस्क	38.2	38.4	0.2

तनेजा एवं भटनागर (1958) ने अनुसंधानों द्वारा ज्ञात किया कि पशुओं के लिंग का उनके शारीरिक ताप पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। यह ताप नरों तथा मादाओं में दोपहर के समय 37.0 एवं 36.8° सैल्सियस क्रमशः पाया गया था। शारीरिक दशा का भी शारीरिक ताप और श्वसन दर पर प्रभाव पड़ता है (सारणी–4.3)।

सारणी-4.3 शारीरिक दशा का शारीरिक भार एवं श्वसन दर पर प्रभाव (आलिम एवं अहमद, 1957)

शारीरिक दशा	शारीरिक ताप डिग्री सैल्सियस	श्वसर दर (प्रति मिनट)
गाभिन होना परन्तु दूध न देना	38.35	22.9
दूध देना परन्तु गाभिन न होना	38.27	21.9
न दूध देना और न गाभिन होना	38.12	19.9

6- -140/CSTT/ND/2K

औरकर आदि ने (1952) मई–जून के माह में भैंसों को 10–12 बजे के मध्य आधे घंटे के लिये सूर्य के सीधे प्रकाश में रख कर देखा कि पशुओं में अशांति आ गई और वे उत्तेजनशील हो गये। उनके बाहरी लक्षणों में सिर, पैर तथा पूंछ का असामान्य रूप से चलाना पाया गया। अधिक समय तक धूप में रहने से वे हांफने लगती हैं, मुंह से अधिक मात्रा में सेलाइवा आता है, नथुनों से श्लेष्मिक पदार्थ (म्युकस) निकलता है तथा आंखों से पानी आता है। ताप घात से कुप्रभावित भैंसों को छाया में लाया जाता है तथा पानी छिड़का जाता है अथवा नहलाया जाता है तो थोड़े ही समय में वे सामान्य हो जाती हैं। उच्च परिवेश ताप होने पर भैंस 5–6 घंटों तक पानी में लोटना पसंद करती हैं।

भारतीय पशु अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर में अनुसंधानों द्वारा ज्ञात किया गया कि अगस्त माह में प्राकृतिक वर्षा से पशुओं के शरीर का ताप 0.3–1.5o सैल्सियस तक कम हो गया। पानी के 5–6 घंटों के छिड़काव से पशु के गुदा का ताप 0.3–1.5 सैल्सियस तक गिर गया था। लाहौर में किये गये एक परीक्षण के परिणाम, जिसमें विभिन्न प्रकार से पशुओं के ताप को कम करने के प्रयास किये गये, निम्नलिखित हैं।

(i) 10 मिनट हाथों से पानी छिड़कने से शारीरिक ताप में 1.4° सैल्सियस की गिरावट।

(ii) 3 मिनट तक पानी के पाइप से पानी छिड़कने से शारीरिक ताप में 1.6° सैल्सियस की गिरावट।

(iii) 20 मिनट तक पानी में लोटने पर पशुओं के शरीर के ताप में 2.0° सैल्सियस की गिरावट।

(iv) 60 मिनट तक पानी में लोटने से शारीरिक ताप में 2.3° सैल्सियस की गिरावट।

अतः पानी में लोटना, हाथों अथवा पाइप से पानी छिड़कने की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है। मलिक (1960) ने अपने अनुसंधानों द्वारा ज्ञात किया कि जलवायु की विभिन्न दशाओं का नाड़ी गति, श्वसन दर और शारीरिक ताप पर क्या प्रभाव पड़ता है।

सारणी-4.4 नाड़ी गति, श्वसन दर और शारीरिक ताप पर जलवायु का प्रभाव।

जलवायु	शुष्क	नम
वायु ताप डिग्री सैल्सियस	33	28
आपेक्षिक घनत्व (प्रतिशत)	33	82
नाड़ी गति (प्रतिशत)	53	44
श्वसन दर (प्रतिशत)	27	29
शारीरिक ताप डिग्री सैल्सियस	38.3	38.3

बालकृष्णन एवं नागारसेंकर (1988) ने प्रयोगों द्वारा ज्ञात किया कि जब पशुओं को सूर्य के प्रकाश में रखा जाता है तो 1° सैल्सियस परिवेश ताप वृद्धि पर गुदा ताप में 0.196° सैल्सियस की वृद्धि होती है। यदि पशुओं को ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी के घरों में रखा जाए तो उनमें पर्याप्त पसीना आता है और वाष्पीकरण द्वारा उनके शरीर को ठंडक मिलती है तथा उनके शारीरिक ताप पर अति लाभकारी प्रभाव पड़ता है। भैंसों को मिट्टी के घरों में रखना, उनके संपूर्ण शरीर पर पानी का छिड़काव तथा पानी में लोटना दोनों की अपेक्षा अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

अनेक वैज्ञानिकों (घानी, 1952) मोशन, 1973, फहीमुद्दीन 1975 एवं गंगवार, 1982, 85) ने ज्ञात किया कि ग्रीष्म ऋतु में भैंसों को यदि सूर्य के सीधे प्रकाश में खड़ा किया जाय तो वे बेचैन हो उठती हैं। वक्कारी आदि (1988) ने 15 माह की आयु एवं 175 कि.ग्रा. भार वाले भैंस सांडों पर अन्वेषण करके सिद्ध किया है कि वे उच्च परिवेश ताप के लिए संवेदनशील है और तापीय घात से उनमें आहार की ग्रहणशीलता तथा थाइरोइड सक्रियता में कमी परन्तु गुदा ताप एवं श्वसन बारम्बारता (फ्रीक्वेंसी) में वृद्धि होती है।

वर्मा एवं हुसैन (1988) ने दूध देने वाली भैंसों पर, परिवेश ताप 15 मिनट तथा 30 मिनट तक पानी छिड़कने के प्रभाव का अध्ययन किया और इनके स्पष्ट परिणाम प्राप्त किये।

रक्त कोशिकायें एवं जलवायु

कूक्ति (1959) एवं मलिक (1961) के अनुसार ग्रीष्म ऋतु में लाल रक्त

सारणी-4.5 दूध देने वाली भैंसों की श्वसन दर, नाड़ी गति और शारीरिक ताप पर पानी छिड़कने के प्रभाव

शारीरिक दशायें	परिवेश ताप बिना पानी छिड़के	15 मिनट तक पानी छिड़का	30 मिनट तक पानी छिड़का
गुदा ताप (डिग्री फारेनहीट)			
4 घंटे पश्चात्	99.16	98.94	98.82
26 घंटे पश्चात्	100.66	100.00	99.68
नाड़ी गति (प्रति मिनट)			
4 घंटे पश्चात्	46.80	44.50	38.80
16 घंटे पश्चात्	52.60	51.20	38.80
श्वसन दर (प्रति मिनट)			
4 घंटे पश्चात्	21.60	17.20	15.40
16 घंटे पश्चात्	25.00	21.00	18.00

** 1 प्रतिशत स्तर पर महत्वपूर्ण; • 5 प्रतिशत स्तर पर महत्वपूर्ण

कोशिकायें एवं हीमोग्लोबिन, शीत ऋतु की अपेक्षा कम पाई जाती हैं। दूसरी ओर प्लाज्मा और रक्त आयतन आंकड़े ग्रीष्म ऋतु में, बछड़ों तथा वयस्कों दोनों में अधिक पाये जाते हैं।

भैंसों में वृद्धि एवं जलवायु

पशुओं में चयापचय अनेक क्रियाओं का एक कठिन संयोग है जो कि वातावरण और आनुवंशिकी द्वारा नियंत्रित होता है। जन्म से पूर्व और ठोस आहार खाना प्रारंभ करने के पूर्व तथा इसके बाद की वृद्धि दर वातावरण के ताप, आर्द्रता, वायुगति और विकरण आदि कारकों से प्रभावित होती है। जलवायु दशायें, आहार और पानी की अंतर्ग्रहण मात्रा तथा खाये गये चारों के द्वारा ऊर्जा उपलब्धि आदि को प्रभावित करती है, जिनका वृद्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। समतापीय पशुओं को जब उनके शून्य तापीय क्षेत्र के ऊपर अथवा नीचे वाले वातावरण में लाया जाता है तो उनका शरीर क्रिया

विज्ञान एवं जैविक रसायन व्यवस्था में महान परिवर्तन होता है। चयापचय की विभिन्न क्रियायें जो एंजाइमों द्वारा निष्पादित की जाती हैं, सब्सट्रेट एवं हार्मोन दोनों के द्वारा ही प्रभावित होती है। वातावरण के ताप तथा आहार की मात्रा में परिवर्तन से इन नियंत्रित करने वाले कारकों पर प्रभाव पड़ता है। थाइरोइड एवं सह–एंजाइम ग्ल्युटाथयोन का वृद्धि से संबंध होता है, जिनके स्राव पर परिवेश ताप का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

पशु के पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता वातावरण के ताप पर निर्भर करती है। उच्च ताप पर वृद्धि दर कमी आने के निम्नलिखित प्रमुख कारण है।

(i) आहार के अंतर्ग्रहण में कमी।

(ii) श्वसन वृद्धि से ऊर्जा व्यय में बढ़ोत्तरी।

(iii) शरीर में नाइट्रोजन वसा और पानी के भंडारण में कमी।

(iv) शरीर के विभिन्न अंगों की वृद्धि में परिवर्तन।

भैंसों में जनन एवं जलवायु

प्रजनन योग्य भैंसों अथवा उनकी ओसरों के समूह में सर्वाधिक उर्वरता, प्रत्येक पशु को तीन सप्ताह में एक सफल गर्भधारण करने में मानी जाती है। इन जनन क्षमता को प्राप्त करने के लिये, समूह के प्रत्येक पशु को मद में होना चाहिए और समय से गर्भधारण करने में सफलता प्राप्त करनी चाहिए। गोवंशों के अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि आनुवंशिकी का उर्वरता पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। अतः स्पष्ट है कि भैंसों के उत्पादन और उर्वरता पर मुख्य रूप से वातावरण का प्रभाव पड़ता है।

भैंसों में गर्भधारण दर, शीत ऋतु (अक्टूबर–जनवरी) में सर्वाधिक और ग्रीष्म ऋतु (मई–जुलाई) में सबसे कम होती है। ग्रीष्म ऋतु में यदि भैंसों के ऊपर पानी छिड़क कर, पानी में नहलाकर अथवा उचित गृह व्यवस्था करके अधिक ताप से और शीत ऋतु में कम ताप से बचा लिया जाए तो उनकी जनन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

भारतीय अनुसंधान कार्य के अधिकतर प्रकाशनों में यह पाया जाता है कि भैंसों में ऋतु का उनकी जनन क्षमता पर प्रभाव पड़ता है परन्तु पटविरामा (1956) ने ज्ञात किया कि मुर्रा भैंसों में जनन की कोई विशिष्ट ऋतु नहीं होती है, यद्यपि शीत ऋतु में उनका निष्पादन अच्छा होता है। अनेक वैज्ञानिकों बसु (1962), काले (1963), सिंह एवं दत्त (1964), यादव एवं कुशवाहा (1965) तोमर (1965), सिंह (1966), राव एवं राव (1968) ने प्रकाशित किया है कि भैंसों में 70–80 प्रतिशत गर्भधारण, जुलाई से फरवरी के बीच हुए। उन्होंने पाया कि इस ऋतु में प्रति गर्भधारण, कम संख्या में सेचन की आवश्यकता हुई। तोमर (1966) और राव एवं राव (1968) के अनुसार भैंसों में गिरती दिवा लंबाई और ताप के साथ लैंगिक उत्तेजना आती है। गिल आदि (1974) ने ज्ञात किया कि ग्रीष्म ऋतु में मद में आने वाले पशुओं में मद का समय 15.0 घंटे और शीत ऋतु में 18.0 घंटे पाया गया। लुकटुके एवं आहूजा (1961) के अनुसार 86.04 प्रतिशत मद प्रातःकाल 9.30 प्रतिशत अपरान्त और 4.66 प्रतिशत रात्रि के समय देखा गया है। उत्तर भारत में सर्वाधिक गर्भाधारण दर शीत ऋतु (अक्टूबर–जनवरी) और न्यूनतम ग्रीष्म एवं शुष्क ऋतु (मई–जुलाई) में पायी गयी है। दक्षिण भारत में, अक्टूबर से अप्रैल का समय गर्भधारण के लिये अधिक उपयुक्त पाया गया है। गंगवार (1976) ने सर्वाधिक गर्भधारण दर (82.2%) जुलाई से अक्टूबर तक प्राप्त की और मेहता आदि (1979) ने ग्रीष्म ऋतु में मात्र 20.0 प्रतिशत गर्भधारण दर प्राप्त की।

राय आदि (1962, 68) ने पशुओं को ग्रीष्म ऋतु में दिन में ऐसे गृहों में रखा जिनके दरवाजों को बंद रखा गया, खिड़कियों में खस की टट्टी लगाई गई, उन पर पानी छिड़का गया तथा पंखे चलाये गये। ऐसा करने से वातावरण के ताप में 8.5° सैल्सियस की कमी आ गई। रात्रि में पशुओं को खुले प्रांगण में रखा गया। इस प्रकार की प्रबंधन व्यवस्था से अधिक संख्या में (80.0 प्रतिशत) पशुओं ने गर्भ धारण किया। मिश्रा आदि (1979) ने अन्वेषणों द्वारा ज्ञात किया कि भैंसों पर यदि दिन में दो बार पानी छिड़का जाए तो उनमें गर्भधारण की दर 20 से बढ़कर 37 प्रतिशत हो जाती है।

पांडे एवं राय (1968) तथा मेहता (1981) ने भैंसों में जनन क्षमता एवं विटामिन 'सी' (एसकोरविक अम्ल) उत्पादन पर ऋतुओं के प्रभाव का अध्ययन किया और ज्ञात किया कि शीत ऋतु में ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा उच्च जनन क्षमता तथा अधिक विटामिन 'सी' उत्पादन पाया जाता है। बहगा आदि (1985)

ने एसकोरविक अम्ल तथा उत्पादन के अन्य मापदंडों पर ऋतुओं के प्रभाव का अध्ययन किया (सारणी–4.6)।

सारणी-4.6 भैंसों में विभिन्न ऋतुओं में एसकोरविक अम्ल उत्पादन एवं उत्पादन मापदंड।

जनन मापदंड	ऋतुएँ	
	शीत	ग्रीष्म
पुटक विकास का प्रारंभ (दिन)	29.70±4.75	30.00±8.23
बच्चा देने के पश्चात प्रथम मद (दिन)	70.10±9.62	37.40±11.82
सर्विस अवधि (दिन)	117.00±30.65	115.00±20.56
प्रति गाभिन होने पर सेचन संख्या	1.57±0.29	2.40±0.68
प्रथम सेचन में गाभिन दर (%)	40	20
संपूर्ण काल (ओवर ऑल) गाभिन दर (%)	70	50
एसकोरविक अम्ल (मि.ग्रा./100 मि.लि.)	0.63±0.05	0.58±0.03

वीर्य की मात्रा और गुणवत्ता वर्ष की ऋतु के अनुरूप बदलती रहती है। ग्रीष्म ऋतु में वीर्य की गुणवत्ता निम्न होती है और मात्रा भी कम पाई जाती है। इसका प्रमुख कारण इस ऋतु में थाइरोइड की सक्रियता का गिर जाना है और इसमें सुधार होते ही वीर्य की गुणवत्ता में भी सुधार हो जाता है। शुक्राणु जनन पर उच्च ताप का कुप्रभाव पड़ता है ताप से प्रभावित होने की संवेदनशीलता पर पशु की पौष्टिक दशा का भी प्रभाव पड़ता है। पशुओं को आरामप्रद वातावरण प्रदान करने से लैंगिक आचरण में सुधार हो जाता है।

कुशवाहा, आदि (1955) के अनुसार ऋतुओं का वीर्य में शुक्राणुओं की प्रारंभिक गति, शुक्राणु संख्या और शुक्राणुओं की सान्द्रता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है परन्तु वीर्य आयतन एवं पी.एच. मान प्रभावित नहीं होती है। अनेक वैज्ञानिकों (सेन गुप्ता आदि, 1963) ने मुर्रा नस्ल की भैंस के वीर्य और उसके चयापचय के कारकों पर विभिन्न ऋतुओं के प्रभाव का अध्ययन किया है।

सारणी-4.7 वीर्य की गुणवत्ता के विभिन्न कारकों पर ऋतुओं का प्रभाव।

वीर्य विशिष्टतायें	ग्रीष्म (मई–जून)	वर्षा (जु.–अ.)	शरद (से.–अक्टू.)	शीत (दिस.–ज.)	वसंत (फ.–मा.)
वीर्य का आयतन (मि.लि.)	3.8	3.8	4.1	4.1	5.1
प्रारंभिक गतिशीलता (0–5)	2.3	2.7	2.4	2.9	4.2
प्रति मि लि. वीर्य सान्द्रता x 10^6	1128	1065	1040	1352	1381
प्रारंभिक फ्रक्टोज प्रतिशत (मि.ग्रा. 100 मि.लि. वीर्य)	742.8	864.3	803.1	730.6	825.0
एसिड फॉस्फेटेज प्रति 100 मि.लि. वीर्य (बोडान्स्कोयूनिट)	291.7	243.3	267.1	294.9	–
एलकेलाइन फास्फेटेज प्रति 100 मि.लि. वीर्य (बोडोन्स्की यूनिट)	241.8	185.8	229.5	279.3	–

सिन्हा, आदि (1966) ने अन्वेषणों द्वारा सिद्ध किया कि जीवित शुक्राणुओं की अधिकतम और निम्नतम संख्या क्रमशः बसंत एवं ग्रीष्म में पाई गई। गिल (1972) ने वर्षा ऋतु में जीवित शुक्राणुओं का अधिकतम प्रतिशत प्राप्त किया परन्तु आगे आने वाले समय में यह संख्या धीरे–धीरे कम होने लगी।

नर पशु की जनन क्रियाओं पर अति उग्र जलवायु का अत्यधिक हानिप्रद प्रभाव पड़ता है। यह ज्ञात हुआ है कि अण्डकोष थैली पर अतिरिक्त उष्मा के प्रभाव से शुक्राणु उत्पादन एवं उनकी परिपक्वता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अधिक ठंड के प्रभाव से भी असामान्य शुक्राणु बनते हैं। उपर्युक्त वास्तविकता को दृष्टि में रख कर मलिक एवं मुदगल (1984) ने विभिन्न ऋतुओं के प्रभाव का वीर्य गुणवत्ता पर अध्ययन किया जो कि सारणी–4.8 एवं 4.9 से स्पष्ट है।

विभिन्न वैज्ञानिकों ने ग्रीष्म ऋतु में नर पशुओं को छाया में रख कर उनके रहने के स्थानों पर पानी छिड़क कर तथा वायु की व्यवस्था करके न केवल उनसे प्राप्त होने वाले वीर्य की गुणवत्ता में सुधार होने के परिणाम प्राप्त किये, मादा पशुओं के मद में भी सुधार हुआ है।

राय एवं पाण्डे (1971) ने प्रकाशित किया कि ग्रीष्म ऋतु में पौष्टिक तत्वों की प्राप्ति का पशु के मद पर प्रभाव नहीं पड़ता है परन्तु आगे चल कर उन्होंने ज्ञात किया कि उच्च पौष्टिक स्तर पर 83.5% और निम्न स्तर पर 66.6% उर्वरता पाई गई थी।

आहार, प्राप्ति, उपयोग एवं जलवायु

जलवायु का प्रभाव प्राकृतिक रूप से उगने वाले अथवा खेती करके उगाये गये चारों के उत्पादन एवं संघटन पर पड़ता है। उष्ण जलवायु में उत्पन्न होने वाली फसलों का पोषक मूल्य, ठंडी जलवायु वाली फसलों की अपेक्षा कम पाया जाता है। उष्ण जलवायु के चारों में प्रायः कच्चा रेशा (क्रूड फाइबर) अधिक परन्तु प्रोटीन एवं खनिज पदार्थ कम मात्रा में पाये जाते हैं। ये जल्दी पक जाते हैं और भंडारण करने पर शीघ्र ही उनकी गुणवत्ता प्रभावित होने लगती है। भूमि के प्रति एकक पर यद्यपि इस प्रकार के चारों से शुष्क पदार्थ तो अधिक प्राप्त होता है परन्तु इसके विपरीत ऊर्जा की मात्रा कम मिलती है। ताप और वर्षा का चारों के उत्पादन पर अधिक प्रभाव पड़ता है। वर्षा ऋतु में हमारे देश के विभिन्न भागों में चारों की अच्छी वृद्धि होती है और

सारणी-4.8 वीर्य की भौतिक क्वालिटी पर ऋतुओं का प्रभाव

विशिष्टतायें	मई	ग्रीष्म जून	जुलाई	अगस्त	शरद सित.	अक्टू.	नव.	शीत दिस.	जन.	फर.	वसंत मार्च	अप्रैल
आयतन (मि.ली.)	3.98	4.42 4.23	4.26	3.48	3.58	4.38	3.88	4.09	4.02 3.99	4.34	3.56	3.62 3.83
सामूहिक सक्रियता (5 प्वांइट स्केल)	2.07	2.09 2.22	2.51	2.19	2.38 2.43	2.73	2.82	2.56 2.70	2.63	2.57	2.79 2.62	2.50
शुक्राणु सांद्रता (x 10^6 मि.लि.)	1170.05	1160.32 1168.00	1173.66	1020.20	1097.84	1078.60	979.44	1079.85 1028.48	1026.16	1116.00	1296.50 1287.17	1449.04
जीवित शुक्राणु (प्रतिशत)	72.54	73.04 73.09	73.71	81.74	82.81 83.21	85.60	82.43 83.14	83.22	83.79	90.33 91.79	93.47	91.59
असामान्य शुक्राणु (प्रतिशत)	5.20	5.21 5.26	5.39	4.70	4.60 4.70	4.82	6.30	6.46 6.42	6.53	5.30	5.45 5.19	4.83
प्रतिक्रिया समय (सेकंड)	86.97	80.44 79.27	70.03	75.99	71.13 71.28	66.75	64.56	66.93 74.02	90.52	77.24	66.31 73.78	77.81

सारणी-4.9 दीर्घ की रासायनिक एवं जैविक क्वालिटी पर ऋतुओं का प्रभाव

विशिष्टताएँ	मई	ग्रीष्म जून	जुलाई	अगस्त	शरद सित.	अक्टू.	नव.	शीत दिस.	जन.	फर.	बसंत मार्च	मई
रासायनिक क्वालिटी												
फ्रक्टोज (मि.ग्रा. प्रतिशत)	700.70	698.08 704.20	713.83	757.00	753.15 759.45	768.21	695.97	690.04 607.27	705.82	758.72	753.18 750.64	740.05
सैमिनल प्लाज्मा प्रोटीन (ग्रा. प्रतिशत)	3.01	3.39 3.22	3.56	4.18	4.23 4.23 4.29	4.47 4.47	4.90 4.90	5.11 5.04	5.13 5.13	5.12 5.12	5.41 5.08	4.74
जैविक क्वालिटी												
एम.बी.आर. समय (सेकंड)	335.33	334.84 331.42	324.11	363.29	342.61 349.30	342.02	379.96	347.80 363.94	364.06	347.55	302.08 299.97	247.85
फ्रक्टोलिटिक इंडेक्स (मि.ग्रा.)	1.21	1.123 1.23	1.26	1.70	1.78 1.74	1.76	1.80	1.89 1.64	1.84	2.03	2.14 2.10	2.14
सैमिनल प्लाज्मा हयालुरोनिडेस सक्रियता (यूनिट्स)	4.84	5.10 5.09	5.35	4.24	4.62 4.29	4.05	3.13	3.30 3.27	3.40	4.52	4.23 4.30	4.16

पर्याप्त मात्रा में पशुओं को हरा चारा प्राप्त होता है परन्तु इस ऋतु के समाप्त होने के पश्चात चारों की मात्रा घटती जाती है।

जलवायु के तीन अवयवों (वातावरणीय ताप, आर्द्रता और वायु गति) मे ताप सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मिश्रा, आदि (1963) वैज्ञानिकों ने अध्ययन के द्वारा ज्ञात किया है कि परिवेश का ताप बढ़ने से भैंसों में आहार की कम मात्रा पाई जाती है परन्तु आपेक्षिक आर्द्रता और आहार की खपत में थोड़ा सीधा संबंध है। वातावरण का ताप 34.4° सैल्सियस से अधिक होने पर भैंसों के आहार अर्न्तग्रहण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ब्रोडी (1949) ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है कि उच्च वातावरणीय ताप पर भैंसों में आहार की खपत में 20–30 प्रतिशत कमी आ जाती है।

मलिक (1964) ने भैंसों को दो समूहों में बांट कर एक ही प्रकार के आहार तथा प्रबंधन व्यवस्था में रख कर उन पर ऋतुओं के प्रभाव का अध्ययन किया (सारणी–4.10)।

सारणी-4.10 आहार की उपयोगिता पर ऋतुओं का प्रभाव

प्रेक्षण	ग्रीष्म	शीत
शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	387.0	390.0
शुष्क पदार्थ अन्तर्ग्रहण (कि.ग्रा.)	7.5	6.9
पानी अन्तर्ग्रहण (कि.ग्रा.)		
1. अधिकतम	36.5	31.6
2. न्यूनतम	36.0	24.6
प्रोटीन की पाचनशीलता (%)	42.7	69.7
वसा की पाचनशीलता (%)	41.9	58.6
कार्बोहाइड्रेट की पाचनशीलता (%)	49.3	46.9

सारणी से स्पष्ट है कि ग्रीष्म ऋतु में पशुओं को अधिक पानी की आवश्यकता होती है। ग्रीष्म ऋतु में ताप उत्पादन (थर्मोजिनेसिस) को कम करने के उद्देश्य से प्रोटीन एवं वसा की कम मात्रा पशु ग्रहण करते हैं परन्तु कार्बोहाइड्रेट का प्रभाव इसके विपरीत होता है। राघवन (1963) के अध्ययनों

से भी इसका समर्थन होता है। एलीव (1961) ने ज्ञात किया कि ग्रीष्म ऋतु में जब परिवेश ताप 40–45° सैल्सियस पहुंच जाता है तो आनाशीय स्राव और अम्लीयता दोनों ही कम हो जाती है परन्तु ठंडे वातावरण में ये सामान्य हो जाती हैं।

विन्चेस्टर और गोरिस (1956) के अनुसार गोवंशों में पानी के अन्तर्ग्रहण की मात्रा, परिवेश के ताप और अर्न्तग्रहण किये गये शुष्क पदार्थ की मात्रा पर निर्भर करती है। मिश्रा आदि (1963) ने प्रकाशित किया है कि ग्रीष्म ऋतु में जो पशु उष्ण वातावरण में रहते हैं वे 13.5 प्रतिशत अधिक पानी पीते हैं, यद्यपि आहार की खपत में कमी आती है। सामान्य धारणा है कि आरामप्रद जलवायु में पशुओं की वृद्धि तथा उत्पादन की उच्च क्षमता पायी जाती है और उच्च परिवेश ताप होने पर उसके विपरीत प्रभाव पड़ता है।

वर्मा एवं हुसैन (1988) ने दूध देने वाली भैंसों पर अनुसंधान कार्य करके आहार के अर्न्तग्रहण और उपयोगिता पर जो परिणाम प्राप्त किये, उन्हें निम्नलिखित सारणी में प्रदर्शित किया गया है। इन वैज्ञानिकों ने पशुओं को तीन वर्गों में विभाजित करके वर्ग 1 में कोई उपचार नहीं दिया परन्तु वर्ग 2 में 15 मिनट तक और वर्ग 3 में 30 मिनट तक पानी छिड़का। ये अनुसंधान ग्रीष्म ऋतु में किये गये (सारणी 4.11–4.13)।

सारणी-4.11 पानी छिड़काव का भैंसों के आहार अर्न्तग्रहण एवं तत्वों की उपयोगिता पर प्रभाव

विशिष्टतायें	वर्ग		
	(1)	(2)	(3)
शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	504.20	532.60	507.40
कुल आहार प्राप्ति (कि.ग्रा.)••	12.27	13.89	13.75
शुष्क पदार्थ अर्न्तग्रहण/100 कि.ग्रा. शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	2.44	2.58	2.71
पाचनशील क्रूड प्रोटीन (कि.ग्रा.)••	0.49	0.61	0.75
कुल पाचनशील तत्व (कि.ग्रा.)••	6.75	7.94	8.32

सारणी-4.12 भैंसों में विभिन्न तत्वों की पाचनशीलता (प्रतिशत)

विशिष्टतायें	वर्ग		
	(1)	(2)	(3)
शुष्क पदार्थ••	51.21	56.61	56.90
क्रूड प्रोटीन••	56.27	65.61	67.95
वसा	69.98	70.96	70.87
कच्चा रेशा (क्रूड फाइवर)••	50.38	54.71	59.64

सारणी-4.13 भैंसों पर पानी छिड़काव का नाइट्रोजन संतुलन पर प्रभाव

विशिष्टतायें	वर्ग		
	(1)	(2)	(3)
कुल नाइट्रोजन प्राप्ति (ग्रा./दिन)	140.49	150.50	148.54
विष्ठा नाइट्रोजन (ग्रा./दिन)	62.62	50.06	47.64
मूत्र नाइट्रोजन (ग्रा./दिन)	38.58	48.53	38.95
दूध नाइट्रोजन (ग्रा./दिन)	27.60	34.95	40.56
कुल नाइट्रोजन उत्सर्जन (ग्रा./दिन)	128.80	133.56	127.15
नाइट्रोजन संतुलन (ग्रा./दिन)••	11.69	16.94	21.39

• = 5 प्रतिशत स्तर पर महत्वपूर्ण

•• = 10 प्रतिशत स्तर पर महत्वपूर्ण

भैंसे मौसमी प्रजनक हैं क्योंकि पौष्टिक तत्वों की ग्राह्यता का जनन क्षमता पर प्रभाव पड़ता है अतः पौष्टिक तत्वों की उपयोगिता पर ऋतुओं के प्रभाव का अध्ययन मानिक, आदि (1989) वैज्ञानिकों ने किया है। शुष्क पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ एवं नाइट्रोजन रहित सत्व (एन.एफ.ई.) की पाचनशीलता पर ऋतुओं का प्रभाव नहीं पड़ता है परन्तु दूसरी ओर कच्ची प्रोटीन (क्रूड प्रोटीन), कच्चा रेशा (क्रूड फाइवर) एवं वसा सत्व (ईथर एक्सट्रेट) पर ऋतुओं का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। पौष्टिक तत्वों को पाचनशीलता बसंत ऋतु में

अधिकतम तथा शीत ऋतु में न्यूनतम पाई गई है। इसका कारण ऋतु के अनुसार चारों के रासायनिक संघटन में परिवर्तन तथा पशु की दैहिकी क्रिया विज्ञान पर ऋतुओं का आघातीय प्रभाव का पड़ना है (सारणी–4.14)।

दूध उत्पादन एवं जलवायु

उच्च परिवेश ताप का प्रभाव आहार अन्तर्ग्रहण और उसकी उपयोगिता पर पड़ता है। अतः दूध उत्पादन का प्रभावित होना भी स्वाभाविक है। इसका अध्यन करते हुए मिश्रा आदि (1963) ने ज्ञात किया कि उच्च ताप से दूध उत्पादन में 30 प्रतिशत से भी अधिक की कमी आ सकती है। उन्होंने बतलाया कि 40.6° सैल्सियस तक ताप होने पर दूध उत्पादन में बहुत कमी आ सकती है।

गिल एवं तिवाना (1977) ने शीत ऋतु (अक्टूबर से जनवरी) में बच्चा देने वाली 35 भैंसों में और ग्रीष्म ऋतु (अप्रैल से जुलाई) तक बच्चा देने वाली 30 भैंसों में गहन अध्ययन करके ज्ञात किया कि शीत ऋतु में 270 दिनों में इनका दूध उत्पादन 2121.59 किलोग्राम था और प्रतिदिन औसत दूध उत्पादन 7.17±0.48 किलोग्राम था। यह उत्पादन ग्रीष्म ऋतु में इसी अवधि में 1788.34 किलोग्राम तथा प्रतिदिन औसतन 6.56±0.69 किलोग्राम पाया गया जो महत्वपूर्ण दृष्टि से प्रथम ऋतु से कम था। ब्यांत अवधि शीत ऋतु में 305 दिनों की और ग्रीष्म ऋतु में 274 दिनों की पाई गई।

हाल ही में मेहता (1985) ने भैंसों के दूध उत्पादन पर ऋतुओं के प्रभाव को ज्ञात किया जो शारीरिक भार, बच्चा देने की अवस्था और ब्यांत में समान थी और निम्न सारणी 4.15 के अनुरूप परिणाम प्राप्त किये।

वर्मा और हुसैन (1988) ने दूध देने वाली भैंसों पर अनुसंधान कार्य करके दूध उत्पादन तथा उसके संगठन पर पानी के छिड़काव के प्रभाव का अध्ययन किया और उसके निम्न परिणाम प्राप्त किये (सारणी–4.16)।

पशु उत्पाद भंडारण एवं जलवायु

पशु उत्पादों के भंडारण पर उष्ण जलवायु का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दूध, दही, घी, मक्खन, मांस आदि खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता ग्रीष्म ऋतु में शीघ्र ही कुप्रभावित होती है और इनके भंडारण के लिए रेफ्रीजिरेटर आदि

सारणी-4.14 नर भैंसे में पौष्टिक तत्वों की उपयोगिता पर ऋतुओं का प्रभाव

वर्ग	ऋतुऐं	शुष्क पदार्थ की ग्राह्यता			पाचन शीलता (प्रतिशत)		
	वास्तविक (कि.ग्रा.)	ग्राम प्रति कि.ग्रा. (0.75)	शुष्क पदार्थ	क्रूड प्रोटीन	दुष्पचनीय तंतु	वसा	वसा रहित सत्व
ग्रीष्म	8.55	77.30	65.23	50.35	70.16	69.49	68.47
ए							
शरद	9.94	79.56	62.92	56.15	68.07	72.95	63.05
शीत	8.17	72.62	62.65	55.75	69.02	70.48	63.30
बसंत	9.08	77.75	62.95	56.94	71.81	77.12	64.01
ग्रीष्म	8.50	76.62	62.46	53.44	71.02	70.51	62.52
बी							
शरद	8.93	78.44	60.56	60.45	63.64	66.75	61.22
शीत	7.98	70.64	58.56	61.61	56.76	71.71	61.31
बसंत	8.86	76.23	61.15	64.53	68.00	73.22	60.26
ग्रीष्म	8.67	76.55	60.75	54.17	65.33	69.26	62.66
सी							
शरद	8.94	77.56	59.32	63.33	64.10	75.47	56.91
शीत	8.10	69.68	59.72	64.62	70.07	57.98	
बसंत	9.13	76.75	61.89	66.43	70.67	77.55	58.69

सारणी-4.15 विभिन्न ऋतुओं में ताप और आर्द्रता का भैंसों के दूध उत्पादन पर प्रभाव

ऋतुयें	औसत ताप (डिग्री सैल्सियस)	औसत आद्रता (प्रतिशत)	दूध की मात्रा (लिटर)	दूध उत्पादन में कमी (%)
शीत (जनवरी–फरवरी)	12.3–14.7	65.0–73.0	9.48	–
बसंत (मार्च–अप्रैल)	20.4–29.4	42.0–66.0	8.48	9.5
ग्रीष्म और शुष्क (मई–जून)	28.1–33.0	36.0–58.0	6.26	26.2
ग्रीष्म और आर्द्र (जुलाई–अगस्त)	29.1–30.5	64.0–74.0	5.21	16.0

सारणी-4.16 ग्रीष्म ऋतु में पशुओं पर पानी छिड़काव का दूध उत्पादन एवं संघटन पर प्रभाव

विशिष्टतायें	वर्ग		
	पानी नहीं छिड़का	15 मिनट पानी छिड़का	30 मिनट पानी छिड़का
दूध उत्पादन/दिन (कि.ग्रा.)**	4.27	5.26	6.06
4 प्रतिशत वसा के लिए सही किया गया दूध/पशु/दिन (कि.ग्रा.)**	6.38	7.86	9.09
पानी प्रतिशत	85.20	85.00	85.00
कुल ठोस प्रतिशत	15.00	15.00	15.40
वसा प्रतिशत	7.29	7.33	7.32
वसा रहित ठोस प्रतिशत	7.71	7.67	8.07
प्रोटीन प्रतिशत	4.04	4	

** 1 प्रतिशत स्तर पर महत्वपूर्ण

7- -140/CSTT/ND/2K

की सुविधाओं का प्रबंध करना आवश्यक हो जाता है। इससे विद्युत पर होने वाले व्यय में भी वृद्धि होती है। अनेक पशु पालक इन पर होने वाले व्यय को वहन नहीं कर सकते हैं। अतः इन शीघ्र नष्ट होने वाले खाद्य पदार्थों को कुछ समय तक भंडारण करके उचित विपणन व्यवस्था की सुविधा का लाभ नहीं उठाया जा सकता है। उच्च ताप वाले देशों में डेयरी उद्योग अथवा मांस उद्योग चलाने में कठिनाइयां आती हैं। संगठित वध गृहों में शीत–भंडारणों की कमी के कारण, उष्ण देशों में मांस के उत्पादन एवं विपणन का कार्य आदिम स्थिति में है। अतः उष्ण जलवायु में मांस को पर्याप्त समय तक सुरक्षित रखने की एक ही विधि अपनाई जा सकती है कि मांस को नमक लगा कर सुखाया जाए।

पशुओं के उत्पादन एवं जनन पर जलवायु के प्रभाव को कम करने के लिये वैज्ञानिकों ने अनेक उपाय बतलाये हैं। इनमें ग्रीष्म ऋतु में पशुओं को छाया वाले गृहों में खुला रखना, पानी में लोटने की अथवा पानी छिड़कने की व्यवस्था करना है। रात्रि में आहार प्रदान करने से भी पशुओं को उच्च ताप के प्रभाव से बचाया जा सकता है। उपर्युक्त उपायों से प्रतिदिन वृद्धि दर में 29 ग्राम की बढ़ोत्तरी, प्रथम बच्चा देने की आयु में 11 दिनों की कमी, प्रति ब्यांत दूध उत्पादन में 107 किलोग्राम की वृद्धि, शुष्क समय और बच्चा देने के अंतराल में क्रमशः 97 और 87 दिनों की कमी आ सकती है।

अध्याय-5

भैंसों में प्रजनन

पशु–पालकों की आवश्यकता के अनुसार हमारे पास पर्याप्त संख्या में अधिक दूध देने वाली पशु की जाति (नस्ल) होनी चाहिए। प्राचीन दिनों में पशु प्रजनन के कार्य को प्रकृति का रहस्य माना जाता था। उस समय पशु प्रजनन को न तो कला और न विज्ञान ही माना जाता था परन्तु समय के साथ विज्ञान का विकास हुआ और प्रजनन को कला की मान्यता मिल गई। आज के युग में कला और विज्ञान दोनों पारस्परिक सहयोग से मानव की इच्छानुसार पशुओं के विकास को आकार दे रहे हैं। पेड़–पौधों के प्रजनक के विपरीत पशु प्रजनक को बहुत धैर्यशाली होना चाहिए और अनेक वर्षों तक परिणाम प्राप्त करने के लिए इंतजार करना चाहिए।

पशु प्रजनक को प्रजनन कार्य सफलतापूर्वक चलाने के लिए उन्हें प्रजनन के सिद्धांत और उसकी भूमिका का ज्ञान होना चाहिए। इनमें से प्रमुख निम्नलिखित है।

1. पशु क्यों और कैसे प्रजनन करते हैं।
2. लैंगिक बनाम अलैंगिक जनन।
3. लैंगिक जनन की विधि।
4. जनन अंगों की संरचना एवं कार्य।
5. वंश परंपरागत परिवर्तन का आनुवंशिक आधार।

प्रजनन की कला

वैज्ञानिक ज्ञान एवं व्याख्या के आधार पर घरेलू पशुओं के व्योहारिक रख–रखाव एवं प्रजनन को प्रजनन की कला कहा जाता है। अतः इसमें पशु प्रजनन के सिद्धांत एवं अभ्यास सम्मलित हैं और इसे निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. प्रजनन की विधियाँ
2. प्रजनन की पद्धतियाँ
3. चयन एवं निकृष्टन

प्रजनन की विधियाँ

अ. प्राकृतिक विधि

प्रकृति के द्वारा बनाया गया यह एक स्वभाविक एवं साधारणतम विधि है जिसमें नर एवं मादा पशुओं के जनन अंगों का लैंगिक संपर्क होता है। प्रकृति में लगभग सभी पशु इस विधि से प्रजनन करते हैं।

ब. कृत्रिम विधि

इस विधि में कृत्रिम यंत्रों की सहायता से प्रजनन कार्य सम्पन्न कराया जाता है और इन यंत्रों का आविष्कार मनुष्यों द्वारा किया गया है। कुछ विकसित देशों में प्राकृतिक जनन विधि बिल्कुल ही लुप्त हो गई है। कृत्रिम प्रजनन विधि प्राकृतिक विधि की अपेक्षा अपव्ययी परंतु दक्ष एवं सुविधाजनक है। इस विधि में नर के लैंगिक अंग से वीर्य एकत्रित करके मादा की योनि में पहुंचा दिया जाता है, इस क्रिया को कृत्रिम सेचन कहते हैं। इस विधि से पशु को गर्भाधान कराने के निम्नलिखित मुख्य लाभ हैं:

1. इस विधि से अच्छी वंशावली वाले साड़ों का भरपूर प्रयोग किया जा सकता है।
2. इस विधि में कम संख्या में सांड़ों की आवश्यकता होती है, अतः उन पर व्यय भी कम करना पड़ता है।
3. वृद्ध और अपंग साड़ों का प्रयोग किया जा सकता है।
4. दूर स्थानों पर रहने वाले सांड़ों का भी उपयोग किया जा सकता है।
5. जनन अंगों के कारण फैलने वाले रोगों से बचाव हो जाता है।
6. संगम करने वाले पशुओं के आकार एवं भार की समस्या नहीं होती है।
7. गर्भधारण की दर में वृद्धि होती है।

8. छोटे पशु समूह में सांड की आवश्यकता नहीं होती है।

9. इससे अभिलेख रखने में सुविधा होती है।

कृत्रिम सेचन की परिसीमन (सीमायें)

1. विशेष प्रकार के यंत्र एवं प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता की आवश्यकता होती है।

2. कृत्रिम सेचन में प्राकृतिक प्रजनन की अपेक्षा गर्भाधान कराने में अधिक समय लगता है।

3. कार्यकर्त्ता को जनन अंगों की रचना और कार्यों का ज्ञान होना आवश्यक है।

4. कृत्रिम सेचन कार्य में काम आने वाले यंत्रों की उचित सफाई एवं निर्जीवीकरण न होने पर उर्वरता की दर कम हो जाती है।

5. अच्छी वंशावली वाले सांड़ का मूल्य गिर जाता है परन्तु उसके वीर्य के मूल्य में वृद्धि हो जाती है।

कृत्रिम प्रजनन की तकनीकी

कृत्रिम प्रजनन की तकनीकी अपनाने में निम्नलिखित क्रियायें सम्मलित हैं।

1. वीर्य को संचय करना।

2. वीर्य का परीक्षण एवं मूल्यांकन करना।

3. वीर्य की देखभाल एवं रक्षा करना।

4. मादा पशुओं में वीर्य सेचन करना।

प्रजनन की पद्धतियाँ

पशुओं के उत्थान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी उपाय उनकी आनुवंशिकी में परिवर्तन करना है। यह कार्य प्रजनन की पद्धतियों तथा चयन की क्रियायों को सम्पन्न करके किया जा सकता है जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण यंत्र प्रजनक के हाथ में है। वास्तविकता यह है कि उपर्युक्त किन्हीं उपायों

से नये जीन का उत्पादन नहीं किया जा सकता है। इनसे मात्र पुराने और अच्छे जींस को नये ढांचे में रखकर अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। प्रजनन की निम्नलिखित दो पद्धतियाँ हैं।

1. अंतः प्रजनन (इन ब्रीडिंग)

प्रजनन की इस पद्धति में संबंधित पशुओं का संगम कराया जाता है। प्रजनन की इस पद्धति की अनेक हानियाँ हैं।

2. संकरण (क्रोस ब्रीडिंग)

रिवराइन नस्लों तथा रिवराइन एवं स्वाम्प नस्लों के मध्य संकरण विभिन्न देशों में वांछित जींस को मिलाने के उद्देश्य से किया गया है।

भारत

गुजरात के कृषक सूरती भैंसों को मुर्रा एवं जाफराबादी सांड़ों से संगम कराके प्रजनन करते रहे हैं। सूरती भैंसों का संकरण मुर्रा नस्ल के सांडों से कराने से मेहसाना नस्ल का उद्गम बतलाया गया है। राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में सूरती भैंसों को मुर्रा सांडों से संगम कराके अनुसंधान किये गये हैं (सारणी–5.1)।

सारणी-5.1 मुर्रा, सूरती एवं उनके संकरों का निष्पादन

विशिष्टतायें	मुर्रा	मुर्रा सूरती	सूरती
बच्चा देने की आयु (माह)	42.0	41.0	48.0
300 दिनों का दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	1471.5	1415.6	1109.8
ब्यांत अवधि (दिनों में)	324.1	321.2	294.9
शुष्क काल (दिनों में)	157.9	106.7	165.1
बच्चा देने का अंतराल (दिनों में)	468.9	411.3	487.8
दूध उत्पादन क्षमता (कि.ग्रा./दिन)	3.2	3.4	2.3

बासु एवं शर्मा (1982) के अनुसार मुर्रा तथा सूरती भैंसों से प्राप्त संकरों में दूध उत्पादन एवं अन्य आर्थिक गुणों में उपयोगी वृद्धि प्राप्त की गई है।

प्रतिदिन दूध उत्पादन में संकरों का उत्पादन (3.4 कि.ग्रा./दिन) मुर्रा नस्ल के पशुओं (3.2 कि.ग्रा.) की अपेक्षा अधिक पाया गया है। नार्गासंकर (1976) के अनुसार बुल्गेरियन मादाओं का मुर्रा साडों से संगम कराके ज्ञात हुआ कि इनके संकरों का निष्पादन शारीरिक भार में मुर्रा के सन्निकट तथा दूध एवं वसा उत्पादन में पैतृक गुणों के मध्य पाया गया (सारणी–5.2)।

सारणी-5.2 मुर्रा, बुल्गेरिया नस्लों एवं उनके संकरों का निष्पादन

विशिष्टतायें	मुर्रा	बुल्गेरियन	मु. x बु.
जन्म के समय भार (कि.ग्रा.)	34.1	31.9	34.3
6 माह के समय भार (कि.ग्रा.)	170.1	132.3	160.2
24 माह के समय भाग (कि.ग्रा.)	508.4	432.8	507.6
300 दिनों का दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	1822.8	1197.6	1491.5
300 दिनों का वसा उत्पादन (कि.ग्रा.)	145.2	91.4	113.9
ब्यांत अवधि (दिनों में)	306.2	296.8	288.0
शुष्क काल (दिनों में)	156.3	151.1	156.4
वसा (प्रतिशत)	7.95	7.95	7.64

नेपाल

श्रेष्ठ एवं यजमान (1988) के अनुसार लैम्पटन पशु पालन अनुसंधान केन्द्र पर स्थित मुर्रा स्थानीय एवं संकर नस्लों की संतानों के 595 अभिलेखों के अध्ययनों के आधार पर ज्ञात किया गया है कि जन्म लेने वाले कटड़े कटड़ियों की कुल संख्या का लगभग 60 प्रतिशत वर्षा ऋतु (जुलाई–अक्टूबर) में जन्म लेता है और ग्रीष्म ऋतु (मार्च–जून) में बहुत कम संख्या में बच्चे जन्म लेते हैं।

उपर्युक्त केन्द्र पर 135 मुर्रा भैंसों के प्रथम ब्यांत का औसत दूध उत्पादन (904.0 कि.ग्र.), 9 स्थानीय भैंसों के प्रथम ब्यांत के उत्पादन (422.7 कि.ग्रा.) के दो गुने से अधिक और संकरों से (589.4 कि.ग्रा.) 53.5 प्रतिशत से अधिक पाया गया है (सारणी–5.3)। स्थानीय और संकर नस्लों की अपेक्षा मुर्रा प्रति ब्यांत अधिक समय तक दूध देती है।

सारणी-5.3 मुर्रा, स्थानीय तथा संकर नस्लों का कुल उत्पादन, दूध में रहने और शुष्क रहने के औसत दिन।

नस्ल	ब्यांत संख्या						
	1	2	3	4	5	6	7–10
			कुल उत्पादन (कि.ग्रा.)				
मुर्रा	904.5	1118.1	1128.1	1154.6	915.1	918.4	1003.7
स्थानीय	422.7	542.6	577.8	403.3	–	–	486.6
संकर (मु.xस्था.)	589.4	801.5	804.4	866.7	–	–	805.9
			दूध में रहने के दिन				
मुर्रा	254.6	305.8	248.1	253.6	241.3	206.4	271.7
स्थानीय	221.5	241.3	248.3	179.3	–	–	222.7
संकर (मु.xस्था.)	214.5	244.5	219.0	226.0	–	–	214.2
			शुष्क रहने के दिन				
मुर्रा	406.6	332.9	237.4	246.5	375.6	350.5	327.6
स्थानीय	295.6	213.3	189.8	273.7	–	–	226.3
संकर (मु.xस्था.)	351.3	157.0	171.6	164.6	–	–	237.4

मुर्रा नस्ल की भैंस में प्रथम बच्चा जनन में (52.3 माह) संकर नस्ल की अपेक्षा अधिक समय (48.3 माह) लगता है और इनमें बच्चा जनन का अंतराल भी अधिक पाया जाता है (सारणी–5.4)।

सारणी-5.4 मुर्रा स्थानीय और संकर नस्लों में प्रथम बच्चा जनन की आयु एवं बच्चा जनन अन्तराल

नस्ल	प्रथम बच्चा जनन की आयु (माह)	बच्चा जनन का अन्तराल (माह)
मुर्रा	52.3	19.8
स्थानीय	44.5	19.0
संकर (मु. x स्था.)	48.3	16.6

नेपाल में पाली जाने वाली भैंसों की मुर्रा नस्ल के उत्पादन पर विभिन्न ऋतुओं का महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया (सारणी–5.5) है।

सारणी-5.5 ऋतुओं का मुर्रा भैंस की उत्पादन क्षमता पर प्रभाव

ऋतुऐं	दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	दूध देने के दिन	शुष्क रहने के दिन	प्रतिदिन दूध (कि.ग्रा.)
फरवरी–जून	1276.3	395.7	267.0	3.3
जून–अक्टूबर	1236.0	323.1	252.4	3.9
अक्टूबर–फरवरी	1275.9	344.4	296.3	3.8

चीन

उपलब्ध संदर्भों (योन्गजुओं क्सिआओ, 1988) के अनुसार चीन ने भारत से 1957 में 55 भैंसों प्राप्त की थीं। इस देश ने पाकिस्तान से नीली रावी नस्ल की 50 भैंसें 1974 में प्राप्त की थीं। चीन में उपलब्ध विभिन्न नस्लों की रक्त शुद्धता स्पष्ट नहीं है और उनका दूध उत्पादन भी कम (सारणी–5.6) है।

सारणी-5.6 चीनी भैसों का दूध उत्पादन एवं अन्य गुण

स्थानीय नाम	ब्यांत उत्पादन (दिनों में)	औसत दैनिक उत्पादन (कि.ग्रा.)	कुल उत्पादन (कि.ग्रा.)	वसा (प्रतिशत)
शनघई	240.0	2.5–4.0	600–900	5.5–9.0
सिचुऑन	235.9	1.94	3441.4	9.57
गामिंडांग्र	300.0	2.50	751.0	9.89
वेंजहोड	279.8	3.68	1030.6	9.50
फुआन	210.0	2.47	519.6	–
झंगिंझोड	297.0	2.40	713.0	–

आधुनिक वर्षों में भैंसों के संकरण से बहुत उन्नति हुई है। जहां 1974 में चीन में भैंसों के मात्र 10 हजार से कम संकर थे आज 150 हजार से भी अधिक संकर उपलब्ध हैं। चीनी भैंसों में 20 वर्ष संकरण के कठिन कृषि कार्य के फलस्वरूप महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हुये हैं। स्थानीय नस्लों की अपेक्षा मुर्रा एवं स्थानीय नस्लों की संतानों के शारीरिक गठन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। नर तथा मादा संकरों के औसत शारीरिक माप, जन्म से 6 माह की आयु तक स्थानीय नस्ल से उत्तम पाये गये हैं। स्थानीय भैंसों की तुलना में संकर पशु बड़े (वक्ष चौड़ाई, रम्प ऊंचाई एवं रम्प चौड़ाई) पाये गये हैं। संकर सांड शारीरिक हृदय गर्थ एवं वक्ष सूचकांक में स्थानीय नस्ल से प्राप्त हुए हैं। शारीरिक ऊँचाई, सिंर की लंबाई एवं ललाट (अग्रिम सिर) चौड़ाई में स्थानीय नस्ल संकर से अधिक पाई गई (सारणी–5.7) हैं।

अध्ययनों से यह भी ज्ञात होता है कि प्रथम एवं द्वितीय वंशजों के मुर्रा तथा स्थानीय नस्ल के संकरण से ब्यांत का दूध उत्पादन क्रमशः 1157.7 और 1540.3 किलोग्राम पाया गया है परंतु उनके दूध में वसा की मात्रा कम (सारणी–5.8) पाई गई है।

संकर संतान का शरीर स्थूलकाय, निम्न ढांचा, बड़ा उदर, शरीर का पिछला भाग एवं अयन पूर्ण विकसित होता है। इनके सींग मु. x स्था. संकरों

सारणी-5.7 वयस्क स्थानीय तथा संकर (मुर्रा x स्थानीय) के शारीरिक माप (से.मी.)

शारीरिक भाग	स्थानीय	मुर्रा x स्था.	स्थानीय	मुर्रा x स्था.
शरीर की लंबाई	114.07	110.57	114.02	112.02
शरीर	128.32	134.16	136.76	132.90
हृदय गर्थ	146.38	148.35	155.94	149.89
केनन गर्थ	17.63	16.31	17.08	16.01
वक्ष चौड़ाई	60.93	63.22	62.54	63.97
थर्लवक्ष	83.56	86.34	85.52	84.30
रम्प ऊंचाई	99.46	100.51	99.11	100.85
ललाट (अग्रसर)	48.82	47.13	40.50	54.06
रम्प चौडाई	52.02	58.89	53.30	57.72
सिर लंबाई	36.34	34.35	35.53	30.44

सारणी-5.8 चीन की भैंसों की विभिन्न नस्लों का उत्पादन

नाम	संख्या	औसत ब्यांत (दिन)	औसत ब्यांत दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	औसत दैनिक उत्पादन (कि.ग्रा.)
स्थानीय	10	235.9	441.4	1.94
मु. x स्था.	12	276.9	1096.7	3.73
मु. x स्था.	60	270.8	1153.7	4.30
(मु. x स्था.)xमु.	12	291.7	1540.3	5.20
मुर्रा	81	237.1	1573.2	6.60
नीली–रावी	25	261.0	1873.6	7.20

की अपेक्षा अधिक सर्पाकार होते हैं। शरीर का रंग गहरा धूसर होता है। लंबा सफेद पूंछ का गुच्छा होता है। ललाट पर सफेद चिन्ह तथा स्पष्ट आंखें होती हैं। नीली–रावी नस्ल का 50 प्रतिशत जर्मप्लाज्म इन संकरों में पाया जाता है। इनमें नीली–रावी के अनेक गुण उदाहरणार्थ अच्छी मांसपेशियाँ, पूर्ण रूपेण विकसित अयन, विशाल उदर, एवं लम्बा सफेद स्विच (पूंछ का गुच्छा) पाया जाता है। दूध, मांस उत्पादन और कार्य करने के सर्वोत्तम गुण एवं अच्छा स्वभाव इन पशुओं में पाया गया है।

सारणी-5.9 चीन की विभिन्न भैंसों के दूध का संघटन

नाम	कुल ठोस संख्या	(प्रतिशत)	वसा (प्रतिशत)	प्रोटीन (प्रतिशत)	लैक्टोज (प्रतिशत)
मु. x स्था.	8	20.11	8.50	5.15	5.55
नीली x स्था.	7	18.87	7.94	4.90	4.53
त्रिसंकर	11	18.95	8.11	4.71	5.01
मुर्रा	9	16.20	6.66	4.17	4.64
नीली–रावी	9	17.65	7.19	4.30	4.64
ग्वान्गडोन्ग	88	21.28	10.81	5.26	4.83
ग्वान्धी	8	21.79	11.67	5.56	4.28
सिचुआन	7	21.67	9.57	5.90	5.22
झेजिआन्ग	8	18.70	9.50	4.50	3.80

ग्वान्धी पशुधन अनुसंधान संस्थान (1980–84) के अनुसार त्रिसंकर पशुओं के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय ब्यांतों का औसत दूधन उत्पादन 2100.7, 2574.8 एवं 2704.9 किलोग्राम पाया गया है। तीन चयन किये गये अद्वितीय गुणों वाले पशुओं का सर्वाधिक उत्पादन प्रति ब्यांत (305 दिन) क्रमशः 3036.6, 3620.2 एवं 3830.3 किलोग्राम पाया गया था। ये उत्पादन मौलिक नस्लों के उत्पादन से अत्यधिक (सारणी–5.9) है।

यद्यपि अभी तक मुर्रा x स्था. नस्ल के संकरों के बारे में मतैक्य नहीं हैं तथापि उनमें अपने पैतृक गुणों से, कार्य क्षमता के अधिक अच्छे गुण पाये गये हैं। मुख्य समस्या इनके प्रबंधन एवं प्रशिक्षण में आती है।

सारणी-5.10 एक से तीसरे ब्यांत तक कुछ चीनी भैंसों का दूध उत्पादन।

नाम	ब्यांत क्रम	ब्यांत अवधि (दिन)	कुल दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	औसत दैनिक दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	उच्चतम दैनिक दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)
त्रि–संकर	1	311.5	2100.7	12.50	6.75
	2	312.2	2574.2	15.75	8.25
	3	317.9	2704.9	17.00	8.51
नीली–रावी	1	297.0	1500.0	7.45	5.05
x स्था.	2	351.8	2370.1	11.50	6.74
	3	324.3	2287.0	11.50	7.05
मुर्रा	1	269.6	1711.9	16.70	6.35
	2	269.5	1921.8	17.50	7.13
	3	284.7	2073.6	14.8	7.28
नीली x रावी	1	274.3	1825.4	19.9	6.66
	2	265.7	2087.2	10.9	7.86
	3	279.2	2096.5	18.7	7.51

बालू दोमट एवं चिकनी (क्ले) मिट्टी में नर संकरों की औसत खिंचाव शक्ति क्रमशः 206.17 कि.ग्रा., 177.5 कि.ग्रा. तथा 33.68 और 6.94 प्रतिशत स्थानीय नर भैंसों से अधिक है अर्थात् 154.38 कि.ग्रा. एवं 166.67 कि.ग्रा. की अपेक्षाकृत। इसी प्रकार मादा संकरों में औसत खिंचाव शक्ति 161.14 कि. ग्रा. एवं 166.67 कि.ग्रा है जो कि स्थानीय मादा संकरों की अपेक्षा (124.82 एवं 136.67 कि.ग्रा.) 29.09 प्रतिशत और 21.95 प्रतिशत अधिक है।

संकरों में मांस उत्पादन क्षमता अत्यधिक उन्नत हुई है। तीन वर्ष के एक नर संकर का मांस के लिये शारीरिक भार 397 कि.ग्रा., ड्रेसिंग प्रतिशत 47.8, खालिस मांसप्रतिशत 39.94 और सर्वोत्तम कट 54.45 प्रतिशत पाया गया है।

ल्यु चेंग हवा एवं टी चेंग शन हसु–(1982) के अनुसार चीन की विभिन्न भैंसों की नस्लों के जनन लक्षण (सारणी–5.11) यहां प्रतिवेदित हैं।

सारणी-5.11 भैंसों की विभिन्न नस्लों के जनन लक्षण

नाम	वयस्कता आयु		प्रथम सर्विस की आयु		मद चक्र	
	संख्या	दिन	संख्या	दिन	संख्या	दिन
त्रि–संकर	6	605.3±169.6	16	831.2±127.1	13	21.6±1.5
1/2 मरूराह	1	667.0	4	979.3±138.9	16	21.5±1.6
मुर्रा	1	667.0	36	1201.4±318.4	19	23.2±4.1
नीली–रावी	2	915.5±55.9	15	1048.0±24.3	45	23.7±4.0

ल्यु चेंग हवा चेंग शनु हसु (1982)

थाईलैंड

इस देश की भैंसें स्वाम्प टाइप है जो कि भार वाहन एवं मांस उत्पादन के लिए सर्वोत्तम परन्तु दूध के लिए उपयोगी नहीं है। मात्र कुछ कृषक मुर्रा नस्ल रखते हैं जिनका उद्देश्य दूध उत्पादन प्राप्त करना होता है। इनके संकर दूध और कार्य दोनों के लिए प्रभावकारी ढंग से प्रयोग किये जा सकते हैं। गत 10 वर्षों से इस देश में भैंसों की संख्या 5.5–5.6 मिलियन से बढ़ नहीं सकी है। इसका मुख्य कारण इस देश में मशीनीकरण का अपनाया जाना है। थाईलैंड में भैंसों का वितरण सारणी–5.12 से स्पष्ट है।

सारणी-5.12 थाइलैंड में भैंसों की विभिन्न नस्लों का वितरण

क्षेत्र	स्वाम्प	मुर्रा	संकर
उत्तर	1,538,743	100	1,000
उत्तर–पूर्व	4,087,136	75	300
केन्द्रीय	698,747	500	500
दक्षिणी	2,36,949	50	30

एस. तुमवासन, 1982

धान के खेतों की जुताई आदि कार्य करने के लिए स्वाम्प नस्ल का प्रयोग किया जाता है। एक बार स्वाम्प भैंस को कार्य के लिए जब ट्रैंड कर लिया जाता है तो उनको लगभग 12 वर्षों तक इस कार्य में लाया जा सकता है। यद्यपि चीन में अन्वेषणों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि संकरों में स्थानीय नस्ल की अपेक्षा कार्य करने की श्रेष्ठता होती है परन्तु थाईलैंड में इस प्रकार के अन्वेषण अब प्रारंभ किये गये हैं। इनके प्राप्त परिणाम सारणी–5.13 में उद्धृत किये गये हैं।

सारणी-5.13 थाइलैंड की स्वाम्प भैंसों की जुताई क्षमता

क्षेत्र	भैंसों द्वारा जोता गया क्षेत्रफल (प्रतिशत)	प्रतिवर्ष कार्य दिवस	प्रतिदिन कार्य घंटे	जोता गया क्षेत्रफल (राई) (प्रति पशु/दिन)
उत्तर	95	66	5.2	6.7
उत्तर–पूर्व	82	137	5.1	0.5
केन्द्रीय	9	146	3.0	0.7

एस. तुमवासर, 1982

थाइलैंड में मुर्रा एवं स्वाम्प भैंसों के संकर उत्पन्न किये गये (सारणी–5.14) है और इनकी निष्पादन क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

स्वाम्प, मुर्रा एवं संकरों के साथ जन्म से वयस्क होने की आयु तक विभिन्न अंतरालों में भार वृद्धि (ग्राम/प्रतिदिन) सारणी–5.15 के अनुसार पाया गया है।

स्वाम्प भैंसों में औसतन 45 प्रतिशत ड्रेसिंग प्रतिशत पाया जाता है। शव का 72.8 प्रतिशत मांस प्राप्त होता है और वसा तथा हड्डियों का अनुपात 6.2 एवं 20 प्रतिशत पाया जाता हैं स्वाम्प भैंसों के मास में 20 प्रतिशत प्रोटीन, 75 प्रतिशत पानी तथा 3.5 प्रतिशत वसा पाया जाता है। स्वाइन आई क्षेत्रफल स्वाम्प भैंसों में 41.8 वर्ग सेंटीमीटर पाया जाता है।

सारणी-5.14 भैंसों की विभिन्न नस्लों का वृद्धि की विभिन्न दशाओं में भार (कि.ग्रा.)

आर्थिक गुण	स्वाम्प	मुर्रा	संकर
जन्म भार	26.2(13), 27.5(8) 26.6()14, 28(43) 20(39), 33(27) 27.8(4), 25(38)	38(16), 48.5(39)	37.1(50) 35(39) 36(48)
दूध छोड़ने के समय भार	70.6(3), 70.7(8) 66.3(14), 68(43) 103(14), 169(2)	140(16) 180(50)	196.6(50) 150(48)
एकवर्षीय पशुओं का भार	12.2(8), 178.8(10) 119(14), 128(43) 178(4), 195(2)	180(6) 190(48)	275.6(50)
व्यस्क भार	409.6(17), 534.1(14) 538.9(37), 498.7(32) 529.9(29), 595(10) 483.1(2), 500(48) 458.3(30), 510(5) 530(4), 600(3)	425(39) 500(48) 550(43)	580(50)

सारणी-5.15 थाइलैंड की भैंसों की विभिन्न नस्लों की वृद्धि (ग्राम/दिन/पशु)

आयु अंतराल	स्वाम्प	मुर्रा	संकर
जन्म से दूध छोड़ने की आयु तक	221.1(8) 510(2)	650(48)	690.7(50)
दूध को छोड़ने की आयु से एक वर्ष की आयु तक	286.6(8) 330(39) 430(27) 370(2)	625(48) 640(39)	653.8(50) 500(39)
एक वर्ष की आयु से वयस्क होने तक	130>8	450(48)	470(50)

एस. तुमवासर, 1982

स्वाम्प भैंसों में 275 दिनों के ब्यांत में मात्र एक किलोग्राम प्रति पशु प्रतिदिन उत्पादन देखा गया है। दूध वसा का औसत प्रतिशत 9.3 पाया गया है। थाइलैंड में भैंसों की विभिन्न नस्लों के आर्थिक उपयोगिता के गुण (सारणी–5.16) में दिखाये गये हैं।

सारणी-5.16 थाइलैंड की विभिन्न नस्लों के जनन गुण

आर्थिक गुण	स्वाम्प	मुर्रा	संकर
प्रथम बच्चा जनन के समय आयु (दिन)	912.5(10) 1,825(22) 1,921(51)	1,108(50)	1,261(50)
गर्भावधि (दिन)	320(10) 336(22) 323(20)	310(50)	303(50)
बच्चा जनन अंतराल (दिन)	615(10) 621(22) 674.8(51) 44.0(27)	351(50) 351(50)	344(50) 344(50)

एस. तुमवासर, 1982

इस देश में जो पशु काम करने योग्य नहीं रहते, उन्हें मांस के लिये प्रयोग किया जाता है। प्रति व्यक्ति भैंसों की संख्या, बढ़ते मांस की मांग के कारण 1976.1981 तक गिरी है। देश में भैंस के मांस की आवश्यकता में (3.9 प्रतिशत) वृद्धि हुई है जब कि गोवंश में यह वृद्धि 4.0 प्रतिशत है। स्वाम्प भैंसों को वर्ष के 3–4 माह के लिए ही कार्यों के लिए प्रयोग किया जाता है। अतः आवश्यकता यह महसूस की जा रही है कि शेष समय में इसे घर में बच्चों के पोषण के लिए दूध प्रदान करने के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए। थाइलैंड में प्रजनक स्वाम्प भैंस की उपयोगिता का क्रम कार्य मांस एवं दूध उत्पादन के लिए रखते हैं। यहां प्रयास किए जा रहे हैं कि ये भैंसें बच्चा उस ऋतु में दें, जब प्रचुर मात्रा में खाद्य पदार्थ और चारा उपलब्ध हो। स्वाम्प और मुर्रा के संकर इस देश में कृषि पद्धति के पूरक माने जाते हैं क्योंकि इनसे गांवों में बच्चों को दूध प्राप्त होता है।

8- -140/CSTT|ND/2K

बुलगेरिया

बुलगेरिया की भैंस की स्थानीय नस्ल भारत की जंगली भैंस से उत्पन्न हुई है। लगभग 12 शताब्दी पूर्व यह भैंस भारत से लाई गई थी। यहां के निवासियों को यह इतनी पसन्द आई कि सदियों से वे इसे कार्य, दूध और मांस के लिए पालते चले आ रहे हैं। बुलगेरिया में कृत्रिम गर्भाधान कराने के लिए एक केन्द्र शयन में स्थापित किया गया है, जहां पर विभिन्न भारतीय नस्लों (मुर्रा, नीली, रावी, जाफराबादी एवं सूरती) के उच्च कोटि के सांड़ रखे जाते हैं।

इस देश में मुर्रा एवं स्थानीय नस्ल के संकरण से प्राप्त हुए संकरों से औसतन 1782 कि.ग्रा. से 1946 कि.ग्रा. दूध जिसमें 7.57–8.01 प्रतिशत वसा अथवा कुल वसा की मात्रा 135.0–153.0 किलोग्राम थी, प्राप्त किया गया (सारणी–5.17) है।

सारणी-5.17 तीसरे या अधिक ब्यांतों (210-305 दिन) में भैंस का औसत दूध उत्पादन

दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	वसा (प्रतिशत)	मक्खन (कि.ग्रा.)	संदर्भ
1893	8.01	151.6	पोलीहरोनोव, आदि (1973)
1840–1946	7.79–7.86	143.5–153.0	पोलीहरोनोव एवं एलेक्सीव (1979)
1782	7.57	135.0	एलेक्सीव (1979)
1797	7.61	136.0	वानकोव (1980)
1864	7.61	141.9	एलेक्सीव, आदि (1982)

सेन सकी बाई डेय एलेको एलेक्सी, 1982।

भैंसों की नवीन संख्या की उच्च आनुवंशिकी क्षमता का आभास उनकी उच्च ब्यांत उत्पादन क्षमता (2500–3000 कि.ग्रा.) से स्पष्ट होता है। कुछ भैंसों ने तो अपवाद रूप से एक ब्यांत में 4000 कि.ग्रा. से भी अधिक दूध उत्पादन

सारणी-5.18 भैंस के संकरों के औसत भार

बच्चा जनन संख्या	शारीरिक भार (कि.ग्रा.) संकर एक्स	एफ–1	संकर	एक्स आर–1 सी	संदर्भ
I	530.7	12.5	–	–	पोलीहरोनोव, आदि (1977)
	520.0	10.51	531.5	10.24	बानकोव (1980)
	509.1	4.49	514.3	10.85	पीवा (1981)
II	578.9	13.12	–	–	पोलीहरोनोव, आदि (1977)
	567.9	11.06	584.0	12.05	बानकोव (1980)
	560.7	9.21	576.2	11.16	पीवा (1981)
III	610.8–633.8	13.09	–13.17	–	पोलीहरोनोव, आदि (1977)
एवं अधिक	594.2	10.30	610.0	9.51	बानकोव (1980)
	585.5	13.54	595.5	12.48	पीवा (1981)

सेन सकी आई डेग एलेक्सीवण, 1982।

किया है। भैंस संख्या 8 (मीना एफ–1) ने 365 दिनों के संपूर्ण तीसरे ब्यांत में 4585 कि.ग्रा. तथा 305 दिनों के ब्यांत के आधार पर 4238 कि.ग्रा. दूध उत्पादन किया था।

अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि भैंस के बच्चों का औसत जन्म भार नरों में 29.8 कि.ग्रा. तथा मादा में 29.1 कि.ग्रा. पाया गया है। एफ–1 संकरों में जन्म भार मादा में 32.3 कि.ग्रा.; 3 माह की आयु में 101.1 कि.ग्रा.; 6 माह की आयु में 166.0 कि.ग्रा.; 9 माह की आयु में 229.9 कि.ग्रा.; 12 माह की आयु में 293 कि.ग्रा.; 18 माह की आयु में 398.1 कि.ग्रा. और 24 माह की आयु में 480.1 कि.ग्रा. तथा दूसरा बच्चा देते समय भार 561–611 कि.ग्रा. प्रकाशित किया गया है।

ज्ञात हुआ है कि इस देश में भैंसों में मोटा होने की अच्छी क्षमता है। पोलीहरोंनोव आदि (1968, 70 एवं 74) के अनुसार एक युवा सांड की एक दिन की वृद्धि दर 879–1035 ग्राम पाई गयी थी। इसकी ड्रेसिंग प्रतिशत 53.5–54.6 तथा मांस अनुपात 77.3–82.7 प्रतिशत था।

मिस्र

अलीम (1982) के अनुसार मिस्र में भैंसों की संख्या 2 मिलियन से अधिक है। मिस्र में 1978 में कुल दूध उत्पान 1.8 मिलियन टन था और इस उत्पादन का 64.0 प्रतिशत अथवा 1.15 मिलियन टन भैंसों द्वारा उत्पादन किया गया था। वर्ष 1980–91 में देश में 140 हजार टन मांस भैंसों से प्राप्त हुआ था।

दूध देने वाली भैंसों के उपयोगी आर्थिक गुणों को प्रदर्शित करने वाले आंकड़े सारणी–5.19 में प्रस्तुत किये गये हैं।

सारणी में प्रस्तुत आंकड़े देश में उपलब्ध सभी पशुओं के औसत उत्पादन एवं अन्य गुणों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं, क्योंकि उनकी गणना चयन किये गये कुछ पशुओं के आधार पर ही की गई है।

वरण एवं निकृष्टन

पशु प्रजनन में वरण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण यंत्र ही नहीं, नींव का पत्थर भी है। प्रजनन का अंतिम लक्ष्य वांछित पशुओं का संगम कराना और अवांछित पशुओं का निकृष्टन (कलिंग) करना होता है जिससे गत वंश की अपेक्षा वर्तमान

सारणी-5.19 आर्थिक उपयोगिता के गुणों से संबंधित आंकड़े

विशिष्टतायें	अभिलेखों की संख्या	औसत
प्रथम बच्चा देने की आयु (माह)	240	39.9
ब्यांत की अवधि (दिन)	688	311.1
शुष्क अवधि (दिन)	479	200.3
बच्चा देने का अंतराल (दिन)	471	507.9
दूध उत्पादन (गैलन)	698	445.7
वसा (प्रतिशत)	240	6.57
अवसा रहित ठोस (प्रतिशत)	216	9.44
कुल ठोस (प्रतिशत)	216	15.66
मादा भैंस के शरीर का भार (कि.ग्रा.)	440	535.6
बच्चों का जन्म भार (कि.ग्रा.)		
i. नर	227	38.2
ii. मादा	213	35.7

पशुओं की उन्नति हो सके। वरण मनुष्यों का अविष्कार नहीं है, सृष्टि में मनुष्यों की उत्पत्ति के समय से ही यह कार्यरत रहा है। प्राकृतिक वरण के सिद्धांत के अंतर्गत जो पशु वातावरण के साथ अपना अनुकुलन कर लेते थे, उनका जनन होता था परन्तु जो पशु ऐसा करने में समर्थ नहीं होते थे वे जीवित नहीं रह सकते थे।

वरण से नवीन जीन्स उत्पन्न नहीं होते हैं इससे वांछित जीन्स की बारम्बारता में वृद्धि होती है और एक आबादी की आनुवंशिक संघटन में परिवर्तन आता है। घरेलू पशुओं के वरण में प्रयास करना होता है कि वांछित आनुवंशिकी वाले पशुओं का वरण करके आगामी वंश के लिए उनकी संख्या में वृद्धि की जाए। वरण के लिए पशु विशेष के पूर्वजों, सन्तानों सामानांतर संबंधियों के बारे में सूचना उपलब्ध होने से संभावित आनुवंशिक आंकलन को प्राप्त करने में सुविधा होती है वरण निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं:

1. समलक्षणी (फीनोटाइप) वरण

इस वरण को समूह वरण अथवा व्यक्तिगत निष्पादन परीक्षण भी कहते हैं। इसमें व्यक्तिगत फीनोटाइप (समलक्षण) को आनुवंशिकी एवं प्रजनन मूल्य का एक मात्र आंकलन के रूप में उपयोग किया जाता है। व्यक्तिगत् वरण पशुधन की उन्नति में प्रयोग किया जाने वाला अति महत्वपूर्ण यंत्र रहा है जिसकी संस्तुति दोनों लिंगों द्वारा प्रकट किये जाने वाले लक्षणों के लिए की जा सकती है। वास्तव में वरण से ज्ञात होता है कि एक पशु विशेष क्या प्रतीत होता हैं

लाभ

1. दोनों लिंगों द्वारा प्रकट किये जाने वाले लक्षणों के लिए उपयोगी पद्धति है।
2. पशु विशेष से संबंधित सूचना उदाहरणार्थ जन्म भार, वृद्धि दर आदि सुगमता से एवं अविलंब प्राप्त हो जाती है।
3. एक ही समय अनेक पशुओं पर प्रयोग किया जा सकता है।

सीमायें

1. एक ही लिंग से संबंधित लक्षण उदाहरणार्थ दूध उत्पादन की दशा में दोनों लिंगों में इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है।
2. निष्पादन के अभिलेख देर से प्राप्त होने पर उस समय तक पर्याप्त समय समाप्त हो जाता है।
3. जहाँ पर वंशागति कम हो वहां यह प्रजनन मूल्य का निकृष्ट सूचक है।
4. लक्षण विशेष को अधिक महत्व मिलने से कभी–कभी इससे प्रजनक भ्रमित हो जाता है।

पारवारिक (वंशावली) वरण

प्रजनन की इस पद्धति में पशुओं का वरण सीधे ही उनके पूर्वजों (माता–पिता एवं पितामहों) और समानान्तर सम्बन्धियों (भाई, बहनों) के आधार

पर किया जा सकता है। व्यक्तगत वरण की भांति ही यह भी शत–प्रतिशत सही नहीं होता है। इससे ज्ञात होता है कि एक पशु विशेष कैसा होना चाहिए। इसमें परामर्श दिया जाता है कि वरण करते समय सन्निकट सम्बन्धियों (माता–पिता, भाई–बहन आदि) की वंशावली को ही आधार मानना चाहिए क्योंकि दूर से संबंधित पशुओं का बहुत कम महत्व होता है।

पशु वंशागति (इनहेरीटैंस) का आधा सांड और आधा मादा से प्राप्त करता है, यदि माता–पिता अनेक जीन्स के लिए विषमयुग्मजी (हिटिरोजाइगस) हैं जैसा कि आवश्यक है तो यह ज्ञात होना संभव नहीं होता है कि कौन सी आधी वंशागति संतान को प्राप्त हुई है।

लाभ

1. उन युवा पशुओं के लिए उपयोगी है जिनका उत्पादन जीवन में देर से प्रकट होता है।
2. जिन पशुओं में वांछित गुण मात्र एक लिंग में ही प्रकट होते हैं, उपयोगी पद्धति है।
3. उच्च आनुवंशिकी वाले लक्षणों के लिए यह उत्तम है।
4. पशुओं की वंशागति क्षमता का आंकलन प्राप्त करने में सहायक होता है।

सीमायें

1. दूर के पूर्वजों को दिये गये अनावश्यक महत्व से यदा–कदा कपट सिद्ध होता है।
2. कृपापाय पशु की संतान को अनावश्यक समर्थन प्राप्त होता है।
3. यदि लक्षण विशेष की संतान निम्न है तो संबंधियों के अभिलेख वास्तविक मार्ग–दर्शक सिद्ध नहीं होते हैं।

सन्तति परीक्षण (प्रोजिनी टेस्टिंग)

सन्तति परीक्षण से ज्ञात होता है कि पशु विशेष क्या है इससे सन्तति के निष्पादन के आधार पर एक पशु के वंशागति मूल्य का मूल्यांकन होता

है। प्रजनन में सन्तति परीक्षण के प्रयोग हेतु निश्चित पशु को रखना चाहिए। वास्तव में जो माता–पिता अपने वंशागति का आधा अपने सन्तानों में प्रत्येक को प्रदान करते हैं, वे सन्तति परीक्षण का आधार होते हैं। इस कारण से ही इस परीक्षण की उपयोगिता मात्र नरों की आनुवंशिकी के आकंलन में है। सिद्धांतः सन्तति परीक्षण, वंशावली आंकलन से उत्तम है क्योंकि पशु विशेष के मात्र दो माता–पिता होते हैं परन्तु इनके सन्तानों की संख्या अधिक हो सकती है।

वास्तव में भैंसों में आनुवंशिक उन्नति आनुवंशिक रूप से उत्तम साड़ों के प्रयोगों से होती है। डेयरी पशुओं में आनुवंशिक उन्नति के लिए सन्तति परीक्षण के आधार पर सांड़ का चयन करना एक सर्वोत्तम विधि है। संगठित फार्मों पर पशुओं की संख्या कम होने के कारण ये परीक्षण किसानों के पशुओं पर किये जा सकते हैं। सांड़ों की मूल्यांकन योजना की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसकी कम से कम 20 बेटियों का मूल्यांकन किया जाए। हमारे देश में साधनों की कमी होने के कारण इतनी संख्या में मादाओं को एक अवसा पर मिलना संभव नहीं है। अतः क्षेत्र परीक्षण के अतिरिक्त इस समस्या का कोई निदान नहीं है। इससे एक अतिरिक्त लाभ यह भी है कि आहार और प्रबंधन की विभिन्न दशाओं में परीक्षण संभव हो जाता है।

विश्व के अनेक देशों में दूध देने वाले डेयरी पशुओं की जातियाँ किसानों के पशुओं की सन्तति परीक्षणों के द्वारा विकसित की गई है परन्तु हमारे देश के किसान अभी इतने प्रतिभा सम्पन्न नहीं हैं और हमारे गाँवों की दशा बाह्य देशों से सर्वथा भिन्न है अतः हमे अपनी व्यवस्था में सन्तति परीक्षण का कार्य करने की आवश्यकता है।

हमारे देश में सन्तति परीक्षण योजना अनेक केन्द्रों पर चल रही है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने 1970 में देश के निम्नलिखित चार स्थानों पर भैंस प्रजनन समन्वित अनुसंधान केन्द्र स्थापित किये हैं।

1. पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)।
2. राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)।
3. राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)।
4. कृषि महाविद्यानलय, गुजरात, कृषि विश्वविद्यालय, आनंद (गुजरात)

इस योजना का मुख्य उद्देश्य सन्तति परीक्षण के द्वारा भैंस सांड़ों की पहचान करना है।

लुधियाना केन्द्र पर 14–15 माह में प्रत्येक सेट में 6–8 सांड़ों का परीक्षण करने के लिए लगभग 300 भैंसों के एक समूह को स्थापित किया गया है जिसका दूध उत्पादन 305 दिनों का औसतन 2200 कि.ग्रा. से अधिक है। इसके अतिरिक्त इस केन्द्र पर सिद्ध प्रमाणित किये गये साड़ों से मादा भैंसों को मिला (संगम) कर उच्च गुणों वाले युवा सांड़ों का उत्पादन करने हेतु एक उच्च आनुवंशिकी वाले समूह को भी रखा गया है। इस समूह का 305 दिनों के ब्यांत का औसत उत्पादन 3,070 कि.ग्रा. पाया गया था। एक दिन का अत्यधिक दूध उत्पादन 15 लिटर पाया गया था। पन्द्रह भैंसों ने एक दिन में 20 लिटर से अधिक दूध दिया था।

सांड़ों के प्रथम 3–4 सेटों के सन्तति परीक्षण परिणाम इन केन्द्रों से प्रकाशित किये गये हैं परन्तु प्रति सांड़, बेटियों की संख्या इतनी कम है कि उन पर पूर्ण–रूपेण निर्भर करना कठिन है। अतः यह निश्चित किया गया कि किसानों के पशुओं पर सन्तति परीक्षण कार्य प्रारम्भ करना चाहिए परन्तु इस दिशा में अभी तक वांछित उन्नति नहीं हो सकी है।

सन्तति परीक्षण में समस्यायें

क्षेत्र दशा में सन्तति परीक्षण कार्य में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। विश्व के डेयरी उद्योग में विकसित देशों के प्रतिकूल हमारे देश में प्रति किसान 1–5 भैंसों पाई जाती हैं और इस परीक्षण में इन किसानों के भागीदार होने से अधिक सूचना प्राप्त होने की संभावना नहीं है और इसके लिए किसानों को आवश्यक जानकारी देकर बड़े डेयरी फार्म स्थापित करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न गाँवों में आहार एवं प्रबंधन व्यवस्था में भी वैज्ञानिक विधि से सुधार लाना आवश्यक है। कुल मिला कर गांवों में कृत्रिम गर्भाधान में किसानों को पूर्ण विश्वास की कमी है और इसकी दर ग्रामीण क्षेत्रों में मात्र 5–15 प्रतिशत है। बड़े किसान अपने स्वयं के सांड रखते हैं, कुछ पंचायतों में सांडों की व्यवस्था होती है तथा किराये पर भी सांडों की सेवायें उपलब्ध हैं।

सन्तति परीक्षण योजना के अन्तर्गत आने वाले पशु कभी–कभी विक्रय कर दिये जाते हैं जिससे वे अन्य क्षेत्रों में चले जाते हैं और उनसे सूचना एकत्रित

करना असंभव हो जाता है। पशु–पालक या तो अनभिज्ञता के कारण ऐसा करते हैं अथवा कभी–कभी पशु को रखने की असमर्थता के कारण पशु विक्रय करना, उन्हें आवश्यक होता है।

सन्तति परीक्षण योजना के अन्तर्गत जन्मी सन्तति की पहचान के लिए उनको चिन्हित करना आवश्यक होता है। इसके लिए उनके कानों में अगूँठी (रिंग) पहना दी जाती है। अगूँठी का चयन कुशलता के साथ करना चाहिए। अन्यथा निकृष्ट गुणों वाली अगूँठियां थोड़े दिनों में ही कानों से गिर जाती हैं और इस स्थिति में पशु की पहचान करना कठिन हो जाता है।

अधिकतर पशु–पालक अपने पशुओं के उत्पादन का लेखा नहीं रखते हैं और कुछ तो उनका उत्पादन बतलाने में भी विश्वास नहीं रखते हैं। ऐसी परिस्थिति में लेखा कार्यकर्त्ता रख कर कार्य कराने में भी कठिनाई आती है।

सन्तति परीक्षण कार्य चलाने में सावधानियाँ

इस कार्य के लिए ऐसे गाँवों का चयन करना चाहिए जहाँ सुगमता से पहुँचा जा सके और जो रोड से जुड़े हों तथा जहां पर्याप्त संख्या में भैंसें उपलब्ध हों। चयन किये गये गांवों के किसानों अथवा पशु–पालकों को योजना के महत्व का ज्ञान होना चाहिए और उनमें सहकारिता की भावना होनी चाहिए।

सन्तति परीक्षण कार्य के लिएं प्रयोग किये जाने वाले सांड़ों का चयन करने के लिए सांड मातृफार्म (बुल मदर फार्म) स्थापित करना आवश्यक है जहां से परीक्षण कार्य के लिए भविष्य में सांड़ों को चयन किया जा सके। अंतिम रूप से आवश्यक सांड़ों की संख्या से दो गुने सांड़ इस परीक्षण के लिए पाले जाते हैं। परीक्षण सांड़ों का चयन करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

1. माँ का दूध उत्पादन।
2. सांड़ का सूचनांक यदि प्राप्त हो।
3. वृद्धि एवं शारीरिक गठन सूचना।
4. कामलिप्सा और
5. वीर्य हिमीकरण की संभावना।

आदर्श सन्तति परीक्षण योजना में एक स्थान पर जहाँ सभी परीक्षण सांड रखे जाते हैं, वीर्य हिमीकरण की सभी सुविधायें होनी चाहिए। इन सांड़ों के वीर्य को इस प्रकार वितरित करना चाहिए कि प्रत्येक सांड़ की संतान का प्रत्येक प्रबंधन स्तर के लिए परीक्षण हो सके। विचारणीय है कि एक समय पर एक केन्द्र पर एक प्रकार के सांड़ का ही वीर्य रखा जाए और कुछ अंतराल पर इसे अन्य केन्द्रों पर बारी–बारी भेजा अथवा घुमाया जाए।

सन्तति परीक्षण के द्वारा किसी सांड़ के चयन की सत्यता प्रति सांड संतान के आकार पर निर्भर करती है जितना बड़ा संतान का आकार होगा उतने ही सत्य परिणाम प्राप्त होंगे। साधारणतः यह परीक्षण प्रत्येक सांड़ की लगभग 50 संतानों के निष्पादन पर आधारित होना चाहिए। प्रति सांड़ परीक्षण अनेक कारकों पर निर्भर करता है। यह ज्ञात किया गया है कि प्रथम सम्पूर्ण ब्यांत के आलेख के लिए 20 कृत्रिम सेचन आवश्यक हैं। पुत्रियों के 50 संपूर्ण ब्यांतों के लिए प्रति सांड़ 1,000 संगम होना चाहिए।

सर्वविदित है कि छुट्टियों के दिनों अथवा कार्यालय के दिनों के पूर्व या पश्चात् पशु पालकों को गर्भाधान केन्द्रों पर अपने पशुओं को गाभिन कराने की सुविधाएँ प्राप्त नहीं हो पाती हैं। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों के शिक्षित व्यक्तियों को गर्भाधान कराने का प्रशिक्षण देना होगा। यदि आवश्यक समझा जाए तो उन्हें निजी गर्भाधान केन्द्र चलाने का परामर्श भी दिया जा सकता है।

योजना का सही आलेख रखना परम आवश्यक है और यह भी आवश्यक है कि क्षेत्र में उत्पन्न सन्तानों को भली–भांति चिन्हित किया जाए। इसके लिए बच्चों के कानों में लिखने वाली मशीन (टेटूइंग मशीन) से लिखना अथवा अगूंठी (रिंग) पहनाना ही कारगर विधि है। यह अच्छी धातु की और टिकाऊ होनी चाहिए। गांव विशेष में कई योजनायें भी एक ही समय में प्रचलित हो सकती है। अतः अगूंठी के एक ओर योजना/ऐजेंसी का नाम और दूसरी ओर उस पशु की संख्या लिखी जानी चाहिए।

सन्तति परीक्षण का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य आंकड़े एकत्रित करना है। अतः इसमे अति सावधानी और परिश्रम की आवश्यकता है। संबंधित पशुओं के निम्नलिखित अभिलेख रखने चाहिए।

1. प्रथम बच्चा देने की आयु।
2. ब्यांत का दूध उत्पादन।
3. ब्यांत की अवधि।
4. सर्विस की अवधि।
5. दूध में उपस्थित वसा की प्रतिशत।
6. आहार का अभिलेख।

दूध उत्पादन एक माह में एक दिन प्रातः एवं संध्या का दूध माप कर अभिलिखित किया जा सकता है। प्रथम अभिलेखन बच्चा देने के 15–45 दिनों के अंदर किया जा सकता है। इसमें एक माह में 5 दिनों का भी अन्तराल हो सकता है।

यदि पशु–पालक शिक्षित है और अपने दूध उत्पादन का अभिलेख रख सकता है तो सर्वोत्तम है अन्यथा निम्नलिखित विधियाँ अपनानी चाहिए।

(अ) नियमित कर्मचारी द्वारा

अनेक स्थानों पर दूध उत्पादन का अभिलेख रखने के लिए नियमित कर्मचारी को रखा गया है परन्तु इन पर सबसे कम निर्भर किया जा सकता है।

(ब) ठेका के आधार पर

इसके लिए स्थानीय व्यक्तियों को काम के आधार पर ठेका दिया जा सकता है। इस विधि को अच्छा पाया गया है परन्तु इसमें निरीक्षण की बहुत आवश्यकता पड़ती है। एक व्यक्ति को तीन पशुओं से अधिक की रिकार्डिंग का कार्य नहीं देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त पशु की वृद्धि और शारीरिक माप (ऊंचाई, लम्बाई, हृदय गर्थ) का अभिलेख 6 माह की आयु तक चार माह के अंतराल से रिकार्ड किया जा सकता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त निम्नलिखित का उल्लेख करने के लिए भी अभिलेख रखे जा सकते हैं।

1. किसान की भूमि का क्षेत्रफल।
2. चारा उत्पादन के लिए प्रयोग की जाने वाली भूमि का लेखा–जोखा।
3. पशु समूह का आकार।
4. परिवार के सदस्यों का शिक्षा स्तर और
5. दूध की ब्रिक्री से होने वाली आय पर परिवार की निर्भरता।

सन्तति परीक्षण कार्य में पशु-पालकों का दायित्व

इस योजना को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए आवश्यकता है कि पशु–पालक अथवा किसान को इसका भली–भांति ज्ञान हो। योजना क्षेत्र में शिविरों का आयोजन कर लोगों को शिक्षित करना चाहिए। निम्नलिखित कार्यों के संपन्न कराने में भी पशु–पालकों का सहयोग अपेक्षित है।

अ. मद में आने पर योजना की भैंसों को निश्चित सांड़ के वीर्य द्वारा कृत्रिम गर्भाधान कराना चाहिए।

ब. भैंसों द्वारा बच्चा देने पर योजना अथवा एजेंसी को सूचित करना चाहिए।

स. मादा बच्चों को चिन्हित करना चाहिए।

द. योजना के कर्मचारियों को संबंधित पशुओं के अभिलेख (रिकार्ड) प्रदान कराना चाहिए।

य. संबंधित कर्मचारी यदि दूध उत्पादन का लेखा (रिकार्ड) करने के लिए उपस्थित न हो तो योजना अधिकारियों को इसकी सूचना देना चाहिए।

र. यदि पशु पालकों को स्वयं ही दूध उत्पादन का लेखा रखना हो तो उसे ईमानदारी और लगन से करना चाहिए।

आंकड़े एकत्रित करते समय सावधानियाँ

आंकड़े एकत्रित करते समय निम्नलिखित सावधानियों का ध्यान रखना चाहिए। लगभग 10 प्रतिशत दूध रिकार्डिंग का कार्य सुपरवाईजरी स्टाफ द्वारा स्वयं करना चाहिए और प्रत्येक पशु के अभिलेख को समय–समय पर निरीक्षण करना चाहिए। अकस्मात निरीक्षण करने के लिए, दूध अभिलेख करने के निश्चित दिनांक के दूसरे दिन दूध उत्पादन को कर्मचारियों अथवा सुपरवाईजर द्वारा देखना चाहिए, जिससे दूध की वास्तविक मात्रा का ज्ञान हो सके तथा सही अभिलेख रखने की संभावना रहे।

दूध रिकार्ड करने वाले की सेवा शर्तें इस प्रकार हों कि असावधानी करने पर उसे तुरन्त सेवामुक्त किया जा सके।

यदि संभव हो तो पशु–पालकों अथवा किसानों से व्यक्तिगत संबंध स्थापित करके अथवा उन्हें लालच देकर विश्वासपात्र बनाया जाना चाहिए।

सन्तति परीक्षण की सफलता के सुझाव

यह योजना उन ग्रामीण क्षेत्रों में चलाना चाहिए, जहां प्रसार के अन्य कार्य चल रहे हों। संबंधित किसानों के साथ व्यक्तिगत संबंध बनाये रखना योजना की सफलता में अति लाभकारी सिद्ध होता है।

अधिकतर पशुओं में बन्ध्यता की समस्यायें होती हैं, इसके लिए संबंधित गांवों में बन्ध्यता शिविरों का आयोजन करना चाहिए। इससे एक तो पशुओं का परीक्षण हो सकेगा और दूसरे पशु–पालक योजना में अधिक रूचि भी ले सकेंगे।

योजना में परिवर्तन करने की गुजाइंश होनी चाहिए, जिससे अनुभव प्राप्ति के साथ–साथ उसमें परिवर्तन किया जा सके।

संबंधित क्षेत्र अथवा गांवों में आवारा भ्रमण करने वाले निम्न कोटि के सांड़ों को बधिया करा देना चाहिये, जिससे सन्तान के प्रति किसी प्रकार की आशंका न रह सके।

बच्चा देने के 20 दिनों के पश्चात प्रथम परीक्षण दूध रिकार्ड करना चाहिए और इसके पश्चात् एक माह के अंतर से यह कार्य किया जा सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों के क्रिया–कलापों में अमूल भूत सुधार कर की आवश्यकता है जिससे सन्तति परीक्षण के अच्छे परिणाम प्राप्त हो सके और पशु–पालकों को गर्भाधान में विश्वास हो सके।

भैंसों में आर्थिक उपयोगिता के गुण एवं प्रजनन क्षमता :

यद्यपि भार वाहन आदि कार्यों के लिए भैंसों की जातियाँ (नस्लें) अभी तक स्पष्ट नहीं हो सकी हैं तथापि यह सत्य है कि गायों की भांति भैंसों के नर कार्य के लिए और मादायें दूध देने के लिए प्रयोग की जाती है। भैंसों की आर्थिक उपयोगिता में निम्नलिखित विभिन्न गुणों का महत्वपूर्ण स्थान है।

जन्म भार

पशु के जन्म भार से उनके स्वास्थ्य के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है। रागव (1952) के अनुसार भैंस के कटड़ा, कटियों का जन्म भार क्रमशः 38.5 एवं 36.4 किलोग्राम पाया गया है। मुर्रा भैंसों में राय एवं लुक्टुके (1962) ने कटड़ों के भार 28.0 किलोग्राम तथा कटियों का 23.2 किलोग्राम प्राप्त किया और आंकड़ों का सांख्यकीय विश्लेषण करने पर पाया कि जन्म भार का यह अंतर 5 प्रतिशत स्तर पर महत्वपूर्ण था। बसु, आदि (1978) ने नर तथा मादा बच्चों का जन्म भार क्रमशः 33.0 एवं 31.7 किलोग्राम ज्ञात किया। राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल के अनुसार कटड़ों का जन्म भार 20.6 से 34.4 किलोग्राम और कटड़ियों का 26.1 से 32.8 कि.ग्रा. तक पाया गया है। कर्ल (1982) ने नर तथा मादा बच्चों में ये आंकड़ें क्रमशः 30.0–40.0 कि.ग्रा. तथा 25.0–45.0 किलोग्राम पाये। इसी क्रम में वर्मा एवं हुसैन (1985) ने यह आंकड़ें 35.50 एवं 30.5 किलोग्राम प्रकाशित किए हैं।

वृद्धि

वृद्धि एक कठिन क्रिया है जिसे साधारण रूप से उल्लखित नहीं किया जा सकता है क्योंकि मात्र आकार वृद्धि से यह पर्याप्त अधिक है। पशुओं की विभिन्न प्रजातियों में विभिन्न समयों और अन्तरालों में शरीर के भार में आनुपातिक बढ़ोत्तरी को वृद्धि कहते हैं। शरीर में कोशिकाओं की संख्या और आकार में बढ़ोत्तरी से भी वृद्धि होती है जैसे–जैसे पशु बढ़ता है, वह भार में और शरीर के विभिन्न भागों में आनुपातिक वृद्धि करता है।

कालेफ (1942) ने बुल्गेरियन भैंसों के बच्चों में प्रतिदिन वृद्धि दर 620 ग्राम प्राप्त की और इसके साथ ही यह भी पाया कि जैसे–जैसे पशुओं की आयु 3 माह से 6 माह की ओर बढ़ती है, शारीरिक वृद्धि दर कम हो जाती है। तालपत्रा (1963) ने 8–11 माह की आयु के मुर्रा बच्चों में 635 ग्राम प्रतिदिन की दर से वृद्धि प्राप्त की। तोमर एवं देसाई (1965) ने मिलिटरी फार्म के 6 माह की आयु के बच्चों में 635 ग्राम, 1 वर्ष की आयु में 490 ग्राम तथा 2 वर्ष की आयु में 377 ग्राम प्रतिदिन की दर से वृद्धि प्राप्त की। पायने (1968) के अनुसार भैंसों की उचित आहार व्यवस्था होने पर उसमें प्रतिदिन 0.91 किलोग्राम तक वृद्धि पाई गई है। पाकिस्तान में मुंडी नस्ल की एक वर्ष की आयु में 0.907 किलोग्राम नरों में और 0.888 किलोग्राम मादा बच्चों में वृद्धि दर पाई गई है। इसके उपरान्त दो वर्ष की आयु तक यह वृद्धि दर क्रमशः 0.526 किलोग्राम तथा 0.582 किलोग्राम प्रकाशित की गई है। रंजन, आदि (1973) ने 530–560 ग्राम प्रतिदिन वृद्धि दर प्रकाशित की है। बरूआ आदि (1982) ने मुर्रा जाति के भैंसों के बच्चों में देशी बच्चों की अपेक्षा 17.6 से 20.6 प्रतिशत अधिक वृद्धि समान पौष्टिक स्तर पर प्राप्त की। राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में नर तथा मादा बच्चों में सारणी 5.20 के अनुसार वृद्धि दर प्राप्त की है।

सारणी 5.20 मुर्रा नर तथा मादा बच्चों की औसत वृद्धि (कि.ग्रा.) दर

आयु (माह)	मादा	नर
0–3	470.7	398.3
3–6	443.7	410.6
6–12	417.9	456.4

इन अध्ययनों से यह भी निष्कर्ष निकाले गये हैं कि जन्म, 3 माह और 6 माह की आयु में भार तथा 3–6 माह की आयु तक भारी वृद्धि दर पर लिंग एवं जन्म की ऋतु का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है जबकि 12 माह की आयु में भार और जन्म से 12 माह की आयु तक वृद्धि दर पर मात्र जन्म की ऋतु का प्रभाव पड़ता है।

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय में विभिन्न आयु में मादाओं में निम्न सारणी 5.21 के अनुसार शारीरिक भार पाया गया।

सारणी-5.21 भैंसों की कटड़ियों का आयु की विभिन्न दशाओं में शारीरिक भार

आयु (माह)	भार (कि.ग्रा.)	आयु (माह)	भार (कि.ग्रा.)
3–0	68.3	18.0	254.4
6.0	102.5	24.0	317.4
12.0	183.2	–	

वृद्धि दर उपर्युक्त आयु में क्रमशः 395, 380, 448, 396 और 360 ग्राम प्रति दिन प्रकाशित की गई है। सन्धु (1985) के अनुसार आयु की विभिन्न दशाओं में सारणी 5.22 में प्रदर्शित भार, भैंस के बच्चों में पाया गया।

सारणी-5.22 भैंस के बच्चों का आयु की विभिन्न दशाओं में शारीरिक भार

आयु (माह)	भार (कि.ग्रा.)	आयु (माह)	भार (कि.ग्रा.)
3.0	76.3	12.0	213.4
6.0	126.0	24.0	337.0
9.0	170.2		

साहित्य में प्रकाशित लेखों के आधार पर विभिन्न विद्धानों ने गहन अध्ययन से पाया कि भारतीय भैंसों की जातियों में 24 माह की आयु में सर्वाधिक भार नीली–रावी में और इसके पश्चात् मुर्रा में पाया जाता है (सारणी–5.23)।

सारणी-5.23 भैंस की विभिन्न जातियों में आयु की विभिन्न दशाओं में शारीरिक भार (कि.ग्रा.)

जाति (नस्ल)	आयु की विभिन्न दशायें (माह)			
	3–0	6–0	12–0	24–0
सूरती	58.1	79.6	109.4	205.1
मुर्रा	70.6	112.1	105.1	283.2
नीली रावी	86.3	144.5	243.3	395.5

1. वसवय्या, 1978
2. बसु एवं रा, 1979
3. शर्मा एवं बासु, 1984

अनेक विद्धानों (राठी, आदि 1973, मारवाहा, 1974, बासु एवं राव, 1979) के मतानुसार आयु की विभिन्न दशाओं में आनुवंशिक अनुमान (हेरिटेबेलिटि एस्टीमेंट) 0.27–0.09 और 0.72–0.11 के मध्य पाये गये हैं। नोटियाल एवं भट्ट (1979) ने 3,6 और 12 माह की आयु के शारीरिक भार पर ये आंकड़े क्रमशः 0.49 0.09 0.42 0.08 एवं 0.39 0.09 बतलाये हैं।

परिपक्वता

पशु के प्रथम बार मद में आने को वयस्क माना जाता है। पशु का वयस्क दशा में पहुंचना बहुत कुछ शारीरिक भार (सोरेनसन, आदि 1959) और आयु (जैनुद्दीन, 1983) पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त श्रतु, ताप, नस्ल, लिंग व्यायाम, कार्य की दशा और विपरीत लिंग से संपर्क का भी वयस्कता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

नस्ल (जाति) आहार व्यवस्था और प्रबंधन के अनुसार परिपक्वता की आयु 2–3 वर्ष के मध्य पाई गई है। सांड सामान्यतः साढ़े तीन वर्ष की औसत आयु में मादा से संगम करने योग्य हो जाते हैं और ओसर प्रथम बार मद में दो से ढाई वर्ष की आयु में आती है। दोवसन एवं कामोनपटना (1986) के अनुसार भली–भांति पाले गये पशुओं में 15–18 माह की आयु में प्रथम मद प्रकट होती है। भैंसों में गायों की अपेक्षा परिपक्वता देर से आती है। भैंसों की विभिन्न नस्लों में वैज्ञानिकों ने वयस्कता की आयु समय–समय पर बतलाई है।

सारणी-5.24 भैंसों की विभिन्न नस्लों में वयस्कता आयु

नस्ल (जाति)	आयु (माह)	संदर्भ
मुर्रा	29.8–34.2	भट्टाचार्य (1954) बासु आदि (1984) त्रिपाठी आदि (1985)
नागपुरी	40.0	कैकिनी एवं पारागाओंकर (1969)
स्वाम्प	36.0	जैनुद्दीन (1983)
सूरती	16.2	जानकीरमन एवं मेहता (1987)

गर्भावधि (जेस्टेशन अवधि)

मिस्री भैंसों में रागव एवं ऑस्कर (1951) ने यह अवधि 316.7 दिन बतलाई है और इसके साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि नर बच्चा होने पर इस अवधि में 1–2 दिनों की देर होना संभव है। मिस्र में अनेक वर्षों तक भैंसों पर कार्य करते हुए धनेम तथा अन्यों ने (1955) विभिन्न ऋतुओं में गर्भाविधि 318.5 दिनों की बतलाई है और शरद ऋतु में यह अवधि 314. 5 दिनों की पाई गई है।

ब्यांत अवधि (लैक्टेशन पीरियड)

काकिनी एवं परागाओंकर (1969) के अनुसार नागपुरी भैंसों में ब्यांत अवधि 280 दिन, मुर्रा में 310 दिन तथा सूरती में 355 दिन पाई गई है। आम्बले आदि (1970) द्वारा प्रकाशित लेख में ब्यांत अवधि 279 दिनों से 383 दिनों तक पाई गई है। अनेक ब्यांतों के आधार पर यह अवधि 258–354 दिनों की बतलाई गई है। अनेक वैज्ञानिकों (गोखले, 1974, बासु एवं घई, 1978, रेड्डी और उमरिकार एवं देशपाण्डे, 1985) के मतानुसार मुर्रा एवं नीली–रावी में प्रथम ब्यांत अवधि 300 दिनों की पाई गई है। भदावारी, नागपुरी और सूरती नस्लों में यह अवधि 276 तथा 295 दिनों के मध्य पाई गई है (सिंह एवं देसाई, 1962) और कुण्डी में यह अवधि 322 दिन (आलिम, 1967 तथा धनानी, आदि 1983) पाई गई है।

कनौजिया (1975) द्वारा ब्यांत की अवधि पर फार्म का महत्वपूर्ण प्रभाव महत्वपूर्ण पाया गया है जबकि पैट्रो एवं भट्ट (1978) रेड्डी (1980) ने इन प्रभावों को महत्वपूर्ण नहीं पाया है। मुर्रा नस्ल की भैंसों में तोमर एवं तोमर (1960) और जैन एवं तनेजा (1982) ने सिद्ध किया कि ब्यांत अवधि पर माह और ऋतु का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है परन्तु कई अन्य विद्धानों (देसाई एवं कुमार, 1964, सिंह, 1966 और रेड्डी, 1980) ने इससे असहमति प्रकट की है। धर्मेश्वरदास एवं बलेन (1985) के अनुसार प्रथम एवं अनेक ब्यांतों की औसत अवधि क्रमशः 297.28 ± 2.32 तथा 294.29 ± 1.04 दिन पाई गई है।

पैट्रो एवं भट्ट (1979) ने भैंसों में ब्यांत अवधि की प्रथम आनुवंशिकी आंकलन को 0.11 ± 0.05 परन्तु बाद की अवधि में यह आंकलन कम पाया है।

ब्यांत उत्पादन (लैक्टेशनल यील्ड)

फाहमी, आदि (1975) ने मिस्री भैंसों में प्रथम ब्यांत का दूध उत्पादन क्रमशः 1681 एवं 1455 किलोग्राम प्राप्त किया है परन्तु भदावरी और नागपुरी नस्लों में प्रथम ब्यांत का उत्पादन बहुत कम (क्रमशः 1165 एवं 926 किलोग्राम) पाया गया है। प्रथम ब्यांत के बाद उत्पादन में पैट्रो एवं भट्ट (1979) ने अनवरत वृद्धि और सर्वाधिक उत्पादन चौथे ब्यांत में प्राप्त किया है। मुर्रा भैंसों के एक ब्यांत का औसत उत्पादन चिकारा (1978) के अनुसार 1521 किलोग्राम तथा कुमार एवं भट्ट (1978) के अनुसार 1868 किलोग्राम पाया है। रेड्डी एवं तनेजा (1984) ने नीली रावी नस्ल का एक ब्यांत का औसत उत्पादन 1707 किलोग्राम प्रकाशित किया है। धनानी, आदि (1983) ने कुण्डी नस्ल के एक ब्यांत का औसत उत्पादन 1208 किलोग्राम पाया है।

पैट्रो एवं भट्ट (1979) ने भैंसों के उत्पादन का गहन अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला कि फार्म एवं वर्ष का दूध उत्पादन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। किसी फार्म विशेष पर कम अथवा अधिक दूध उत्पादन पर ब्यांत की अवधि का प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त उस फार्म पर उपस्थित पशुधन की आनुवंशिकी तथा प्रबंधन कार्य से भी दूध उत्पादन प्रभावित होता है। अनेक वैज्ञानिकों (सिंह एवं सिंह, 1967, कुमार एवं भट्ट, 1978, रेड्डी, 1980 और जैन एवं तनेजा, 1982) ने ज्ञात किया है कि जनवरी–अप्रैल में बच्चा देने वाले पशुओं में अधिकतम उत्पादन (1666–1733 किलोग्राम) इस मौसम में अधिक हरा चारा उपलब्ध होने से तथा इसके विपरीत अगस्त से दिसम्बर में बच्चा देने वाली भैंसों में न्यूनतम दूध उत्पादन (1548–1611 किलोग्राम) पाया गया है।

बच्चा देने की आयु का तीसरे ब्यांत तक के दूध उत्पादन पर सकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। बच्चा देने के समय शारीरिक भार और पूर्व सर्विस अवधि का चौथे से पांचवे ब्यांत पर प्रभाव पड़ता है। लम्बा पूर्व शुष्क काल, उच्च उत्पादन में सहायक नहीं होता है। बच्चा देने के समय आयु और भार, पूर्व सर्विस काल एवं शुष्क काल और ब्यांत अवधि को मिला कर दूध उत्पादन की कुल परिवर्तनशीलता (वैरियेविलिटी) का 34.1 प्रतिशत पाया गया है। ब्यांत अवधि को छोड़ कर ये परिवर्तनशीलता 9.7 प्रतिशत पाई गई है। कुछ अध्ययनों में ब्यांत अवधि को मिला कर उत्पादन परिवर्तनशीलता 55

प्रतिशत पाई गई है। अतः स्पष्ट है कि ब्यांत अवधि दूध उत्पादन में परिवर्तन का मुख्य स्रोत होता है।

जौहरी एवं भट्ट (1979) तथा पाण्डे (1983) ने मुर्रा नस्ल के प्रथम ब्यांत में आनुवंशिकी आंकलन 0.08 ± 0.04 और भुल्लकर (1974) ने नीली–रावी में 0.28 ± 0.20 प्रकाशित किया है। काल (पीरियड), मौसम और ब्यांत अवधि के लिए समायोजित आंकड़ों के आधार पर दूध उत्पादन की आनुवंशिकता का आंकलन करते समय अनुक वैज्ञानिकों ने ब्यांत अवधि का समायोजन नहीं किया है जो कि दूध उत्पादन का महत्वपूर्ण कारक है और उनके अध्ययनों में निम्न आनुवंशिक आंकलन का एक कारण हो सकता है।

सारणी-5.25 प्रथम 6 ब्यांतों में दूध उत्पादन (कि.ग्रा.) और अवधि (दिनों में)

ब्यांत संख्या	दूध उत्पादन	300 दिनों का का उत्पादन	ब्यांत अवधि
1	1618.5	1573.4	297.8
2	1880.0	1790.4	300.0
3	1964.0	1878.0	298.3
4	2093.5	1963.8	291.3
5	2024.3	1959.7	290.8
6	1823.7	1767.5	270.0

पैट्रो एवं भट्ट, 1979

दूध संघटन

भैंस के दूध में, गाय के दूध की अपेक्षा वसा और वसा रहित ठोस की मात्रा अधिक पाई जाती है। सिंह आदि (1979) के अनुसार मुर्रा भैंस के दूध में वसा एवं वसा–रहित ठोस की मात्रा क्रमशः 7.0 और 10.1 प्रतिशत पाई जाती है। आलिम (1978) ने 6.6 प्रतिशत वसा और प्रोटीन लैक्टोज तथा खनिज की कुल मात्रा 9.4 प्रतिशत बतलाई है।

ब्यांत की वसा प्रतिशत पर वर्ष और ऋतु का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है परन्तु इसके विपरीत वसा रहित ठोस प्रतिशत पर, वर्ष, ऋतु और बच्चे देने की संख्या का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है (सिंह, आदि 1979)। मासिक वसा प्रतिशत पर ब्यांत की दशा एवं बच्चा देने की संख्या का महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है परन्तु वसा रहित ठोस पर इन दोनों का ही प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रथम माह से दसवें माह तक की अवधि में वसा की प्रतिशत में बढ़ोत्तरी पाई गई है (सारणी 5.26)। वसा एवं वसा रहित ठोस दोनों ही शरद ऋतु में बच्चा देने वाले पशुओं में अधिक परन्तु वर्षा ऋतु में बच्चा देने वाले पशुओं में कम पाए गए (घोष एवं अनंतकृष्णान, 1963, सिंह, आदि 1979)। मिस्री भैंसों में रागब, आदि (1958) ने ग्रीष्म ऋतु में शीत ऋतु की अपेक्षा वसा का उच्च प्रतिशत प्रकाशित किया है।

सिंह आदि (1979) ने वसा तथा वसा रहित ठोस के आनुवंशिक आंकलन को क्रमशः 0.41 ± 0.28 और 0.26 ± 0.23 बतलाया है।

सारणी-5.26 ब्यांत की विभिन्न दशाओं में वसा तथा वसा रहित ठोस का प्रतिशत

बच्चा देने का माह	वसा (प्रतिशत)	वसा–रहित ठोस (प्रतिशत)	ब्यांत संख्या	वसा (प्रतिशत)	वसा–रहित ठोस (प्रतिशत)
1	6.40	10.20	1	6.93	10.14
2	6.51	1010	2	6.83	10.16
3	6.69	10.05	3	7.02	10.10
4	6.87	10.10	4	7.02	10.09
5	6.95	9.96	5	6.94	10.05
6	7.06	10.00	6	6.73	10.09
7	7.16	10.03	7	6.87	9.95
8	7.17	10.00	8	6.72	10.30
9	7.43	10.05	–	–	–
10	7.43	10.07	–	–	–

सिंह, आदि (1979)

बच्चा जनन का अंतराल (कार्विंग इन्टरवल)

भैंसों के जीवन काल में होने वाले उत्पादन पर बच्चा जनन के अन्तराल का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सिशन (1951) ने मिस्री भैंसों में यह अंतराल 585 दिनों का पाया है परन्तु अस्कर (1954) ने इसे कुछ कम (488) प्रकाशित किया है। आलिम (1957) के अनुसार यह अवधि 552 ± 3.5 दिनों की परंतु इटली (परेरा, 1957) में और कम (409 64.4 दिन) पाई गई है। भारतीय वैज्ञानिकों ने यह समय 506 दिनों (राव एवं मुरारी, 1956) 44.1 दिनों (सिंह, आदि 1958) का प्रकाशित किया है। यह भी पाया गया है कि पशु की बढ़ती आयु के साथ इस अन्तराल में कमी आती है। नागपुरी भैंसों में यह अंतराल 415 दिनों (कालकिनी एवं पारागांओंकर, 1969) का पाया गया है। सान्धु (1985) ने शरीर क्रिया विज्ञान के विभिन्न मानक (सारणी–5.27) प्रकाशित किये हैं।

सारणी-5.27 भैंसों की विभिन्न नस्लों में जनन एवं शरीर क्रिया विज्ञान की दशायें (दिनों में)

नस्ल	गर्भाविधि (जेस्टेशन)	बच्चा जनन अंतराल	ब्यांत अवधि	शुष्क अवधि
मुर्रा	310	361–495	279–352	127–183
सूरती	299–313	461	350	111
भदावरी	–	453	276	98
जाफराबादी	315	–	–	–

प्रजनन क्षमता (ब्रीडिंग इफिसिएन्सी)

पशुओं के पालने से होने वाला लाभ उसकी प्रजनन क्षमता पर निर्भर करता है। यदि पशु लगातार प्रजनन कर रहा हो अथवा बच्चा दे रहा हो तो उस समय प्रजनन क्षमता सर्वाधिक होती है।

विलकोग्स (1957) के अनुसार प्रजनन क्षमता की गणना निम्न सूत्र के अनुसार करते हैं।

बी.ई. = 365 (एन–1) x 100/डी.

जहां पर

बी.ई. = प्रजनन क्षमता (ब्रीडिंग इफिसीएन्सी)

एन = बच्चा देने की संख्या

डी = प्रथम और अंतिम बच्चा जनन के मध्य दिन

तोमर (1965) ने पूर्व दिये गये सूत्र में परितर्वन किया और निम्नलिखित सूत्र बतलाया है।

बी.ई. = एन (365) + (1040) x 100 ए.सी. + सी.आई.

जहां पर = वी.ई. = प्रजनन क्षमता (ब्रीडिंग एफिसिएन्सी)

एन = बच्चा देने के अंतराल की संख्या

ए.सी. = प्रथम बच्चा जनन की आयु (दिनों में)

सी.आई. = बच्चा जनन अंतराल (दिनों में)

गौतम आदि (1973) के अनुसार प्रजनन क्षमता का प्रथम बच्चा जनन तथा उत्पादन क्षमता से संबंध नहीं है। भैंसों की विभिन्न नस्लों में विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न प्रजनन क्षमतायें प्रकाशित की गई हैं।

सारणी-5.28 भैंसों की विभिन्न नस्लों में प्रजनन क्षमता

भैंसों की नस्ल	प्रजनन क्षमता (प्रतिशत)	संदर्भ
मिस्री	74.1	यूसेफ एवं अकबर (1957)
सूरती	77.0	राव, आदि (1977)
नागपुरी	89.6	खिरे, आदि (1977)
मुर्रा	77.0–80.0	बासु, आदि (1978)
भदावरी	83.10	शर्मा एवं सिंह (1978)
मुर्रा (मिलिट्री फार्म)	83.2	कुमार एवं शर्मा (1984)

चयन (वरण) सूचकांक (सेलेक्शन इण्डिसिस)

जौहरी एवं भट्ट (1978) ने वृद्धि दर, जनन एवं उत्पादन के लिए वरण सूचकांक की रचना की। इन सूचकांकों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ

कि यदि जन्म भार, 6 माह की आयु पर भार, एक वर्ष की आयु पर भार, प्रथम ब्यांत एवं प्रथम बच्चा देने के समय भार, ब्यांत उत्पादन एवं ब्यांत अवधि को इन सूचकांकों में सम्मिलित कर लिया जाए तो सभी 9 लक्षणों वाले सूचकांक से यह थोड़ा श्रेष्ठ होता है। सूचकांक जिसमें 6 माह की आयु में, एक वर्ष की आयु में भार, प्रामि बच्चा देने के समय भार तथा आयु प्रथम ब्यांत उत्पादन एवं अवधि सम्मिलित हो, वह भी समान रूप से अच्छा होता है। इससे स्पष्ट है कि जन्म भार, प्रथम सर्विस अवधि (पीरियड) एवं प्रथम बच्चा जनन अंतराल का सूचकांक में अधिक योगदान नहीं है। एक वर्ष की आयु की ओसर का वरण करते समय सूचकांक में जन्म, 6 माह तथा 1 वर्ष की आयु के भार को समावेश करना चाहिए। यदि प्रथम जनन के समय भार तथा प्रथम बच्चा जनन के समय भार और प्रथम बच्चा जनन के समय भार और प्रथम बच्चा जनन के समय आयु का समावेश किया जा सकता है। प्रथम ब्यांत के पूरा होने पर सूचकांक की गणना करने पर 6 माह, 1 वर्ष, प्रामि बच्चों जनन के समय भार, प्रथम बच्चा जनन की आयु प्रथम ब्यांत का दूध उत्पादन एवं अवधि के आधार पर गणना किया गया सूचकांक सर्वोत्तम होता हैं जनन लक्षणों (गुणों) में प्रभावकारी आहार व्यवस्था, कुशल प्रबंधन तथा स्वास्थ्य व्यवस्था से सुधार लाया जा सकता है।

वरण के परिणाम (रेसपोंस टू सेलेक्शन)

आलिम (1953) के अनुसार मिस्री भैंसों के समूह में, सांड़ तथा मादा के दूध उत्पादन में क्रमशः 13.4 और 5.7 कि.ग्रा. की आनुवंशिक वृद्धि हुई थी। चार मार्गों के द्वारा कुल पीढ़ी लंबाई 27 वर्ष, दूध उत्पादन में वार्षिक वृद्धि 0.71 किलोग्राम पाई गई थी। ऑस्कर, आदि (1955) में 20 वर्षों तक मिस्री भैंसों पर अनुसंधान करके बतलाया कि प्रथम बच्चा जनन आयु अथवा बच्चा जनन के अंतराल के लिए वरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ओसर की माताओं के वरण से दूध उत्पादन में 60.3 कि.ग्रा. की आनुवंशिक वृद्धि प्रति पीढ़ी पाई गई थी। दूध उत्पादन में वार्षिक आनुवंशिकी उत्थान 8.1 कि. ग्रा. पाया गया था क्योंकि समूह में अधिकतर नर बाहर से प्रयोग किये गये थे, अतः उनकी माताओं के बारे में सूचना उपलब्ध नहीं हो सकी थी फलस्वरूप सांड़ों की माताओं के वरण द्वारा होने वाले आनुवंशिक उत्थान के बारे में ज्ञात न हो सका।

इलाहाबाद कृषि संस्थान के भैंस फार्म में किये गये अनुसंधानों से अग्रवाल (1956) ने दूध की वसा में आनुवंशिक वार्षिक वृद्धि 0.10 कि.ग्रा. रेड्डी एवं तनेजा (1982) ने जबलपुर के मुर्रा फार्म पर भैंसों में आनुवंशिक वृद्धि का आंकलन किया और पाया कि चार मार्गों

1. सांड़ से पुत्री
2. सांड़ से पुत्र
3. माता से पुत्री और
4. माता से पुत्र तक आनुवंशिक श्रेष्ठता क्रमशः 7.92, 4.91, 80.45 एवं 438.94 कि.ग्रा. पाई गई जो कि कुल योग का क्रमशः 1.49, 0.92, 15. 12 और 82.47 प्रतिशत थी। इस अध्ययन के अनुसार माता से पुत्री को प्रदत्त आनुवंशिक वृद्धि सांड़ से पुत्री के मार्ग से अत्यधिक पाई गई। सांड़ के वरण में भी माता से पुत्र मार्ग की उच्चतम आनुवंशिक श्रेष्ठता (82.47) प्रतिशत के द्वारा माता के निष्पादन को अत्यधिक महत्व दिया गया है। अतः सांड़ और मादा दोनों के ही वरण में मादा के निष्पादन पर विशेष महत्व दिया जाए तथा सन्तति परीक्षण की अनुपस्थिति में यह स्वभाविक भी है। आनुवंशिक वृद्धि की दर में बढ़ोत्तरी करने के लिए उत्तम प्रकार के सांड़ों की मादाओं का वरण और सांड़ों की सन्तति परीक्षण को मिलाने की आवश्यकता है। इससे 300 दिन के प्रथम ब्यांत में 15.88 कि.ग्रा. की आनुवंशिक वृद्धि हुई जो कि 1611 कि.ग्रा. समूह के उत्पादन के 0.99 प्रतिशत के समान थी।

विद्धानों ने साहित्य के गहन अध्ययन से ज्ञात किया कि सांड़ और ओसर दोनों का वरण अधिकतर माता के अभिलेख के आधार पर किया गया था। दूध उत्पादन में सुधार के लिए आवश्यक है कि उत्कृष्ट सांड की माताओं का वरण किया जाए और साथ ही युवा सांड़ों के सन्तति परीक्षण को सम्मलित करके आनुवंशिक वृद्धि की दर में बढ़ोत्तरी की जाए।

अध्याय-6

भैंसों का पोषण एवं आहार

पशुओं के आहार में खिलाये जाने वाले खाद्य–पदार्थों में विद्यमान पोषकों में अनेक पोषक पाचन क्रिया के द्वारा साधारण रूप में परिवर्तित होने तथा चयापचय के पश्चात् ही पशु द्वारा उपयोग किये जाते हैं। इन क्रियाओं में सूक्ष्मजीवियों का महत्वपूर्ण योगदान है और पशुओं की पोषक आवश्यकता को भली–भांति समझने हेतु रोमन्थी पशुओं की चयापचय क्रियाओं को समझना परमावश्यक है।

रूमेन का विकास

भैंस के जटिल जठर के चार भाग 1. रूमेन, 2. रेटीकुलम, 3. ओमेजम एवं 4. एवोमेजम होते हैं। जठर (पेट) की क्षमता में नस्ल एवं आयु के अनुसार भिन्नता पाई जाती है। जन्म के समय एवोमेजन का आकार सबसे बड़ा होता है परन्तु रूमेन एवं रेटीकुलम दोनों मिलाकर, एबोमेजम का मात्र 1/2 होते हैं। इसके पश्चात् 2 1/2–3 माह की आयु में यह अनुपात उल्टा हो जाता है और रूमेन एवं रेटीकुलम मिलाकर एबोमेजम से आकार में दो गुने हो जाते हैं।

सेंगर एवं सिंह (1969) ने जन्म से पूर्व एवं पश्चात् पेट के विभिन्न भागों की क्षमता सारणी–6.1 के अनुसार बतलाई है।

शीघ्रता से रूमेन विकास पर, पशु को खिलाये जाने वाले ठोस खाद्य पदार्थों का प्रभाव पड़ता है जो कि उनकी आहार व्यवस्था का आर्थिक आधार है। कम लागत मूल्य पर भैंस के शावकों का पालन करने की दृष्टि से अनेक वैज्ञानिकों ने इस विषय पर गहन शोध कार्य किये हैं।

तिवारी एवं सहकर्मियों (1971) ने अनुसंधानों द्वारा ज्ञात किया कि 8 सप्ताह की आयु में वयस्क पशु के समान ही रूमन एवं रेटीकुलम भारी हो जाता है परन्तु एबोमेजम थोड़ा छोटा रह जाता है। इन वैज्ञानिकों ने 24 सप्ताह

सारणी-6.1 भैंसों के जन्म के पूर्व एवं पश्चात् पेट के विभिन्न भागों की धारिता (प्रतिशत)

विकास की दशा	रूमेन	रेटीकुलम	ओमेजम	एबोमेजम
जन्म के पूर्व (प्रीनेटल स्टेज)				
3 माह	–	–	–	–
4 माह	46.22	18.99	9.70	25.19
5 माह	68.88	9.66	4.89	15.57
6 माह	74.74	8.20	3.93	13.12
7 माह	72.35	7.35	4.10	16.20
8 माह	70.43	7.12	3.49	18.96
9 माह	60.59	7.86	2.57	29.01
10 माह	48.34	7.58	2.01	42.07
जन्म के पश्चात् (पोस्ट नेटल स्टेज)				
जन्म से 5 दिन	32.18	6.24	1.25	60.33
6 से 15 दिन	43.66	4.52	1.13	50.69
16 से 30 दिन	50.95	5.50	1.79	41.76
31 से 60 दिन	61.63	3.88	1.68	32.81
61 से 120 दिन	71.99	1.89	1.96	24.16
121 से 515 दिन	79.89	1.15	1.40	17.47
वयस्क	88.13	0.93	2.08	8.86

की आयु के भैंस के शावकों को तीन प्रकार के आहार 1. नियंत्रण आहार 2. संस्तुति किया गया काफ स्टार्टर एवं 3. रूमेन द्रव (लिकर) मिला स्टार्टर आहार, खिला कर पेट के विभिन्न भागों (रूमेन, रेटीकुलम, ओमेजम एवं एबोमेजम) के विकास का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि काफ स्टार्टर खिलाने से नियंत्रण आहार की अपेक्षा रूमेन का विकास शीघ्र होता है।

दबे, आदि (1971) ने मुर्रा नस्ल के शावकों में जो कि परम्परागत एवं स्टार्टर आहार पर रखे गये थे, 150 दिनों के अध्ययनों से प्रतिदिन क्रमशः 288 एवं 265 ग्राम वृद्धि प्राप्त की। सचान एवं नटके ने प्रतिवेदित किया कि शावकों को यदि 4,6 एवं 8 सप्ताह तक सम्पूर्ण दूध पर रखने के पश्चात, काफ स्टार्टर पर रखा जाए तो उनकी वृद्धि दर में महत्वपूर्ण अन्तर नहीं होता है अपितु सम्पूर्ण अथवा मक्खनिया दूध पिला कर पाले गये बच्चों का शारीरिक भार अधिक पाया जाता है। गर्ग (1972) ने दूध के चार स्तरों (434, 100, 125 एवं 150 कि.ग्रा.) पर 6 माह तक वृद्धि दर ज्ञात की और पाया कि यह दर प्रतिदिन क्रमशः 0.360, 0.224, 0.208 और 0.246 कि.ग्रा. थी। अरोड़ा आदि (1973) ने जन्म से 90 दिनों की आयु तक अध्ययन करके ज्ञात किया कि परंपरागत समूह में दूध प्रतिस्थापित (मिल्क रिप्लेसर) की अपेक्षा उच्च वृद्धि दर पाई गई थी। बक्शी, आदि (1974) ने भी 15 सप्ताह की आयु तक अध्ययन करके इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त किये।

मनोहर सिंह, आदि (1971) ने भैंस के बच्चों को 'हे' एवं दाना के विभिन्न आहारों पर रख कर अध्ययन किये और प्रतिवेदित किया कि 9 सप्ताह की आयु में रूमेन द्रव में कुल वाष्पशील वसा अम्लों की अधिकतम सान्द्रता थी। अगले वर्ष (1972) किये गये अन्वेषणों से इन्होंने यह भी ज्ञात किया कि 9 सप्ताह की आयु में रूमेन में सूक्ष्मजीवियों की पूर्ण स्थापना हो जाती है इससे रूमन, द्रव में अप्रोटीन नाइट्रोजन (एन.पी.एन.) की मात्रा में बढ़ोत्तरी और प्रोटीन की मात्रा में कमी आ जाती है।

रूमेन का वातावरण

रूमेन का पर्यावरण इस प्रकार का होता है कि उसमें वातनिपेक्षी सूक्ष्मजीवी आराम से रह सकें। रूमेन का ताप 39.3–40.7° सैल्सियस पाया जाता है। रूमेन के अन्दर लार निरन्तर मिलती रहती है जिसमें पर्याप्त मात्रा में सोडियम एवं फास्फेट लवण मिले रहते हैं और लार का पी.एच. मान 8.0 पाया जाता है। इससे रूमेन का पी.एच. मान 5.5–7.0 के मध्य स्थिर रहता है। वयस्क रोमंथी पशुओं के रूमेन में 1.0 प्रतिशत से कम ऑक्सीजन तथा निम्नलिखित गैसें पाई जाती हैं।

गैस का नाम	प्रतिशत मात्रा
कार्बन डाइऑक्साइड	67.0
मिथेन	25.0
नाइट्रोजन	7.0
सलफ्युरस एनहाइड्रस	0.1
ऑक्सीजन	1.0 से कम

पशु द्वारा खाये जाने वाले आहार की यूरिया और लार के निरंतर आहार में मिलने से रूमेन की अम्लता एक निश्चित मात्रा से अधिक नहीं बढ़ पाती है और रूमेन का पर्यावरण वहां उपस्थित सूक्ष्मजीवों के सर्वथा उपयुक्त बना रहता है। रूमेन के पर्यावरण पर निम्न कारकों का प्रभाव पड़ता है।

1. पशु द्वारा खाये जाने वाले आहार की मात्रा एवं गुणवत्ता।
2. खाये जाने वाले आहार में लार मिश्रण एवं जुगाली क्रिया।
3. रूमेन के संकुचन के कारण रूमेन के आहार का मिश्रित होना।
4. रूमेन में पदार्थों का स्राव होना अथवा बाहर स्रवित होना।
5. रूमेन से पचे हुए पदार्थों का अवशोषण।
6. रूमेन से आहार पदार्थों का अधोपाचन तंत्र में जाना।

रूमेन में सूक्ष्मजीवी

यद्यपि रूमेन के अंदर एनएरोबिक जीवाणुओं एवं प्रोटोजोआ की अधिकतम संख्या होती है तथापि फ्लेजिलेट कवक (फंजाई) एवं बैक्टीरिओफेज भी थोड़ी संख्या में उपस्थित होते हैं।

श्रीवास्तव एवं चतुर्वेदी (1978) ने गेहूँ के भूसा एवं दाने मिश्रण पर रखी गई भैंसों के रूमेन के सूक्ष्मजीवों का आहार खिलाने के पूर्व तथा 6 घंटों के पश्चात् निरीक्षण किया और बतलाया कि आहार देने से पूर्व जीवाणुओं की उच्च संख्या रिकार्ड की गई जिसमें बाद में गिरावट आई परंतु आहार देने

सारणी-6.2 विभिन्न आहारों पर भैंसों के रूमेन में जीवाणुओं की संख्या

आहार	जीवाणुओं की संख्या (0° मि.ली.)	संदर्भ
गेहूँ का भूसा +() हरा लूसर्न + दाना मिश्रण	10.42	लैंगर, आदि (1968)
गेहूँ का भूसा + दाना मिश्रण	12.02	श्रीवास्तव एवं चर्तुवेदी (1973)
नेपियर घास	9.62	रायाडु, आदि (1973)
गेहूँ का भूसा + हरा मक्का + दाना मिश्रण	5.00	पांजाराथिनम एवं लक्ष्मीनारायना (1974)
गेहूँ का भूसा + मूंगफली की खल	10.18	सांग्वान (1984)
गेहूँ का भूसा + हरा लूसर्न	19.00	उपर्युक्त
जई का 'हे' + ग्वार चूर्ण	23.20	उपर्युक्त
ज्वार के ठुंडी (स्टोबर) + ग्वार चूण	17.75	उपर्युक्त
गेहूँ का भूसा + दाना मिश्रण	49.3	प्रसाद (1987)

के 6 घंटों के पश्चात् पुनः वृद्धि पाई गई। विभिन्न आहारों पर रखे गये पशुओं में प्रति मिनट जीवाणु उत्पादन 151.3 से 240.2 मि.ग्रा. पाया गया (सिंह, आदि 1974)। पुंज एवं साथियों (1977) ने चार आहारों (गेहूँ का भूसा, जई, साइलेज, हरी जई एवं बरसीम) को खिला कर ज्ञात किया कि अधिकतम सूक्ष्मजीवी संख्या बरसीम आहार वाले पशुओं के रूमेन में तथा निम्नतम मात्रा गेहूँ के भूसे वाले पशुओं में पाई गई। वर्मा, आदि (1980) ने भैंस के शावकों में जो गेहूँ के भूसा एवं 2.0–3.0 कि.ग्रा. दाने पर रखे गये थे, 363.7 + 2.94 ग्राम/दिन जीवाणु उत्पादन ज्ञात किया।

रूमेन के अंदर जीवाणुओं के साथ प्रोटोजोआ भी पाये जाते हैं। यद्यपि चयापचय में प्रोटोजोआ की भूमिका अभी तक स्पष्ट नहीं हो सकी है और

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि सेलूलोज एवं स्टार्च के पाचन में इनकी तुच्छ भूमिका है। यह मत इस तथ्य पर आधारित है कि यदि रूमेन से प्रोटोजोओं को पृथक कर दिया जाए तो सेलूलोज एवं स्टार्च के पाचन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। भैंस के रूमेन में अनेक विद्वानों ने प्रोटोजोआ की विभिन्न संख्यायें प्रतिवेदित की हैं।

सारणी-6.3 विभिन्न आहार प्रदान किये गये भैंसों के रूमेन में प्रोटोजोआओं की संख्या

आहार	प्रोटोजोआ संख्या (10^5/मि.ली.)	संदर्भ
गेहूँ का भूसा + दाना मिश्रण	1.95	लैंगर आदि (1968)
हरा चारा + दाना मिश्रण	2.13	पंत एवं रॉय (1970)
गेहूँ का चारा + दाना मिश्रण	12.02	श्रीवास्तव एवं चतुर्वेदी (1973)
नेपियर घास	1.37	रायडू, आदि (1973)
गेहूँ का भूसा : मूंगफली की खल	2.50	सांगवान (1984)
गेहूँ का भूसा + ग्वार चूर्ण	1.48	उपर्युक्त
जई का 'हे' + ग्वार चूर्ण	2.28	उपर्युक्त
ज्वार के ठुण्डी (स्टोबर) + ग्वार चूर्ण	1.93	उपर्युक्त
अधिक चारों वाला आहार	5.1	प्रधान (1986)
चने का भूसा + दाना मिश्रण	7.3	प्रसाद (1987)
गेहूँ का भूसा + दाना मिश्रण	9.3	उपर्युक्त

लैंगर एवं भाटिया (1968) ने औरत्सीलोस्पोरा क्वीलेरमोण्डी की महत्वपूर्ण रूप से कम (पी.एच. < 0.05) संख्या प्रतिवेदित की है और बताया है कि यदि इस आहार में दाना मिश्रण अथवा यूरिया मिला दी जाए तो इसकी (प्रोटोजोआ) संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। पंत एवं रॉय (1970) ने आहार में हरे चारे की वृद्धि के साथ सिलियेट एवं ओस्सीलोस्पोरा क्वोलेरमोंडी

की संख्या में वृद्धि प्राप्त की। सिंह, आदि (1973) ने सल्फर^{35} रेडियो आइसोटोप की सहायता से रूमेन आयतन तथा प्रोटोजोआ की संख्या रूमेन के अंदर ज्ञात की और इनका उत्पादन भैंस के बच्चों में 25.4 मि.ग्रा. प्रति मिनट प्रकाशित किया। जीवाणुओं की अपेक्षा प्रोटोजोआ की उत्पादन दर 2–3 गुना कम पाई गई थी। इन्हीं विद्वानों ने (1974) उपर्युक्त तकनीकी की सहायता से पोषण के निम्न एवं उच्च प्रोटीन स्तर पर भैंस के बच्चों के रूमेन में क्रमशः 73.9 एवं 92.1 मि.ग्रा. प्रति मिनट जीवाणु उत्पादन ज्ञात किया। इससे स्पष्ट होता है कि उच्च प्रोटीन स्तर पर प्रोटोजोआ का उत्पादन महत्वपूर्ण रूप से (पी.एच. < 0.01) निम्न स्तर से अधिक होता है।

रोमन्थी (रूमेनधारी) पशुओं में सूक्ष्मजीवियों के महत्व को दृष्टि में रखते हुए यह सत्य है कि इन पशुओं के समुचित पोषण के लिए सर्वप्रथम इन सह–अस्तित्व वाले सूक्ष्मजीवियों का पोषण का प्रबंधन किया जाए जो रोमंथी पशु के पोषण के लिए उत्तरदायी होंगे। अतः इन सूक्ष्मजीवियों की बढ़ोत्तरी के लिए सभी आवश्यक पदार्थ उपलब्ध कराये जाने चाहिए।

रूमेन के अंदर आहार पहुंचने के तुरंत पश्चात् अमोनिया की सान्द्रता बढ़ती है और सूक्ष्मजीवी इसे अपने शरीर को प्रोटीन के संश्लेषण हेतु मुख्य रूप से प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रोटीन, पेपटाइड्स, एमाइड्स एवं नाइट्रेट्स भी सूक्ष्मजीवियों द्वारा कार्य में लाये जाते हैं। यद्यपि अमीनो अम्ल सूक्ष्मजीवियों के लिए आवश्यक नहीं हैं परन्तु कभी–कभी अप्रोटीन नाइट्रोजन का अधिकतम उपयोग करने के लिए अमीनो अम्ल आवश्यक हो जाते हैं। यदि प्रोटीन संश्लेषण, प्रोटीन अपघटन (प्रोटियोलिसिस) की अपेक्षा अधिक वांछित है तो पर्याप्त मात्रा में शीघ्रता से प्रयोग किये जाने वाला ऊर्जा का स्रोत (कार्बोहाइड्रेट्स) उपलब्ध होना चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ऊर्जा स्रोत की ऊष्मा सामर्थ तो अधिक होना वांछनीय है परन्तु यह धीरे–धीरे प्राप्य होना चाहिए। रूमेन सूक्ष्मजीवियों को खनिज तत्वों की भी आवश्यकता होती है और आहार में जिन तत्वों की न्यूनता हो, विशेषकर तांबा (कॉपर) एवं कोबाल्ट को समुचित मात्रा में प्रदान किया जाना चाहिए।

रूमेन पाचन एवं चयापचय

परपोषी (होस्ट) पशु के रूमेन सूक्ष्मजीवी रूमेन में उपलब्ध ऊर्जा एवं प्रोटीन के स्रोत के रूप में आहार का उपयोग करते हैं। अन्ततोगत्वा परपोषी

को सूक्ष्मजीवियों के चयापचय के पदार्थ एवं सूक्ष्मजीवी भी उनके स्वयं के उपयोग के लिए प्राप्त हो जाते हैं। सूक्ष्मजीवी निम्न विधि से आहार के पोषकों का उपयोग करते हैं।

शीघ्र किण्वन वाले कार्बोहाइड्रेट

इन पदार्थों को सूक्ष्मजीवी अपनी वृद्धि की दशा में ऊर्जा प्राप्त करने के लिए प्रयोग करते हैं और न्यूनतम मात्रा में ही किण्वन की अवस्था में उपयोग करते हैं। इस क्रिया में ऊर्जा उत्पनन होती है जोकि संश्लेषण कार्यों में काम आती है। वाष्पशील वसा अम्लें बनती हैं, हेक्सोजेज उत्पन्न होते हैं जिनसे पोलीसैकेराइड्स एवं जीवाणु स्टार्च बनते हैं जो कि संचित ऊर्जा स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त उपयोग न की जाने वाली गैसें भी उत्पन्न होती हैं।

सैलूलोज

टाप्पीनर (1880–1885) ने ज्ञात किया कि यदि सोख्ता कागज (फिल्टर पेपर) को रूमेन द्रव में डाल दिया जाए तो अनेक गैसें (हाइड्रोजन, कार्बन–डाइऑक्साइड एवं मिथेन) तथा वाष्पशील अमीनों अम्लें (एसिटिक एवं ब्युटाइरिक) बनती हैं।

सैलूलोज के साथ शुष्क पदार्थ की 2–12 प्रतिशत लिगनिन भी रहती है जिससे पाचनशीलता कुप्रभावित होती है। नवजात पौधों में सेलूलोज एवं हीमोसैलूलोज की मात्रा अधिक परिपक्व (हे एवं भूसा) पौधों की अपेक्षा कम होती है।

विभिन्न कार्बोहाइड्रेटस को पचाने के लिए जीवाणुओं में भी भिन्नता पाई जाती है। सारणी–6.4 में प्रदर्शित अनेक प्रकार के जीवाणु इस महत्वपूर्ण कार्य में भाग लेते हैं।

कार्बोहाइड्रेट का पाचन, रूमेन के अंदर दो अवस्थाओं में बांटा जा सकता है। प्रथम अवस्था में साधारण पेट वाले (नॉन–रूमोनेंट) के पाचन की तरह, रोमन्थी पशुओं के रूमेन के सूक्ष्मजीवियों के एंजाइम द्वारा जटिल कार्बोहाइड्रेट्स को साधारण शर्करा में बदला जाता है। चित्र 6.1 में कार्बोहाइड्रेट्स का पाचन करने वाले विभिनन एंजाइमों को प्रदर्शित किया गया है।

सारणी-6.4 इन–विट्रो अध्ययन के आधार पर प्रमुख रूमेन जीवाणुओं का वर्गीकरण

जीवाणु की किस्म	नाम	वर्णन	किण्वन पदार्थ
सेलूलोज किण्वन वाले	बैक्टीराइड्स – सकसीनोजीन्स ब्यूटाइरोवाब्रिओ – फाइब्रासोल्वीन्स रूमीनोकोकस– फ्लेवीफेसिएंस	ग्राम $^+$ रोड्स ग्राम $^-$ रोड्स ग्राम $^-$ स्ट्राप्टोकोकाई (पीली कालोनी वाली)	एसिटिक एवं सकसीनिक अम्ल ब्युटाइरिक, फोमिक एवं लैकटिक अम्ल सक्सीनिक ऐसिटिक एवं फोरमिक अम्लें
स्टार्च एवं शर्करा किण्डवन वाले	बैक्टीरोइड्स एमाइलोफिलस सकसीनीबाइब्रिओ डेक्सट्रीनो सोल्वीस केलीनोमानास रूमीनेंटिउण स्ट्रेप्टोकोकस– बोबिस	ग्राम $^-$ ल्युओमोरफिर ग्राम $^-$ करब्ड रोड्स ग्राम $^-$ क्रिसेंट आकृति ग्राम $^+$ कैप्सूलवाले	फोमिक, एसिटिक एवं सकसीनिक अम्लें फोरमिक, सकसीनिक एवं ऐसिटिक अम्लें फोरमिक, सकसीनिक प्रोपिओनिक अम्लें लैक्टिक अम्ल
लैक्टिक अम्ल किण्वन वाले डीएमीनेटिंक (एमीन हरश वाले)	किलोनिला एलकोलेरसेंस बैक्टीरोइड्स रूमीनोकोला	ग्राम $^-$ कोकाई ग्राम $^-$ अंडाकार अथवा रोड्स	एसिटिक एवं प्रापिओनिक अम्लें फोरमिक, सकसीनिक, आइसोब्युटेरिक एवं आइसोबेलेरिक अम्लें
मीथेन उत्पन्न करने–वाले (फोरमेंट, CO_2 एवं H_2O का उपयोग करने वाले)	मीथेनोबैक्टीरियम रूमीनोनटिअम	ग्राम $^+$ कोकाई अथवा रोड आकृति	मिथेन

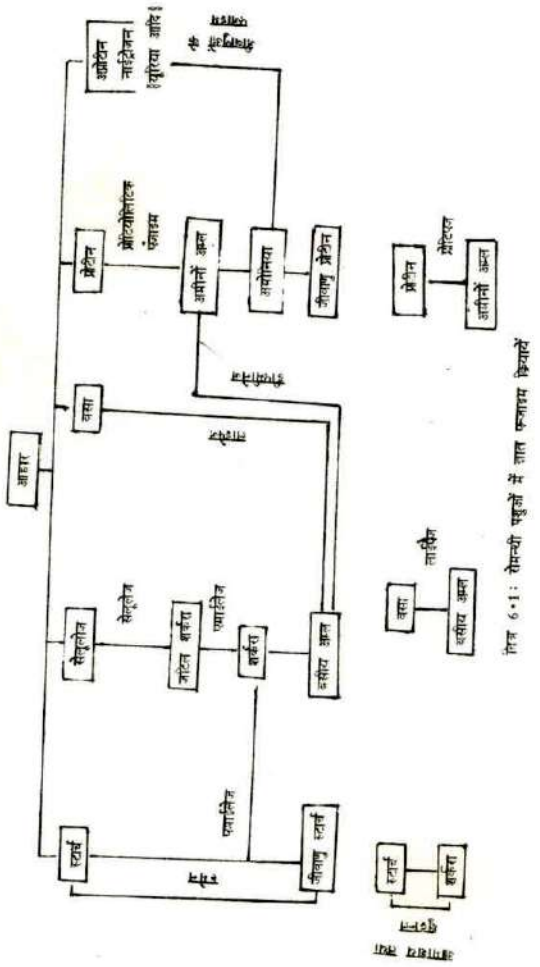

चित्र-6.1 रोमन्थी पशुओं में ज्ञात एन्जाइम क्रियायें

इस चित्र से स्पष्ट है कि रोमन्थी पशुओं की पाचन क्रिया जटिल होती है। चित्र के अनुसार इन पशुओं में कई एंजाइम प्रणालियाँ अन्तर्ग्रस्त होती हैं। इनमें से कुछ एंजाइम पशु स्रावित करता है और कुछ जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। उदाहरणार्थ – एमाइलेज़ एन्जांइम का उत्पादन रूमेन जीवाणु भी करते हैं और पशु की छुद्रांत्र में भी स्रवित होता है, प्राटियेज़ एवं लाइपेज़ भी इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

द्वितीय अवस्था में एक अथवा अधिक बीटा–1,4 ग्लूकोसाइडेज के द्वारा सेलूलोज का विघटन, सैलोबाइलोज में हो जाता है जो कि ग्लूकोज में अथवा फॉस्फोराइलेज द्वारा ग्लूकोज 1–फॉस्फेट में परिणित हो जाता है। इसी प्रकार स्टार्च, सुक्रोज एवं फ्रुकटोज आदि का पाइरूविक अम्ल (चित्र 6.2) में परिवर्तन हो जाता है।

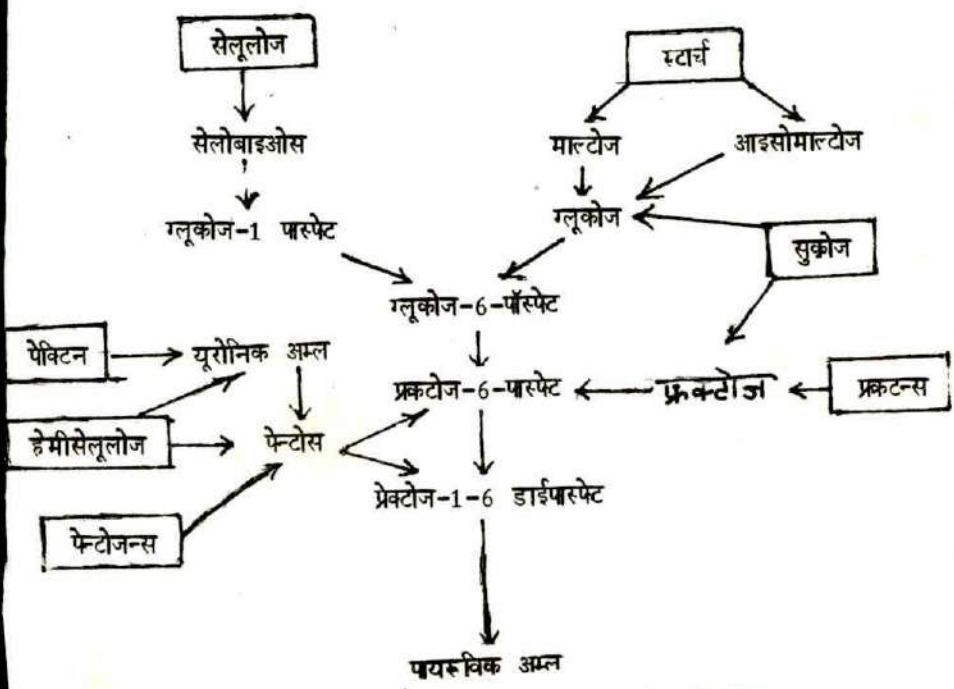

चित्र-6.2 रूमेन में कार्बोहाईड्रेट का पायरूवेट में परिणय

कार्बोहाइड्रेट्स चयापचय के अंतिम उत्पाद एसिटिक, प्रोपिऑनिक एवं ब्युटाइरिक अम्ल, एवं कार्बन डाइऑक्साइड तथा मिथेन है (चित्र 6.3)।

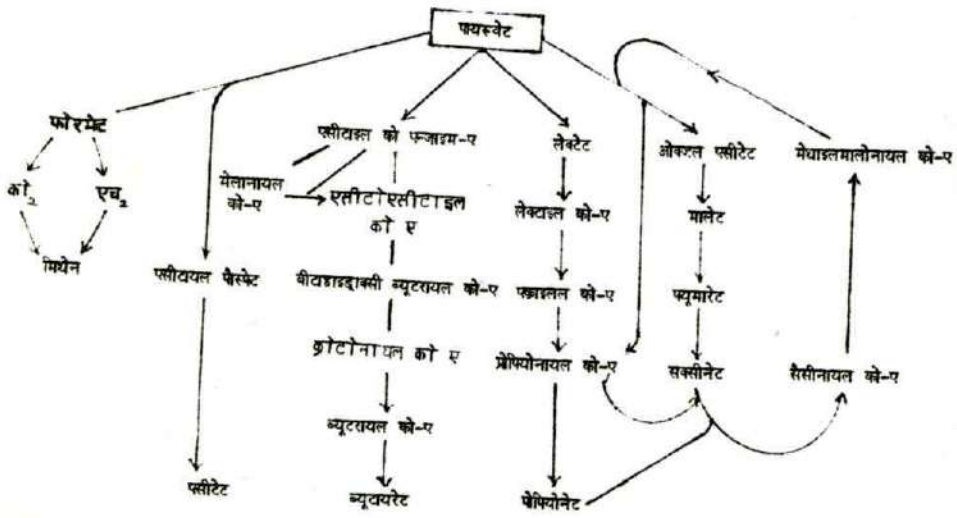

चित्र-6.3 रूमेन में पायरूवेट का वाष्पशील वसा अम्लों में परिणय

यद्यपि पाइरूबिक, सकसीनिक एवं लैक्टिक अम्लें मध्यवर्ती (इंटरमीडिएट) हैं परंतु रूमेन द्रव में कभी–कभी लैक्टिक अम्ल भी पाई जाती है। अमीनो अम्लों के विअयानीकरण के द्वारा अन्य वाष्पशील अम्लें भी रूमेन में पाई जाती हैं। ये हैं बेलीन से आइसोब्युटेरिक, प्रोलीन से बेलेरिक, आइसोल्युसीन से 2–मिथाइल ब्युटिरिक एवं ल्युसीन से 3–मिथाई ब्युटिरिक वसा अम्लें। प्रति 100 मि.लि. रूमेन लिकर में 0.2–1.5 ग्राम कुल वाष्पशील वसा अम्लें पाई जाती हैं और इसकी मात्रा पशु के आहार की किस्म एवं दो आहारों के अलशल पर निर्भर करती है। वसीय अम्लों के पारस्परिक अनुपात में भी भिन्नता पाई जाती है। चारे वाले आहार के भक्षण से जिसमें सेलूलोज की अधिक मात्रा हो, 'एसिटिक अम्ल' की अधिक मात्रा उत्पन्न होती है, आहार में दाना मिश्रण की मात्रा बढ़ने से एसिटिक अम्ल की मात्रा में कमी होती है और प्रोपिऑनिक अम्ल की मात्रा बढ़ती है। एक पशु में एक दिन में लगभग 3.0 कि.ग्रा. वाष्पशील वसीय अम्लें उत्पन्न होती हैं।

ग्रे के अनुसार रूमेन में साधारणतः वाष्पशील वसा अम्लों का निम्नलिखित मिश्रण पाया जाता है।

वाष्पशील वसा अम्ल	मात्रा (प्रतिशत)
एसिटिक	62–70
प्रोपिऑनिक	16–27
ब्युटिरिक	6–11
फॉरमिक	0–5
आइसोब्यूटिरिक	0.3–0.6
बेलेरिक	1.6–3.2
कैंप्रोइक	0.5–1.0
हेप्टोइक	0.04–0.05

अनेक कारक इस संघटन को प्रभावित करते हैं परन्तु साधारणतः निम्न दशायें पाई जाती हैं।

1. साधारण कार्बोहाइड्रेट से एसिटिक अम्ल की अपेक्षा प्रोपियोनिक अम्ल अधिक बनती है।

2. जटिल कार्बोहाइड्रेटस से एसिटिक अम्ल अधिक परन्तु प्रोपियोनिक अम्ल कम बनती है।

3. सेलूलोज के चयापचयन से प्रोपिऑनिक अम्ल अधिक एवं एसिटिक अम्ल कम बनती है।

इच्छपोनानी, आदि (1962) ने गेहूँ के भूसे और बरसीम खिलाई गई भैंसों में कुल वाष्पशील वसा अम्लों के उत्पादन का 2 घंटों के अन्तराल पर अध्ययन किया और ज्ञात किया कि भैंसों में कुल वाष्पशील वसा उत्पादन 2 एवं 4 घंटों के आहार अन्तराल पर गायों की अपेक्षा अधिक पाया गया था जो कि आहार खिलाने के 6 घंटे पश्चात कम हो गया था। सिद्धू, आदि (1966) ने आहार की कुल नाइट्रोजन को 25 प्रतिशत यूरिया से प्रतिस्थापित करके और दिन में दो बार आहार खिलाकर अध्ययन करके ज्ञात किया कि रूमेन द्रव में अवरिल रूप से यूरिया की निम्न और वाष्पशील वसीय अम्लों की वांछित सान्द्रता उपस्थित थी। भैंसों में एसिटिक एवं प्रोपिऑनिक अम्लों की सान्द्रता भी गायों से अधिक पाई गई थी। बाजरा के डंठल (स्टाक्स) के साथ दाना मिश्रण अथवा हरी लूसर्न मिला कर खिलाने पर भी वाष्पशील वसीय अम्लों की उच्च सान्द्रता पाई गई थी।

गैस उत्पादन

मीथेन के रूप में गैस बनना ऊर्जा की हानि का स्पष्ट कारण है। 24 घंटों में गायों में 300 लिटर मीथेन का उत्पादन प्रति पशु पाया गया है। इससे ज्ञात होता है कि इस गैस के कारण आहार के कुल ऊर्जा का 5–8 प्रतिशत हानि हो जाती है। यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रति 100 ग्राम पाचनशील कार्बोहाइड्रेट के किण्वन से 45 ग्राम मिथेन का उत्पादन होता है। इससे 6000 कैलोरी ऊर्जा की हानि होती है। गैसों का उत्पादन निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करता है।

1. आहार की प्रकृति

उदाहरणार्थ लूसर्न जैसे खाद्य पदार्थों से अधिक मीथेन बनती है।

2. स्वभाव

यदि लूसर्नन खाने वाले पशुओं को ग्लूकोज खिलाया जाए तो किण्वन

अधिक तीव्रता से होता है जबकि 'हे' को खाने के स्वभाव वाले पशुओं में ग्लूकोज खिलाने से किण्वन की गति मंद होती है।

प्रोटीन का पाचन एवं चयापचय

रूमेन के सूक्ष्मजीवियों द्वारा प्रोटीन का अपघटन कार्बनिक अम्लों, अमोनिया एवं कार्बन डाईऑक्साइड में होता है (चित्र 6.4)।

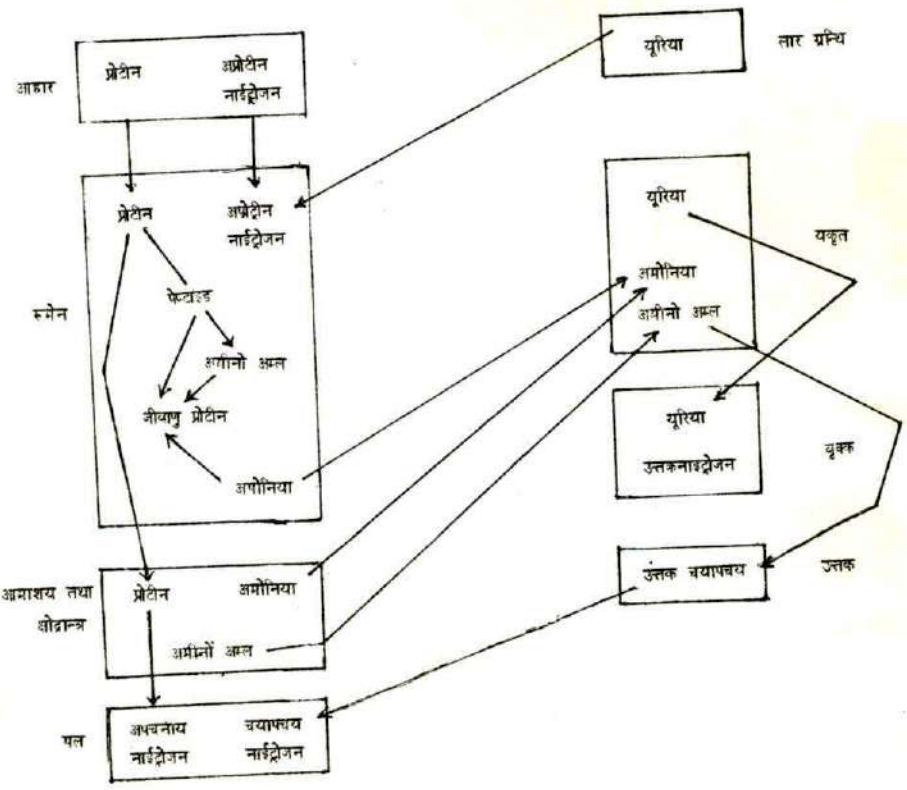

चित्र-6.4 रोमन्थी पशुओं में नाइट्रोजन चक्र

रूमेन में उत्पन्न हुई अमोनिया रक्त में मिलकर यकृत (लिबर) में पहुंचती है और वहां यूरिया में परिणित हो जाती है कुछ यूरिया लार के द्वारा एवं रूमेन भित्ति से होकर रूमेन में लौट आती है परन्तु अधिकतम मात्रा मूत्र के द्वारा बाहर निकल जाती है।

पशु द्वारा खाये गये आहार के साथ जब सूक्ष्मजीवी एबोमेजम एवं छोटी आंत में पहुंचते हैं तो उनकी कोशिका प्रोटीन का पाचन एवं शोषण हो जाता है। जीवाणु 'आवश्यक' एवं 'अनावश्यक' दोनों प्रकार के अमीनो अम्लों का संश्लेषण कर सकते हैं और परपोषी पशु को मात्र नाइट्रोजन आहार में देना आवश्यक होता है।

एबोमेजम में प्रविष्ट करने वाली नाइट्रोजन जो कि पाचन और शोषण के लिए (छोटी आंत में) उपलब्ध होती है, इसका आहार में प्रदान की गई प्रोटीन (नाइट्रोजन) की मात्रा से संबंध नहीं होता है। यदि आहार में नाइट्रोजन की हीनता है तो रूमेन किण्वन के समय बढ़ोत्तरी हो सकती है परंतु इसके विपरीत आहार में नाइट्रोजन की अधिकता होने पर, रूमेन में डीएमीनेशन द्वारा अमोनिया की हानि होती है और आहार में उपस्थित प्रोटीन की मात्रा की बहुत कम मात्रा आंतों तक पहुचंती है। आंतों तक पहुंचने वाली प्रोटीन में 50–90 प्रतिशत सूक्ष्मजीवी प्रोटीन होती है और शेष वह प्रोटीन होती है जो रूमेन में विघटन से वंचित रह जाती है। इस प्रकार आहार की प्रोटीन का योगदान उस अवस्था में अधिक होता है जब वह अघुलनशील होती है और जीवाणुओं द्वारा क्रिया करने से प्रभावित नहीं होती है।

अप्रोटीन नाइट्रोजन का चयापचय

रोमन्थी पशु आहार में अप्रोटीन नाइट्रोजन प्रदान करने के लिए यूरिया, बाइयूरेट, अमोनिया के लवण आदि प्रदान किये जाते हैं।

रूमेन में प्रवेश करने पर यूरियेज एंजाइम द्वारा यूरिया को अमोनिया में अपघटित कर दिया जाता है। इस प्रकार से उत्पन्न की गई अमोनिया को रूमेन सूक्ष्मजीवी प्रोटीन संश्लेषण के लिए उपयोग कर लेते हैं। अधिक मात्रा में रूमेन में अमोनिया के उत्पादन से सूक्ष्मजीवी उसका उपयोग नही कर पाते हैं और पशु को भी अमोनिया के हानिकर प्रभाव की आशंका रहती है। अत्यधिक अमोनिया सान्द्रता से पशु की मृत्यु भी संभव है। यदि अमोनिया

अधिक मात्रा में शोषित होकर यकृत तक पहुंचती है तो यकृत को उसे मूत्र के द्वारा यूरिया के रूप में उत्सर्जित करने में अनावश्यक रूप से बोझ उठाना पड़ता है। अतः प्रयास किये गये हैं कि यूरिया आहार में उपचारित करके इस प्रकार खिलाई जाए कि अमोनिया धीरे–धीरे निकल सके।

रोमन्थी पशुओं में मुंह से लेकर रेक्टम तक एक लगातार नलिका का नाम ही पाचन नलिका होता है जिसमें किसी भी ऊतक के लिए कोई भी निकास नहीं है। पाचन नलिका के सभी पदार्थों का अन्य अंगों के कार्य से पूर्ण रूप से संबंध है। रोमन्थी पशुओं का नाइट्रोचन चक्र (चित्र 6.5) इसी को प्रदर्शित करता है। रूमेन से वृक्क, यकृत, ऊतकों और लार में अमोनिया का निरंतर आदान–प्रदान होता रहता है। इस प्रकार के नाइट्रोजन चक्र का यह अभिप्राय

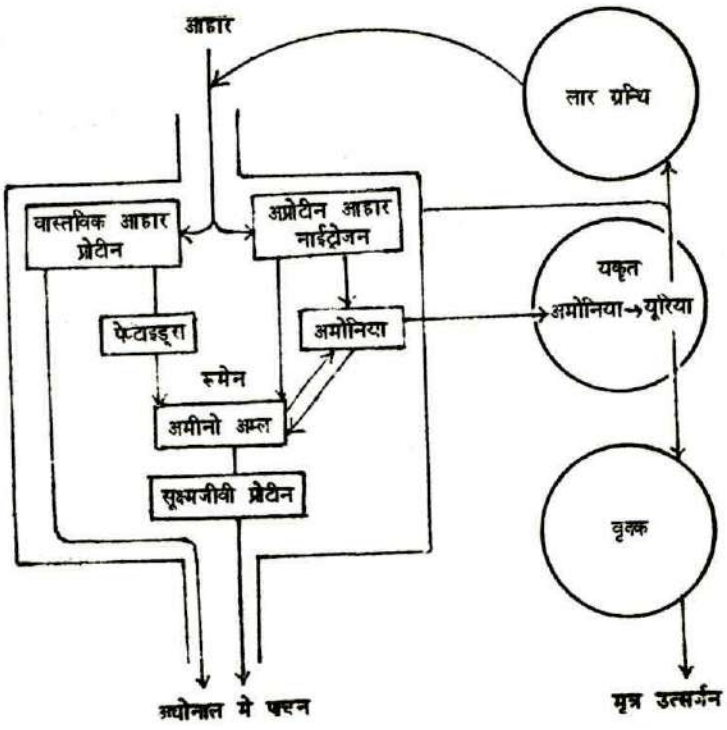

चित्र-6.5 नाईट्रोजन योगिकों का रूमेन में पाचन एवं चयापचय

है कि आहार में नाइट्रोजन आवश्यकता से अधिक है अथवा वह नाइट्रोजन आवश्यकता की न्यूनतम मात्रा को पूरा करता है फिर भी पशु में सामर्थ है कि वह प्रत्येक परिस्थिति में नाइट्रोजन का प्रयोग कर सके।

आहूजा, आदि (1972) ने यूरिया उपचार के कारण रूमेन में कुल नाइट्रोजन, वास्तविक प्रोटीन नाइट्रोजन, अप्रोटीन नाइट्रोजन, अमोनिया नाइट्रोजन एवं कुल वाष्पशील वसा अम्लों के उत्पादन में कोई अंतर नहीं प्राप्त किया और बतलाया कि भैंसों में कुल आवश्यक प्रोटीन का 60 प्रतिशत यूरिया द्वारा प्रतिस्थापित करने से कोई हानिकर प्रभाव नहीं पड़ता है। भाटिया (1967) एवं सिंह आदि (1968) ने भैंस के रूमेन में महत्वपूर्ण रूप से उच्च अमोनिया स्तर प्राप्त किया। रूमेन में उच्च अमोनिया बहाव के कारण इन वैज्ञानिकों ने उच्च रक्त यूरिया के आंकड़े प्राप्त किये। वर्मा आदि (1974) ने भैंस के बच्चों का एन.आर.सी. द्वारा संस्तुति किये गये प्रोटीन के 13.0 प्रतिशत निम्न एवं 19.0 प्रतिशत उच्च स्तर पर रख कर अध्ययन किये और ज्ञात किया कि प्रति 100 मि.लि. प्लाज्मा यूरिया–नाइट्रोजन की सांद्रता 19.42 ± 0.63 एवं 20.98 ± 0.74 मि.ग्रा. क्रमशः निम्न एवं उच्च प्रोटीन स्तर पर पाई गई। उच्च प्रोटीन स्तर प्राप्त करने वाले पशुओं के मूत्र में यूरिया का उत्सर्जन अधिक था। यूरिया विघटन दर निम्न प्रोटीन स्तर पर 20.00 ± 0.80 मि.ग्रा./मि. तथा उच्च प्रोटीन स्तर पर मात्र 10.50 ± 1.14 मि.ग्रा./मि. प्राप्त की गई। इससे स्पष्ट है कि कम प्रोटीन प्राप्त करने वाले पशुओं में अधिक चक्रीय यूरिया का प्रयोग किया गया था।

लाभकारी प्रभाव के लिए रूमेन किण्वीकरण को नियंत्रित करना

अभी तक रूमेन में किण्वीकरण के महत्व का वर्णन किया जा चुका है और अब प्रश्न किया जा सकता है कि क्या रूमेन किण्वीकरण की क्रिया को पशु की आहार की नांद के द्वारा नियंत्रित कर सकते हैं। वैज्ञानिकों के अथक प्रयास से अब पांच ऐसे साधन उपलब्ध हैं जिनके द्वारा रूमेन में किण्वीकरण की क्रिया और मांस तथा दूध के लिए उपयोग किये जाने वाले अंतिम पदार्थ पर नियंत्रण रखा जा सकता है।

1. आहार में खिलाये जाने वाले अवयव।
2. कुल आहार में सम्मलित अवयवों का अनुपात।

3. अवयवों का मौलिक रूप जिसमें उन्हें खिलाया जाता है।

4. खिलाये जाने वाले आहार का स्तर और मात्रा एवं

5. चौबीय घंटों में खिलाये जाने वाले आहार की प्रकृति।

रूमेन के आयतन के सीमित होने से, आहार के अर्न्तग्रहण को बढ़ाया नहीं जा सकता है। अनेक कारक इस परिस्थिति में कार्य करते हैं। अन्वेषणों से ज्ञात किया गया है कि 'हे' की कुट्टी काटकर खिलाने के स्थान पर उसको पीस कर खिलाने से रूमेन के अंदर वह कम समय तक ठहरता है जिससे रूमेन के सूक्ष्मजीवियों को उस पर क्रिया करने का पर्याप्त समय नहीं मिलता है। साथ ही रेटीकुलम के संकुचन में कमी आने से रूमेन किण्वीकरण पर महत्वपूर्ण विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसे भी संकेत मिले हैं कि इस परिस्थिति में रूमेन के अन्तर्वस्तु का मिश्रण भली–भांति नहीं होता है और लार का स्राव कम होने से पी.एच. मान में पर्याप्त गिरावट आ जाती है, परिणामस्वरूप चारे का ठीक से पाचन नहीं होता है और उसमें गिरावट आ जाती है। दाने को पीसकर अथवा गुटिका बना कर खिलाने पर भी यही प्रभाव देखा गया है।

आहार की ग्रहण की गई मात्रा का भी रूमेन किण्वीकरण पर प्रभाव पड़ता है। यदि आहार आवश्यकता से कम दिया जाता है तो निश्चय ही उसकी पाचनशीलता अधिक होती है। एक ओर तो रोमंथी पशु अपने आहार का अधिकतम उपयोग इस दशा में ही करते हैं जब कि उन्हें आहार के निचले स्तर पर रखा जाता है। दूसरी ओर अधिकतम बढ़वार एवं दूध उत्पादन के लिए अधिकतम आहार के अन्तग्रहण की आवश्यकता होती है। अतः उच्चतम उत्पादन के लिए दोनों परिस्थितियों में समन्वय करना आवश्यक है।

रोमन्थी पशुओं की दैनिक आहार व्यवस्था में उच्च स्तर की ऊर्जा अर्न्तग्रहण के लिए चारों तथा दाना मिश्रण में उचित समन्वय आवश्यक है। उदाहरणार्थ – यदि एक भैंस को मात्र 'हे' प्रदान किया जाए और दूसरी को 'हे' एवं दाना मिश्रण दोनों ही 50:50 के अनुपात में प्रदान किये जाएं तो दूसरी स्थिति में एक तो 1/3 अर्न्तग्रहण बढ़ेगा और पचे हुए आहार (डाइजेस्टा) का भार रेटीकुलों रूमेन में कम होगा, साथ ही शुष्क पदार्थ की पाचनशीलता में भी वृद्धि होगी। 'हे' की मात्रा में वृद्धि करने पर धारिता का समय बढ़ता है परन्तु अपरिष्कृत रेशा की पाचनीयता घटती है। 'हे' आधारित आहार में दाना

मिश्रण मिलाने पर पचनीयता में वृद्धि की ओर झुकाव होता है परन्तु यह प्रभाव चक्र रेखीय होता है और इसका 'इष्टतम' बिन्दु होता है। इस बिन्दु पर चारे और दाने के संयोजन प्रभाव में विविधता चारे की किस्म तथा दाना मिश्रण की प्रकृति के साथ प्रत्याशित है।

मोन्टगोमरी (1965) ने यह धारण लागू की कि रोमन्थी पशुओं के अर्न्तग्रहण आहार के सम्मिश्रण, घनत्व और पचनीयता द्वारा प्रभावित होता है और इसकी माप के लिए सुझाव दिया गया कि इसे घनत्व तथा पचनीयता से ज्ञात किया जा सकता है। अनेक प्रकार के आहारों पर परीक्षण करने के पश्चात् निष्कर्ष निकाला गया कि घनत्व x कुल पाचक तत्व का मान 35 के लगभग आता है। व्यवहार में संभव है कि कुछ आहारों का घनत्व x कुल पाचक मान, 35 के समीप रहे। पचनीयता पर आहार के अर्न्तग्रहण का भी प्रभाव पड़ता है। वही आकार यदि अधिक मात्रा में खाया जायेगा तो पचनीयता कम होगी और इसका प्रभाव घनत्व x कुल पाचक मान पर भी पड़ेगा।

कुल आहार के अर्न्तग्रहण के लिए जिस प्रकार अनुकूल अवस्थायें आवश्यक हैं, उसी प्रकार रूमेन में किण्वीकरण की वांछित अवस्था बनाये रखने के लिए अनुकूल अवस्थायें आवश्यक हैं। देखा गया है कि अधिकांशतः अपरिष्कृत रेशे की चयनीता ही बार–बार कम होती है। यद्यपि वृद्धि करने वाले पशुओं में यह हो सकता है परन्तु दूध देने वाली भैंसों में यह मुख्य कारक है क्योंकि दूध देने वाली भैंसों में कुल दूध उत्पादन एवं सामान्य दूध वसा प्रतिशत दोनों ही महत्वपूर्ण हैं और दोनों के लिए ही एसिटिक अम्ल की आवश्यकता पड़ती है। देखा गया है आहार में अधिक दाना मिश्रण से सेलूलोज की पचनीयता कुप्रभावित होती है परन्तु आहार में सेलूलोज की प्रकृति विपरीत प्रभाव की सीमा में परिवर्तन कर सकती है। अतः रूमेन में वांछित किण्वीकरण बनाये रखने के लिए अनुकूल अवस्था स्थापित करना आवश्यक है।

दिन में एक बार आहार देने से सर्वप्रथम अन्तराल अवस्था आती है और अति शीघ्र त्वरण अवस्था आती है जिसमें रूमेन का पी.एच. मान गिर सकता है। यह गिरावट इस बात पर निर्भर करेगी कि आहार में दाने की कितनी मात्रा है और एसिटिक से प्रोपिऑनिक अम्ल के अनुपात में भी परिवर्तन हो सकता है जिससे दूध वसा का प्रतिशत भी कम हो सकता है। त्वरण अवस्था के पश्चात् घातीय (एक्सपोनेंनसियल) अवस्था आती है जिससे किण्वन की

क्रिया आनुपातिक रूप से स्थिर रहती है और इस अवस्था में पर्याप्त समय तक नीचे रहने की हानिकारक प्रभाव की संभावना रूमेन के क्षतिपूर्ण होने अथवा यदि आहार में स्टार्च की मात्रा अधिक हो तो अम्लोपचय के रूप में होती है। साथ ही समुचित किण्व–द्रव भी प्रज्ञपत होता है जिससे किण्वन की क्रिया लगातार चलती रहती है परन्तु निम्न स्तर को खिलाई से त्वरण अवस्था के समय जो पी.एच. मान नीचे होगा, वह अस्थाई होगा और अधिक आहार खाने जैसे हानिकर प्रभाव उत्पन्न नहीं होंगे। एसी अवस्था में घातीय अवस्था के पश्चात् मंदन अवस्था आती है जिसमें किण्वन क्रिया के लिए पोषक उपलब्ध नहीं होते हैं अथवा समाप्त हो जाते हैं और अन्ततः स्थिर अवस्था आती है जबकि किण्वन क्रिया समाप्त हो जाती है।

दिन में दो बार आहार देने पर रूमेन में त्वरण एवं मंदन दोनों ही अवस्थायें कम हो जाती हैं और पशु को दिन में चार बार आहार देने पर ये अवस्थायें प्रायः लुप्त हो जाती हैं और आहार की पचनीयता बढ़ जाती है। प्रोटीन की अधिक मात्रा का शरीर में भंडारण होता है तथा रूमेन के पी.एच. मान का परास घट जाता है। साथ ही रूमेन में निर्मुक्त अमोनिया की मात्रा कम हो जाती है, जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है और अधिक स्टार्च वाले आहार में इस वर्ग के जीवाणु विशेष लाभदायक रहते हैं। प्रोटोजोआ में यह सामर्थ्य होती है कि वह स्टार्च के दानों को अपने में आत्मसात करके रूमेन तरल की क्रिया से बचाव कर सकते हैं। ऐसा करने से वे न मात्र रूमेन में पी.एच. मान को बनाये रखने में सहायक होते हैं अपितु एसिटिक एवं प्रोपिऑनिक अम्ल को अधिक अनुकूल स्तर बनाये रखने में भी सहायक होते हैं। प्रोटोज़ोआ के साधारणतः रूमेन के पी.एच. मान से सुग्राही होने के कारण आहार को बार–बार खिलाना ही एकमात्र मार्ग है जिससे कि उनको बनाये रखा जा सकता है, विशेष रूप से जब आहार में अधिक दाना खिलाया जा रहा हो।

आहार को बार–बार खिलाने से रूमेन में लार के द्वारा सोडियम एवं पोटेशियम मिलने से पी.एच. मान को बनाये रखना संभव होता है। अन्वेषणों द्वारा ज्ञात किया गया है कि आहार में 80 प्रतिशत मक्का खिलाये जाने पर भी, बार–बार आहार खिलाने से सामान्य खनिज स्तर बनाये रखने में सहायता मिलती है।

व्यवहारिक रूप से भैंसों को दिन में दो बार खिलाने की प्रथा है परन्तु अधिक दूध देने वाले पशुओं को तीन बार भी दाना खिलाया जा सकता है और इतनी ही बार दूध निकाला जा सकता है साथ ही बीच में चारा भी खिला सकते हैं। इस प्रथा में दूध निकालने के पश्चात पशुओं की भूख कुछ समय के लिए कम हो जाए और कुछ घंटों के लिए वे चारा न खाये, इस अवस्था में दाने और चारे की पृथक कई किण्वन क्रियायों होंगी जो अनुकूलतम किण्वन नहीं होगा। अधिक दाना खिलाने से अम्लोपचय भी हो सकता है और तीव्र कुपच की अवस्था भी उत्पन्न हो सकती है। अतः आवश्यक है कि दाना मिश्रण को चारों के साथ मिलाकर 'पूर्ण आहार' पशु को खिलाया जाए।

विटामिनों का संश्लेषण

रोमन्थी पशुओं के आहार में यदि 'बी' समूह की विटामिंस को उचित मात्रा में प्रदान किया जाए तो रूमेन के अंदर इनका संश्लेषण मन्द गति से होता है परन्तु यदि आहार में इनका अभाव हो तो रोमन्थी पशु के सूक्ष्मजीवी थायामीन, राइबोफ्लेविन, निकोटिनिक अम्ल, पेन्टोथेनिक अम्ल, पाइरीडॉक्सीन, बायोटिन और फोलिक अम्ल आदि 'बी' समूह की विटामिंस का संश्लेषण करने में समर्थ हैं परन्तु आवश्यक यह है कि आहार में कोबाल्ट की पर्याप्त मात्रा उपस्थित हो।

भैंसों की पोषक आवश्यकता

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भैंस मुख्य भूमिका निभाती है। क्योंकि एक तरफ तो यह पौष्टिक दूध प्रदान करती है और दूसरी तरफ गाड़ी एवं खेती के कार्यों में भी नरों का खूब उपयोग होता है। देश की कुल दुधारू पशुओं की 35% संख्या दुधारू भैंसों की है परन्तु कुल दूध उत्पादन में इस जाति के पशुओं का योगदान 52% से भी अधिक है। कुछ एशिया के देशों में जिनमें भारत तथा पाकिस्तान दोनों शामिल हैं, भैंस के दूध की वसा (घी) को भोजन पकाने एवं खाने में बहुलता से प्रयोग किया जाता है।

आमतौर पर भैंस विश्व में ऐसे इलाकों में पायी जाती है जहां भूमि, खेती से प्राप्त चारे एवं चरागाह सीमित मात्रा में हैं। इसी कारण भैंसों की खिलाई–पिलाई में निकृष्ट चारों के साथ कुछ हरे चारे एवं कृषि उपोत्पाद एवं भूसी, चुनी एवं खली का ही प्रयोग होता है। खाद्य पदार्थों की कमी होने

के कारण कुछ ही पशुओं को सन्तुलित आहार प्राप्त हो पाता है। परन्तु ऐसी परिस्थितियों में यह देखने मे आता है कि भैंसें अच्छा उत्पादन करने में सक्षम हैं। पिछले तीन दशकों में भारतीय पशु–पोषण के वैज्ञानिकों ने व्यापक अनुसंधान किये हैं और एक मत यह उभरा है कि भैंसें ऐसा भोजन जिसमें रेशे की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है और भोजन निम्न कोटि का होता है, गायों की अपेक्षा उपयोग करने में अधिक क्षमता रखती हैं। एक परीक्षण ने यह भी दर्शाया कि गायों के रूमन में गेहूं के भूसे में सेल्यूलोज की पचनीयता 24.3 प्रतिशत थी जबकि भैंसों में यह मात्रा 30.7 प्रतिशत थी। इसी प्रकार सेबेस्टीन की पचनीयता 24.3 प्रतिशत थी जबकि भैंसों में यह मात्रा 30.7 प्रतिशत थी। इसी प्रकार सेबेस्टीन तथा साथियों (1970) ने यह स्पष्ट रूप से दर्शाया कि चारे के रेशे की पचनीयता गायों में 64.7 प्रतिशत थी जबकि भैंसों में पचनीयता 73.8 प्रतिशत पायी गयी थी। इनके अतिरिक्त भैंसों गायों की अपेक्षा वसा (राघवन तथा साथी, 1963) कैलशियम तथा फॉस्फोरस (सैन तथा रे, 1964) एवं अप्रोटीन नाइट्रोजन को भी अपेक्षाकृत उपयोग करने में उत्कृष्ट क्षमता दर्शाती हैं। इसी प्रकार भोजन की प्रोटीन भी अपेक्षाकृत अच्छा पचाती है।

भैंसों में भोजन के रेशे को पचाने की अच्छी क्षमता संभवतः कुछ हद तक रूमेन में विद्यमान जीवाणुओं के कारण भी हो सकती है। कई वैज्ञानिक परीक्षण इस तथ्य को दर्शाते हैं कि वाष्पशील वसीय अम्लों की उत्पादन दर भैंसों में अधिक होने के कारण यह पशु भोजन को ऊर्जा में परिवर्तित करने में गायों के अपेक्षाकृत अधिक सक्षम हैं।

वास्तव में निम्न कोटि के चारों को पचाने में किसी एक कारण को नहीं बताया जा सकता। संभवतः कई कारण एक या सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं जिनमें विशेष जाति और किन अवस्थाओं में भोजन दिया जाता है, सम्मिलित किये जा सकते हैं। कुछ अन्य कारणों को नीचे दर्शाया गया है।

- शुष्क पदार्थों का अधिक अर्न्तग्रहण,
- पाचक नली में भोज्य का अधिक समय तक रहना,
- भैंस के रूमेन की इस विशेषता का होना जो कि अमोनिया नाइट्रोजन को उपयोग करने में अधिक उपयुक्त है,

- रूमेन में अधिक घुलनशील कार्बोहाइड्रेट होने पर भी सेल्यूलोज की पचनीयता पर कम प्रभाव पड़ता है,
- अधिक प्रतिबल (Stress) युक्त वातावरण में भी स्वास्थ्य एवं अधिक उत्पादकता को बनाये रखने की क्षमता,
- साथ ही विभिन्न प्रकार के चारों को उपयोग करने की उत्कृष्ट क्षमता का होना।

पोषक तत्वों की आवश्यकता

भैंस भी अन्य जुगाली करने वाले पशुओं की भांति निष्कृष्ट चारों एवं विशेष रूप से मोटे चारों युक्त भोज्य पदार्थों को उपयोग करके ऊर्जा एवं अन्य आवश्यक पोषक तत्वों में परिवर्तित करने की क्षमता रखती हैं। परन्तु एक विशेष बात जो ध्यान देने की है कि जब भैंसों को निष्कृष्ट चारों पर रखा जाता है तो वह इतना भोजन अर्न्तग्रहण नहीं कर पातीं जिससे कि उनमें अनुरक्षण, बढ़वार, जनन, उत्पादन एवं कार्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। यही कारण है विश्व के कई भागों में भैंसों में आशातीत उन्नति नहीं हो सकी है और पहली बार ब्याने की उम्र 3.5 से 4 वर्ष तक आती है। ऐसे प्रमाण अब उपलब्ध हैं जिनसे पता चलता है कि यदि इनकी भली प्रकार देखभाल व खिलाई–पिलाई की जाये तो इनकी पहली बार ब्याने की उम्र को तीन वर्ष से भी कम किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रतिबल के समय यदि अतिरिक्त पोषक तत्व दिये जायें तो दुग्ध उत्पादन में भी आशातीत बढ़ोतरी हो सकती है।

यहां हम भैंसों के लिए ऊर्जा, प्रोटीन, कैलशियम तथा फॉस्फोरस की आवश्यकताओं का वर्णन करेंगे। यहां यह बात ध्यान देने की है कि एक ही प्रकार के भोजन को उपयोग करने की अनुक्रिया (Response) विभिन्न पशुओं में भिन्न होती है इसलिये यह कहना अत्यन्त कठिन है कि जो पोषक तत्वों की आवश्यकता की तालिकायें दी गयी हैं वह प्रत्येक पशु की आवश्यकता को दर्शाती है परन्तु ऐसा अनुमान है कि यदि इनके आधार पर राशन का परिकलन किया जाये तो वह पशु की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगी।

ऊर्जा

यह सर्वविदित है कि भोजन में ऊर्जा की कमी अकेला ही ऐसा कारक है जो भैंसों में उत्पादन को सीमित करने में प्रभावशाली प्रभाव डालता है। इसका मुख्य कारण है सीमित अन्तर्ग्रहण या फिर भोजन का निम्न कोटि का होना। निम्न कोटि के भोज्य पदार्थों की पचनीयता भी काफी कम होती है और अर्न्तग्रहण के पश्चात काफी समय तक ये रूमेन में रहते हैं। इस कारण शुष्क पदार्थ का अर्न्तग्रहण काफी कम हो जाने से समस्या और भी जटिल हो जाती है। इसके विपरीत जब ऐसे हरे चारे भैंसों को खिलाये जाते हैं जिनमें जल की मात्रा अधिक होती है तब भी ऊर्जा एवं अन्य पोषक तत्वों का अर्न्तग्रहण कम हो जाता है।

कई ऐसे कारक हैं जो भैंसों में ऊर्जा की आवश्यकता को प्रभावित करते हैं। उदहारण के लिये भैंस का आकार, उम्र, गाभिन अवस्था, उत्पादन, बढ़वार और पर्यावरण प्रतिबल कारक प्रमुख कहे जा सकते हैं। कुछ प्रतिबल (Stress) कारकों में तापक्रम, हवा, जल की आवश्यकता एवं छाया प्रमुख हैं। साथ ही बीमारी की अवस्था एवं परजीवी (बाह्य एवं आंतरिक) भी शुष्क पदार्थ अर्न्तग्रहण एवं भोजन को उपयोग करने की क्षमता पर विपरीत प्रभाव डाल सकते हैं।

भैंसों में विभिन्न शरीर क्रियात्मक (Physiological) क्रियाओं के लिये ऊर्जा की प्रतिदिन आवश्यकता को सारणी–1 में दर्शाया गया है। व्यवहारिक खिलाई–पिलाई में जो भोजन पशु को दिया जाता है वह सारणी में दिये गये सिफारिशों से तालमेल नहीं बैठा पाता है क्योंकि सारणी में दिये गये मान पशु की पर्यावरण प्रतिबल, उम्र एवं शुष्क पदार्थ अर्न्तग्रहण अनुक्रिया दर्शाते हैं।

अनुरक्षण

आमतौर पर पशु–पालक पशुओं को दुग्ध उत्पादन, मांस या अन्य कार्यों के लिए पालता है। अनुरक्षण आवश्यकता के मान आमतौर पर ऊर्जा की आधारीय परिकलन में सहायक होते हैं जो कि पशु में विभिन्न शारीरिक क्रियात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायक होती है। पशु यदि कोई कार्य या उत्पादन न भी करे फिर भी जीवित रहने के लिए आवश्यक शरीर क्रियाओं में भी ऊर्जा खर्च होती है, जैसे भोजन पचाना, हृदय का कार्यशील

रहना, श्वांस लेना, रक्त का स्राव आदि। इसके अतिरिक्त शरीर के कोशिकीय और तन्तुओं में कुछ टूट–फूट होती रहती है। इन शारीरिक तन्तुओं की मरम्मत एवं स्वतः कार्य करने वाली मांसपेशियों द्वारा भी ऊर्जा खर्च होती है। पशु की खुराक का वह भाग जो उपरोक्त कार्यों में उपयोग किया जाता है, अनुरक्षण राशन कहलाता है। इस प्रकार अनुरक्षण राशन वह राशन है जो विश्राम करने वाले पशु में जो किसी प्रकार का उत्पादन कर रहा हो, अनिश्चित काल तक शारीरिक भार में किसी प्रकार की घटा–बढ़ी किये बिना स्वस्थ बनाये रखने के लिए ऊर्जा एवं अन्य पोषक तत्व प्रदान करता है। यह भी ज्ञात है कि पशु की अनुरक्षण की आवश्यकता उसके शरीर भार से सीधे अनुपात से संबंधित नहीं होती बल्कि उसके उपापचयाकार पर निर्भर करती है। यह उपापचयाकार पशु के शारीरिक भार डब्ल्यू$^{0.75}$ होता है। एक निष्कार्य प्रौढ़ पशु की अनुरक्षण आवश्यकताओं की पूर्ति आमतौर पर ऐसे भोजन खिलाकर पूरी की जा सकती है जिनमें स्थूल चारे या निम्न कोटि के भोज्य पदार्थ उपयोग किये गये हैं। सारणी 6.5 में जो ऊर्जा की आवश्यकताओं को दर्शाया गया उनका परिकलन 125 किलो कैलोरी/डब्ल्यू$^{0.75}$किलो/दिन समीकरण द्वारा किया गया है। इस मान को साहित्य में उपलब्ध 6 मानों को लेकर किया गया था। वास्तव में यह मान भारत के अनुसंधानों पर आधारित है और क्योंकि अन्य देशों में अभी इस दिशा में अनुसंधान नहीं हुए हैं इस कारण इन्हीं को मान्यता देना ठीक होगा।

भोजन में प्रोटीन तथा ऊर्जा की विविधता के आधार पर कुरार तथा मुदगल (1981) ने यह दर्शाया कि दूध न देने वाली भैंसों में ऊर्जा का अर्न्तग्रहण 100 से 147 किलो कैलोरी/डब्ल्यू$^{0.75}$किलो आता है। भोजन में जितनी अधिक ऊर्जा की सघनता होगी उतना ही अधिक चयापचीय ऊर्जा का अन्तर्ग्रहण होगा। इससे पहले कुरार तथा मुदगल (1977) ने प्रतिदिन चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता दूध न देने वाली भैंसों में 130.2 किलो कैलोरी/डब्ल्यू$^{0.75}$ दर्शाया था। शिवइया और मुदगल (1978) ने बढ़ने वाली, बछड़ियों में अनुरक्षण के लिये चयापचीय ऊर्जा 188 किलो कैलोरी/डब्ल्यू$^{0.75}$ किलो पया। रंजन तथा पाठक (1979) ने भारतीय भैंसों के अनुरक्षण के लिये ऊर्जा का मान 122 किलो कैलोरी चयापचीय ऊर्जा/डब्ल्यू$^{0.75}$किलो लिया और इसी आधार पर भारतीय भैंसों के पोषण मानों को स्थापित करने का प्रयत्न किया। सारणी–1 में हमें दिये गये मान (125 किलो कैलोरी च.ऊ./डब्ल्यू$^{0.75}$किलो/दिन हालांकि

गोपशुओं के मान (118 किलो कैलोरी च.ऊ./डब्ल्यू$^{0.75}$किलो) से थोड़े अधिक हैं।

बढ़वार

फिलीपाइन में हुए अनुसंधानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बढ़वार के लिये भैंसों में पोषक तत्वों की आवश्यकता गोपशु की अपेक्षा अधिक है। जब मुर्रा नस्ल के जानवरों को एन.आर.सी. के मानें के आधार (गोपशु) पर सन्तुलित आहार दिया गया तो बढ़वार तथा उत्पादन पर कोई अनुक्रिया देखने में नहीं आई। परन्तु जब एन.आर.सी. मानों से 10, 20 या 40 प्रतिशत अधिक ऊर्जा दी गयी, तो बढ़वार एवं दुग्ध उत्पादन पर सार्थक अनुक्रिया देखी गयी। साहित्य में दिये गये सन्दर्भ यह स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि जब भैंसों में बढ़वार वाले जानवरों को समुचित पोषण दिया जाता है तो उनकी बढ़वार की दर गोपशु के समान आती है। राठी एवं सिंह (1971) ने यह दर्शाया कि भैंसों में शावक पहले पांच माह के जीवन काल में 17.2 किलो/माह की दर से शरीर भार में बढ़े। सिंह तथा साथियों (1971) ने दर्शाया कि शावक 8वें सप्ताह से 12वें सप्ताह तक 0.82 किलो/दिन के हिसाब से बढ़वार करते हैं। मयमोन तथा बर्गोनजिनी (1960) ने बताया कि भैंसों में बाल पशुधन गौ बाल पशुधन की अपेक्षा कम शुष्क पदार्थ अर्न्तग्रहण (1.19 vs 1. 52 किलो) तथा प्रति किलो शरीर बढ़वार के लिये कम भोजन ग्रहण करते (1.70 vs 3.12 किलो) हैं। कई वैज्ञानिकों का यह विचार है कि बाल पशुधन को जब ऐसा भोजन खिलाया जाता है जो कि प्रोटीन तथा ऊर्जा में उच्च कोटि का होता है तो शरीर भार में वृद्धि श्रेष्ठतर होती है। एक रिपोर्ट के अनुसार शर्मा (1974) ने यह दर्शाया कि जब भैंसें बाल पशुधन को एन.आर. सी. (1968) को 20 प्रतिशत अधिक कुल पाचक तत्व दिये तो नियंत्रक वर्ग की अपेक्षा बढ़वार सार्थक रूप से अधिक देखी गयी थी। शर्मा तथा तालापात्रा (1963) ने भैंसों के बाल पशुधन को उच्च पोषण पर 285 दिन तक रखा और पाया कि उनकी बढ़वार की दर 634 ग्राम प्रतिदिन थी। जबकि मध्यम स्तर के पोषण पर बढ़वार की दर सिर्फ 399 ग्राम प्रतिदिन थी। भारतीय साहित्य यह दर्शाता है कि प्रति ग्राम शरीर वृद्धि के लिये (वजन 200–500 किलो) चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ती जाती है और यह आवश्यकता लगभग 1 किलो कैलोरी/50 किलो शरीर वृद्धि के हिसाब से आती है और यह मात्रा 10 किला कैलोरी/ग्राम वृद्धि से अतिरिक्त होती है। जो आंकड़े सारणी–1

में दिये गये हैं उनमें 100, 150, 200 एवं 250 किलो भार के शावकों के लिये ऊर्जा की मात्रा 10 किलो कैलोरी/ग्राम बढ़वार पर ली गयी है जबकि 300 किलोग्राम वजन वाले बाल पशुधन के लिये 11 किलो कैलोरी तथा 350 किलोग्राम शरीर भार वाले पशुधन के लिये 12 किलो कैलोरी/ग्राम बढ़ोतरी के हिसाब से परिकलन किया गया है। उदाहरण के लिये एक 400 किलो शरीर वाला पशु के लिये 11.18 मैगा कैलोरी ऊर्जा अनुरक्षण के लिये देनी होगी तथा 1 किलो शरीर भार वृद्धि के लिये 13 मैगा कैलोरी ऊर्जा देनी होगी।

इसका परिकलन नीचे दिये गये सीमरकणों द्वारा किया जा सकता है:

अनुरक्षण के लिये चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता = $400^{0.75}$ x 125 = 11175 किलो कैलोरी

शरीर भार में वृद्धि के लिये

चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता = $13^{0.75}$ किलो कैलोरी x 1000 ग्राम = 13000 किलो कैलोरी

प्रतिदिन चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता = 24175 किलो कैलोरी

या 24.2 मैगा कैलोरी

मातासीनो तथा साथियों (1978) ने यह बताया कि गोपशु तथा भैंसों में मांसपेशी विश्लेषण में विविधता होती है विशेष रूप से जल, प्रोटीन, शुष्क पदार्थ तथा वसा में भिन्नता पाई जाती है। भैंस के मांस में कम शुष्क पदार्थ तथा वसा और अधिक जल तथा प्रोटीन होता है। यह भिन्नता शरीर भार में वृद्धि के लिये ऊर्जा की आवश्यकता को प्रभावित कर सकती है।

गाभिन अवस्था

ऐसा कोई भी संदर्भ उपलब्ध नहीं है जिससे कि भैंसों में गाभिन अवस्था में ऊर्जा की आवश्यकता का ज्ञान हो सके। ऐसी अवस्था में यही सुझाव ठीक हो सकता है कि शरीर भार वृद्धि के मानों को गाभिन पशु के अंतिम चरण में अनुरक्षण की आवश्यकता में जोड़ा जाये। यहां यह भी बता देना आवश्यक होगा कि भैंसों में गर्भावधि गायों की अपेक्षा लम्बी होती है (312 vs 284 दिन)। इस प्रकार भैंसों में गाभिन अवस्था में चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता अनुपाततः कुछ कम हो सकती है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर गर्भावधि

के अन्तिम 3 माह में थोड़ी फेर बदल की गयी है (सारणी–1)। इस परिकलन में अनुरक्षण की आवश्यकता को 125 किलो कैलोरी/डब्लू$^{0.75}$ किलो को अपनाया गया है और इसमें 10 किलो कैलोरी/ग्राम शरीर भार वृद्धि की दर अपनाई गयी है। यदि हम यह अनुमान लगाये कि भैंस का भार 500 किलो है तो ऊर्जा की आवश्यकता का परिकलन निम्न प्रकार किया जा सकता है:

चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता
अनुरक्षण के लिए : $500^{0.75}$ x 125 = 1.3212 किलो कैलोरी
चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता
गर्भ के लिए : 10 किलो कैलोरी x 400 ग्रा. = 4000 किलो कैलोरी
प्रतिदिन कुल चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता = 17212 किलो कैलोरी
या 17.2 मैगा कैलोरी

दुग्ध उत्पादन

दुधारू भैंस का उत्पादन बहुत कुछ खाने–पीने पर निर्भर करता है। यह प्रमाणित तथ्य है कि यदि पशुओं को सन्तुलित आहार मिले तो उनकी दुग्ध उत्पादन 50 प्रतिशत तक बढ़ सकता है। पशु के अनुरक्षण के लिये जो पोषक तत्व राशन में दिये जाते हैं उनके अतिरिक्त जो पोषक तत्व पशुओं को प्राप्त होते हैं उनको दुधारू पशु दूध में परिवर्तित करते हैं। इसलिये जो भैंस प्रतिदिन 16 कि.ग्रा. दूध देती है, उसके पोषक तत्वों की आवश्यकता 8 किलोग्राम दूध देने वाली भैंस (यदि शरीर भार दोनों में समान हो) के लिये पोषक तत्वों की आवश्यकता से दुगनी नहीं होगी।

रंजन ने भारत में किये गये अनुसंधान के आधार पर यह बताया कि दूध देने वाली भैंस में चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता लगभग गोपशु (132 किलो कैलोरी/डब्लू$^{0.75}$ किलो) ही होती है। शिवइया तथा मुदगल (1978) ने यह बताया कि अनुरक्षण के लिये मध्य ब्यांत में दुधारू भैंसों में ऊर्जा की आवश्यकता 120 किलो कैलोरी/डब्लू$^{0.75}$ किलो होगी। इसी वर्ष मुद्गल तथा कुरार (1978) ने चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता ब्यांत के प्रथम चरण में 158.54 किलो कैलोरी चयापचीय ऊर्जा/डब्लू$^{0.75}$ किलो बताया जबकि गोपशुओं में यह मात्रा 129.53 किलो कैलोरी आंकी गयी थी।

इन तीन मानों का औसत (159, 120 और 132) 137 किलो कैलोरी/डब्लू$^{0.75}$ किलो/दिन आता है। इसी मान को दूध देने वाली भैंसों में अनुरक्षण के लिये ऊर्जा की आवश्यकता माना गया है। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि जब हम दुधारू भैंसों के लिये ऊर्जा की आवश्यकता की बात करते हैं तो यह आवश्यक है कि हम यह ध्यान में रखें कि यह अनुरक्षण एवं दूध उत्पादन के लिये पूरी हो, साथ ही शरीर विश्लेषण (शरीर भार में बढ़ोत्तरी या कमी में कोई बदलाव न आये)।

दुधारू भैंसों में पोषक तत्वों की आवश्यकता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह कितना दूध उत्पादन कर रही है और उसमें कितने पोषक (Nutrient) हैं। दुग्ध उत्पादन की मात्रा निश्चय की उसकी नस्ल तथा व्यक्तित्व एवं भोजन की किस्म पर निर्भर करेगी।

भैंस किसी भी नस्ल की क्यों न हो उनके दूध में वसा की मात्रा 6 से 8 प्रतिशत के बीच होती है। इसके साथ ही दुग्ध उत्पादन के लिये ऊर्जा (च. ऊ.) की आवश्यकता दूध में विद्यमान प्रोटीन, वसा रहित ठोस पदार्थ आदि जैसे संघटकों (Constituents) पर निर्भर करेगी। मुदगल तथा कुरार (1978) ने प्रति किलो 4 प्रतिशत वसा संशोधित दूध (FCM) के लिये चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता 1603 किलो कैलोरी और उपयोग दक्षता 46.7 प्रतिशत बताई थी। जो मान सारणी–2 में दिये गये हैं उनका परिकलन 1230 किलो कैलोरी रखा गया है। यह मान रिपोर्टों का औसत लेकर निकाला गया है।

दुग्ध उत्पादन के लिये ऊर्जा की उपयोगिता में विविधता भोजन में ऊर्जा की सघनता पर भी निर्भर करती है। सामान्यतः निम्न ऊर्जा युक्त भोजन का उपयोग उच्च ऊर्जा युक्त भोजन की अपेक्षा कम होगा। कुछ तथ्यों के आधार पर यह भी अनुमान लगाया गया है कि जिन भोजनों में ऊर्जा 3 मैगा कैलोरी चयापचय ऊर्जा/किलो शुष्क पदार्थ होती है वह उपयोग दक्षता को कम करेगा। दुग्ध उत्पादन अवस्था में चयापचीय ऊर्जा के उपयोग में बढ़ोतरी ऊर्जा एवं प्रोटीन का अनुपात भी प्रभावित करता है। निश्चय ही जो भोजन दिया जाए उसमें प्रोटीन की समुचित मात्रा का होना आवश्यक है जिससे जो प्रोटीन दूध में स्रावित होती है उसकी पूर्ण रूप से पूर्ति हो सके। अन्यथा इसकी पूर्ति शरीर की पेशियों से होगी।

टेरिल तथा रीडर (1965) ने गाय के दूध में ऊर्जा की मात्रा (किलो कैलोरी/किलो) ज्ञात करने के लिये निम्नलिखित समीकरण का सुझाव दिया था।

ऊर्जा किलो कैलोरी/किलो दूध = 92.25 वसा + 49.15–वसा रहित ठोस = 56.40

जहां पर वसा = प्रतिशत वसा और वसा रहित ठोस = प्रतिशत वसा रहित ठोस

इस समीकरण की सहायता से दूध में विद्यमान विभिन्न वसा एवं वसा रहित ठोस पदार्थों की मात्रा के आधार पर ऊर्जा की आवश्यकता को ज्ञात किया जा सकता है।

यहां यह बात विचारणीय है कि जो ऊर्जा की मात्रा ज्ञात की गयी है यह सिर्फ दूध में ऊर्जा का बोध कराती है। जब हम भोजन में ऊर्जा के प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमें यह ध्यान देना होगा कि पशु भोजन में इतनी ऊर्जा का समावेश हो कि जो ऊर्जा भोज्य में पचने में एवं दूध में बनने तक खर्च होती है उसकी भी समावेश हो। यदि हम 60 प्रतिशत ऊर्जा उपयोग की दक्षता को लें तो प्रति किलो 4 प्रतिशत वसा संशोधित दूध के लिये ऊर्जा का अन्तर्ग्रहण 1247 किलो कैलोरी/किलो आयेगा।

कार्यकारी

कार्य करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता को कई कारक प्रभावित करते हैं। इनमें से मुख्य हैं कार्य की सघनता और कितने समय तक कार्य हुआ। कुछ हद तक पर्यावरण एवं भौतिक अवस्था जिसमें कि कार्य सम्पन्न किया गया, साथ ही पशु का स्वास्थ्य एवं परिस्थिति प्रभावित करेंगे। अभी तक कार्यकारी भैंसों के लिये ऊर्जा की आवश्यकता के लिये कोई कार्य नहीं हुआ है। कर्ल (1982) ने ऊर्जा की आवश्यकता को किलो कैलोरी चयापचीय ऊर्जा/किलो शरीर भार/घंटा इस प्रकार दर्शाया है:

चलने में	0.41 किलो कैलोरी/किलो शरीर भार
धीमी दुलकी चाल	4.10 किलो कैलोरी/किलो शरीर भार
तेज दुलकी चाल	10.25 किलो कैलोरी/किलो शरीर भार

पोइयों चलना (Cantering)	18.86 किलो कैलोरी/किलो शरीर भार
श्रमसाध्य कार्य	31.98 किलो कैलोरी/किलो शरीर भार

यह मान मुख्य रूप से एन.आर.सी. (1978) में दिये गये घोड़ों के मान पर आधारित हैं। ऊपर दिये गये अनुमानों से यह स्पष्ट है कि सामान्य रूप से ऊर्जा की आवश्यकता अधिक नहीं है परंतु जब अत्यधिक भौतिक कार्य किया जाता है तो ऊर्जा की अधिक आवश्यकता होती है।

भैंसों द्वारा जो ठेला चलाने का कार्य या जुताई कार्य या सामान्य खेती–बाड़ी का काम धीमी गति से ही किया जाता है और इसके लिये अधिक ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होगी। रंजन तथा पाठक (1977) ने कार्यकारी भैंसों के लिये कुछ मान दिये हैं और यह मान लगभग सारणी–1 में दिये गये मानों जैसे ही हैं जिसमें अनुरक्षण की आवश्यकता (125 किलो कैलोरी/डब्लू$^{0.75}$ किलो) के साथ कार्य के लिये ऊर्जा (2.4 किलो कैलोरी चयापचीय ऊर्जा/किलो शरीर भार प्रति घंटा परिकलित) को जोड़ा गया है। उदाहरण के लिये एक 300 किलो शरीर भार का भैंसा यदि 4 घंटे सामान्य कार्य करता है तो ऊर्जा की आवश्यकता इस प्रकार होगी:

अनुरक्षण के लिये चयापचीय
ऊर्जा की आवश्यता = $300^{0.75}$ x 125 = 9010 किलो कैलोरी
कार्य के लिए ऊर्जा
की आवश्यकता = 300 किलो (शरीर भार) x 2.4 x 4 = 2880 किलो कैलोरी

प्रतिदिन कुल चयापचीय ऊर्जा की आवश्यकता = 11890 किलो कैलोरी या 11.9 मैगा कैलोरी

यह मान (11.9) रंजन तथा पाठक (1979) द्वारा सुझाये गये 11.4 मैगा कैलोरी चयापचीय ऊर्जा के लगभग तुल्य हैं। जब तक कार्यकारी भैंसों के लिए अलग से मानक स्थापित नहीं होते इन्हें ही उपयोग में लाना लाभकारी होगा।

फ्रांक एवं बार्मोलिम (1889) के अनुसार यह आदर्श होगा कि कार्यकारी पशु अच्छी हालत में हों तथा कार्य को सुचारू रूप से करने के लिये शरीर

में समुचित वसा का भंडारण हो। तेलेनी एवं होगन (1989) के अनुसार कार्यकारी पशु में मुख्य रूप से ऐसीटेट (Acetate) तथा शरीर में उपलब्ध वसा जो कि ऐसीटेट से उत्पन्न होता है तदनुरूप पुनः जमा होना एवं पेशी से निम्न शृंखला के वसीय अम्ल (LCFA) का हटाना आदि क्रियायें समुचित रूप से रूमेन में किण्वन विधि द्वारा उच्च स्तर पर ऐसीटेट से संपन्न होती रहती हैं। तदनुसार कार्यकारी पशु में प्रोटीन की कम आवश्यता इस बात की द्योतक है कि रूमेन में यूरिया का पुनर्चक्रीय होने से अनुपाततः कम प्रोटीन की आवश्यकता भोजन में होती है और स्थूल चारे ही ऊर्जा की पूर्ति करने में सहायक होते हैं परन्तु इस बात की पूर्ण रूप से पुष्टि अभी होनी है।

प्रोटीन

यहां पर हम प्रोटीन को पशु के लिये नाइट्रोजनीय पदार्थों की आवश्यकता के सम्बन्ध में ही परिचर्चा करेंगे। यह पदार्थ (एमीनो अम्ल) ऐसी सामग्री हैं जिसकी आवश्यकता पशु ऊतकों (मांसपेशी), नस आदि के बनाने में उपयोग करता है। साथ ही जो कोशिकाओं में लगातार टूट–फूट होती रहती है उसकी पूर्ति करता है। अभी हाल में इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि यह समझ लेना पूर्ण रूप से ठीक नहीं है कि रूमेन धारी पशु अपने शरीर की आवश्यकता अनुसार रूमेन में आवश्यक एमीनो अम्लों को संश्लेषण करने में पूर्ण रूप से समर्थ हैं। परन्तु जब तक पशु के विभिन्न कार्यों के लिये एमीनो अम्ल की आवश्यकताओं की पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं होती हमें प्रोटीन मानों को ही आवश्यकताओं के भविष्य कथन के रूप में करना होगा। जब हम प्रोटीन की आवश्यकता को बढ़वार, उत्पादन, प्रजनन और/या कार्य के लिये निर्धारित करते हैं तो इसमें पशु की अनुरक्षण की आवश्यकता भी सम्मिलित रहती है। हालांकि शरीर का आकार बढ़ने पर अनुरक्षण की आवश्यकतायें बढ़ती हैं परन्तु जैसे–जैसे पशु प्रौढ़ होता जाता है शरीर के पेशियों में प्रोटीन की मात्रा कम लगने से प्रोटीन की आवश्यकता भी घटती है। जो खाद्य मानक प्रस्तुत किये गये हैं वह एक विशेष समय तक आवश्यकता के द्योतक हैं। यह तर्क ठीक है कि यदि किसी मान को पूरे जीवन के आधार पर परिकलित किया जाये तो छोटी उम्र के बढ़वार वाले पशु के लिये यह कम होगी परन्तु प्रौढ़ पशु के लिये यह मान अधिक होगा। इसीलिये यह आवश्यक है कि पशु के बढ़वार के विभिन्न स्तरों पर अलग मान स्थापित हों जो कि उत्पादन, प्रजनन और कार्य की आवश्यकता को प्रतिबिंबित करते हों।

कुछ प्रमाण यह दर्शाते हैं कि भोजन ऊर्जा तथा प्रोटीन के पारस्परिक क्रिया पशु में ऊर्जा के उपयोग को प्रभावित करते हैं। इसलिये सम्भवतः पशु के राशन में प्रोटीन की अधिक मात्रा विद्यमान रहने से वह उपलब्ध ऊर्जा का उपयोग ठीक कर सकेगा और परिणामतः प्रति इकाई उत्पादन कीमत में भी कमी आयेगी।

नाइट्रोजन संतुलन को बनाये रखने के लिये भैंसों के राशन में प्रोटीन की समुचित मात्रा होनी चाहिये जो कि चयापचीय क्षमता एवं मल में होने वाले क्षति की पूर्ति तो करे ही, साथ ही बढ़वार उत्पादन एवं प्रजनन की भी पूर्ति करें। इनमें से प्रत्येक कार्य को अलग लिया जाता है।

अनुरक्षण

प्रत्येक पशु किसी भी भोजन पर क्यों न रखा गया हो या उसके द्वारा कोई भी शरीर क्रियात्मक कार्य क्यों न सम्पन्न किया जा रहा हो उसके मूत्र में नाइट्रोजन की क्षति अवश्यम्भावी है और यह क्षति तर्क संगत प्रति इकाई शरीर आकार (डब्लू$^{0.75}$ किलो) पर निश्चित होती है परन्तु मल में होने वाली क्षति अनुरक्षण के लिये दिये गये भोजन के रचना पर तथा चयापचीय मल नाइट्रोजन पर निर्भर करेगी। मल के चयापचीय हिस्से में ऐसे पदार्थ होते हैं जो शरीर के अन्दर से ही उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिये जीवाणु अवशेष, पाचक नली के भित्ति की कोशिकायें, भोजन को पचाने के लिये स्रवित तरल अवशेष एवं अन्य स्राव सम्मिलित। हालांकि शरीर के आकार के आधर पर चयापचीय मल नाइट्रोजन अनुपाततः नियत रहती है परन्तु कुल मल नाइट्रोजन के भाग के रूप में इसमें विविधता होगी। पशु को भोज्य में दी जाने वाली नाइट्रोजन की पचनीयता पर कुल मल नाइट्रोजन निर्भर करेगी। कुरार तथा मुद्गल ने प्रौढ़, दूध न देने वाली भैंसों को भूसा तथा सान्द्र मिश्रण इस प्रकार खिलाया कि वह सैन तथा रे (1964) के पचनीय प्रोटीन तथा कुल पाचक तत्व के मानक से 80, 100 तथा 120 प्रतिशत है। इन वैज्ञानिकों ने देखा कि भोज्य में अधिक ऊर्जा अन्तर्ग्रहण होने पर सार्थक रूप से मल नाइट्रोजन क्षति बढ़ जाती है। जबकि प्रोटीन तथा ऊर्जा के विभिन्न स्तर मूत्र में नाइट्रोजन क्षति पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं डाल पाये। प्रोटीन का सन्तुलन (डब्लू$^{0.75}$ किलो/दिन), भी भोज्य के ऊर्जा तथा प्रोटीन स्तर से सार्थक रूप से प्रभावित हुए। इस आधार पर इन वैज्ञानिकों ने यह सुझाया कि भैंसों में प्रोटीन की

आवश्यकता गोपशुओं की अपेक्षा कम है। जब ग्राफ पर पाचक प्रोटीन अन्तर्ग्रहण को ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन के रूप में नाइट्रोजन सन्तुलन के विपरीत अंकित किया गया तो कुरार तथा मुद्गल (1981) ने पाया कि अनुरक्षण के लिये नाइट्रोजन की मात्रा 2.25 ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन आती है। यह आंकड़े लगभग अन्य वैज्ञानिकों के समान ही थे। रंजन तथा पाठक (1979) ने भी 2.84 ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन मान प्रस्तावित किया था जो कि सैन तथा साथियों (1987) द्वारा सुझाये गये मान के समान ही था।

सिवइया और मुद्गल (1978) ने बढ़वार वाली बछड़ियों में पाचक प्रोटीन की अनुरक्षण की आवश्यकता 3.396 ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन बताई। परन्तु यह मान कुरार तथा मुद्गल (1981) द्वारा सुझाये गये प्रौढ़ पशुओं के मान से काफी अधिक था। अभी तक के अनुसंधान ऐसा संकेत देते हैं कि गोपशु की अपेक्षा भैंसें भोज्य नाइट्रोजन के उपयोग करने में अधिक सक्षम हैं। इसी कारण भैंसों में गोपशुओं की अपेक्षा पाचन प्रोटीन की अनुरक्षण के लिये आवश्यकता भी कम है। सभी उपलब्ध आंकड़ों का औसत लेने पर मान 2 – 54 ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन आता है। यह मान जो 2.86 ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन (गोपशु के लिये) से 11% कम है, इस तथ्य की पुष्टि करता है कि शरीर के अनुरक्षण के लिये भैंसों में प्रोटीन की कम आवश्यकता होती है। इसी बात को ध्यान में रखकर सारणी 6.1 में दिये गये अनुमानों का परिकलन 2.54 ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन पर किया गया है।

बढ़वार

बढ़वार के लिये नाइट्रोजन की ठीक–ठीक मात्रा ज्ञात करना और भी कठिन है क्योंकि नाइट्रोजन का शरी में इकट्ठा होना जाति और उम्र पर निर्भर करता है। गैन्श तथा साथियों (1975) ने पशु के शरीर भार में बदल एवं उम्र के आधार पर प्रोटीन आवश्यकताओं को ज्ञात करने के लिये एक समीकरण बनाया था। अब इसी समीकरण को बदला गया है और इसमें साहित्य में सुझाये गये पाचक प्रोटीन मानों का समावेश किया गया है। यदि हम शिवइया तथा मुद्गल (1978) द्वारा दिये गये 0.238 ग्राम/पाचक प्रोटीन/डब्लू$^{0.75}$किलो/ग्राम शरीर में बढ़ोतरी का मान लें तो समीकरण निम्न प्रकार बनेगा:

पाचक प्रोटीन की आवश्यकता (ग्रा./दिन) = 2.54 डब्लू$^{0.75}$किलो + 0.238 ग्रा. LWG + 0.6631 किलो LW – 0.001142 किलो LW^2

डब्लू$^{0.75}$ किलो = चयापचीय शरीर भार

LWG = शरीर भार में बढ़ोतरी

LW = शरीर भार

यहां पर LW = लाइव वेट और LWG = लाइव वेट गेन

यहां यह लिख देना आवश्यक है कि भैंसों में प्रोटीन की सही आवश्यकता को ज्ञात करने के लिये व्यापक अनुसंधान आवश्यक हैं उन्हीं के आधार पर हमें सही ज्ञात प्राप्त होगा और सही खाद्य मानक स्थापित हो सकेंगे।

सारणी–1 में जो आंकड़े तथा मान दिये गये हैं वह बढ़वार, बिना गाभिन भैंसें तथा पहले 7 माह तक के गर्भावधि के लिये पाचक प्रोटीन की आवश्यकता का सही–सही आंकलन देते हैं।

गाभिन अवस्था (अन्तिम 3 माह)

गर्भावस्था में भ्रूण के बढ़वार के साथ–साथ आवश्यक झिल्लियों तथा तरलों में भी बढ़ोतरी होती है। परन्तु यह तथ्य समझ लेना आवश्यक है कि गर्भ धारण के आरंभिक चरण में भ्रूण तथा गर्भ धारण अन्य पदार्थों की बढ़वार धीमी गति से होती है। पूरे गर्भावस्था काल के पहले 7 महीनों में भ्रूण तथा अन्य पदार्थों की बढ़वार कुल बढ़वार की 1/5 ही हो पाती है। इससे यह स्पष्ट है कि अन्तिम तीन महीनों में तीव्र गति से बढ़वार होनी आवश्यक है। इसी कारण अन्तिम तीन महीनों के गर्भावस्था काल में पशु को विशेष पोषण देना आवश्यक है। ऐसा अनुमान है कि भैंसों में गाभिन अवस्था में गोपशुओं के समान ही पोषणिक आवश्यकता होती है (चित्र 6.5)।

गर्भावस्था के आरंभिक चरण में अनुरक्षण की आवश्यकता के अतिरिक्त पोषक तत्वों की आवश्यकता नहीं होती परन्तु यह इसी अनुमान पर संभव होगा कि पशु प्रौढ़ है और भली प्रकार स्वस्थ है। परन्तु गाभिन पशु जब प्रौढ़ होते हैं और बढ़वार होती रहती है या फिर प्रौढ़ गाभिन पशु की हालत कमजोर है ऐसी हालत में अतिरिक्त पाचक प्रोटीन तथा अन्य पोषक तत्व बढ़वार के लिये देना आवश्यक है। ऐसी अवस्था में 20 और 10 प्रतिशत पोषक तत्वों की बढ़ोतरी क्रमशः पहले तथा दूसरे ब्यांत में देना आवश्यक होगा। परन्तु प्रौढ़ पशु जो कमजोर है यदि उसे भी अतिरिक्त पोषक तत्व दिये जायेंगे तो आगे

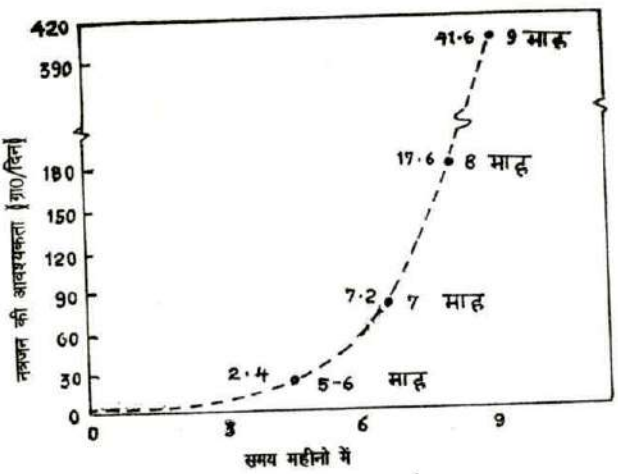

चित्र-6.6 गाभिन गायों में नाईट्रोजन की आवश्यकता (कथ बर्टसन, 1969)

आने वाले ब्यांत में वह निश्चय ही अच्छा उत्पादन करेगा। वास्तव में इस प्रकार से आगे आने वाले ब्यांत के प्रथम चरण में दुग्ध उत्पादन बढ़ेगा वैसे तो नवजात शावकों का जन्म भार माँ के आकार एवं पौषणिक आधार पर निर्भर करता है। परन्तु यह भार 28 से 40 किलो के बीच रहता है। इस प्रकार अन्तिम दिनों में ब्याने से पूर्व गर्भ भार में 18–26 किलो की वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त जैसा ऊपर दिया गया है कि भ्रूण भार के अतिरिक्त अन्य झिल्लियाँ आदि भी बढ़ती हैं। इस प्रकार यह अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं होगी कि गर्भावधि के अंतिम दिनों में गर्भ में प्रतिदिन बढ़वार 400 ग्राम होगी।

इस प्रकार पाचक प्रोटीन की अनुरक्षण के लिये आवश्यकता के अतिरिक्त (2.54 ग्राम पाचक प्रोटीन/डब्ल्यू $^{0.75}$किलो/ दिन) भैंस को समुचित मात्रा में अतिरिक्त पाचक प्रोटीन उपलब्ध करानी होगी जो कि इतने पोषक तत्व प्रदान कर सकें। 400 ग्राम अतिरिक्त वस्तु जो शरीर में बढ़ रही है उसकी पूर्ति हो सके। परन्तु इस मान का ठीक–ठीक आंकलन लगाना कठिन है क्योंकि नवजात शावकों (या गर्भ) में वढ़वार वाले शावकों की अपेक्षा जल की मात्रा अधिक होती है। परन्तु यदि हम यह अनुमान लगायें कि गर्भ बढ़बार के लिये भी पाचक प्रोटीन की वहीं मात्रा सटीक होगी तो बढ़वार के लिये ठीक होगी तो ऊपर दिये गये समीकरण के अनुसार यह मान 95 ग्राम प्रतिदिन आयेगा।

दूध देने वाले पशु

दूध देने वाले पशु के भोजन में समुचित प्रोटीन की मात्रा का होना आवश्यक है जो कि न केवल उसकी अनुरक्षण की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके बल्कि दूध में स्रावित होने वाली प्रोटीन एवं पशु गाभिन हैं तो गर्भ के लिये भी आवश्यक प्रोटीन प्रदान कर सके। हालांकि ब्यांत के प्रथम चरण में विशेष रूप से वह पशु जो अधिक दूध देते हैं यह पूर्ति का उद्देश्य प्राप्त करना कठिन है। ऐसी अवस्था में यदि प्रोटीन की पूर्ति भोजन से नहीं होगी तो पशु अपने शरीर में संचित पेशी प्रोटीन का उपयोग दुग्ध उत्पादन के लिये करेगा। इसलिये यह परमावश्यक है कि इस काल में समुचित पोषक तत्व (प्रोटीन सहित) दुधारू पशु को खिलाये जा सकें।

कुरार तथा मुदगल ने 6 विभिन्न भोज्य भैंसों को खिलाये जिसमें ऊर्जा/प्रोटीन में 6 अनुपात थे और अनुरक्षण के प्रोटीन की आवश्यकता 3.2 ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन बताई। यह मान उस मान से थोड़ा अधिक था जो कि दूध न देने वाले पशुओं में अनुरक्षण के लिये ज्ञात किया गया था (2.54 ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन)। दुग्ध उत्पादन के लिये पाचक प्रोटीन का मान 126.03 ग्रा./100 ग्राम दूध में स्रवित होने वाली प्रोटीन के लिये था। जबकि शिवइया तथा मुदगल (1978) ने जब पोषणिक स्तर का प्रभाव मध्य ब्यांत के चरण में देखा तो पाचक प्रोटीन की अनुरक्षण के लिये आवश्यकता 3.65 ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन निकाली थी और प्रति 100 ग्राम स्रवित दूध प्रोटीन के लिये पाचक प्रोटीन की आवश्यकता 166.34 ग्राम बताई थी। इन दो आंकड़ों में काफी विविधता होने पर भी और अन्य कोई जानकारी के अभाव में दोनों आंकड़ों का औसत (3.2 ग्राम/डब्लू$^{0.75}$किलो/दिन) ही आवश्यकता ज्ञात करने के लिये प्रयोग किया गया है।

इससे यह स्पष्ट है कि भैंसों के लिये विभिन्न शरीर क्रियात्मक कार्यों के स्तर पर पोषणिक आवश्यकताओं के प्रमाणिक मान ज्ञात करने के लिये व्यापक अनुसंधान की आवश्यकता है। आशा है कि आगे आने वाले समय में यह पूर्ति हो सकेगी।

कार्यकारी पशु

अभी तक ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि कार्य करने में अनुरक्षण के अतिरिक्त प्रोटीन की आवश्यकता होती है और जो कुछ थोड़ी मात्रा में शरीर

के ऊपरी सतह से जो प्रोटीन की क्षति होती है उसका कांतिमान भी ज्ञात नहीं है। इससे यह अनुमान लगा सकते हैं कि जब पशु कार्य करता है तो शुष्क पदार्थ का अन्तर्ग्रहण अधिक होता है (या फिर भोजन में ऊर्जा की सघनता बढ़ती है) और यह ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति के लिये आवश्यक है। इस भोजन में निश्चित रूप से प्रोटीन की मात्रा बढ़ेगी और यही अतिरिक्त प्रोटीन पशु की प्रोटीन आवश्यकता की पूर्ति करने में समर्थ होगी। फिलीपाइंस में अनुसंधानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हल्का कार्य करने वाले पशु को 90 ग्राम पाचक प्रोटीन, मध्यम कार्य करने वाले पशु के लिये 110 ग्राम पाचक प्रोटीन और भारी कार्य करने वाले पशु के लिये 130 ग्राम पाचक प्रोटीन प्रतिदिन की आवश्यकता होगी।

खनिज

खनिज तत्वों का पशु शरीर से निष्कासन अविरत होता रहता है। इसलिये यह आवश्यक है कि इन खनिज तत्वों को नियमित रूप से पशु भोज्य में देना आवश्यक है। खनिजों की आवश्यकता पशु शरीर में कई एंजाइमों के घटक और चयापचीय प्रणालियों में पड़ती है। हालांकि यह आम धारणा है कि कुछ प्रयुक्त खनिज तत्वों का पुनः चक्रिय हो जाता है, कुछ मूत्र, मल एवं त्वचा के रास्ते से निष्कासित हो जाते हैं। क्योंकि इन सभी अन्तर्जनित (Endogenous) क्षतियों के कारण पशु अपनी अनुरक्षण की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये निरंतर खनिज तत्वों की आवश्यकता रहती है इसके साथ–साथ खनिज तत्वों की आवश्यकता बढ़वार, उत्पादन एवं जनन के लिये भी पड़ती है।

भैंसों में भी कई खनिज तत्वों की आवश्यकता रहती है जिनमें सोडियम, कैलशियम, फॉस्फोरस, गंधक, क्लोरीन, कोबाल्ट, पोटेशियम, मैंगनीशियम, आयोडीन, लोहा, मैंगनीज, जस्ता, सेलेनियम और तांबा मुख्य हैं।

जब हम पशु के लिये खनिज तत्वों की आवश्यकता का परिकलन करते हैं तो हमें यह ध्यान में रखना होगा कि इस तत्व की उपलब्धता क्या है। उदाहरण के लिये कैलशियम तथा फॉस्फोरस खनिजों की भोज्य में उपलब्धता केवल 40 से 50 प्रतिशत ही हो। इसलिये कैलशियम और (या) फॉस्फोरस की क्षति और बढ़वार के रूप में प्राप्त धारित (भ्रूण सहित) और (या) उत्पादन में आवश्यकता ज्ञात करने के पश्चात् उपलब्धता गुणांक से भाग देना होगा

(आमतौर पर 10 प्रतिशत गुणांक कल्पित किया जाता है) यही मात्रा प्रतिदिन की आवश्यकता के रूप में मानी जाती है।

जैसे–जैसे उम्र बढ़ती जाती है कैलशियम तथा फॉस्फोरस की भोज्य आवश्यकता घटती जाती है। इसके साथ ही उम्र बढ़ने पर भोज्य स्रोत से प्राप्त कैलशियम तथा फॉस्फोरस का पाचक नली से अवशोषण भी घट जाता है। इसलिये अनुरक्षण के लिये कैलशियम या फॉस्फोरस की आवश्यकता अनुपाततः नियत रहती है।

भैंसों के पोषण में सोडियम तथा क्लोराइड का महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु यह किफायती दर से साधारण नमक के द्वारा दिये जा सकते हैं इसलिये यहां हम इनका व्यापक वर्णन नहीं करेंगे।

सारणियों में भी विशेष रूप से कैलशियम तथा फॉस्फोरस की मात्रा को ही दर्शाया गया है। हालांकि कई अन्य ऐसे खनिज हैं जो कि अनुरक्षण और उत्पादन के लिये आवश्यक हैं। विभिन्न क्षेत्रों में एक अच्छा खनिज मिश्रण समुचित मात्रा में विरल तत्व एवं अन्य खनिज तत्व देने में समर्थ है।

कैलशियम

जैसा कि ऊपर दिया गया है कि पशु की कैलशियम की आवश्यकता का परिकलन विभिन्न अन्तर्जनित क्षतियों के जोड़ एवं शरीर में अवरोधन की मात्रा या दूध में स्रावित होने वाली मात्रा से किया जा सकता है।

अग्रवाल तथा साथियों (1971) ने बताया कि एक प्रौढ़ भैंस के लिये अनुरक्षण की आवश्यकता लगभग 23 से 25 ग्राम/दिन आती है। साहित्य में यही एक मान उपलब्ध है जो दूध में कैलशियम की मात्रा होती है उसे भी अनुरक्षण की आवश्यकता के साथ जोड़ना चाहिये। इसी प्रकार पहली बार ब्याने वाली बछड़ी के लिये पहले तथा दूसरे ब्यांत में बढ़वार के लिये कैलशियम की अतिरिक्त आवश्यकता होगी। जो सारणी 6.2 में परिकलित मान दिये गये हैं उनमें 2.9 ग्राम/किलो 5% वसा वाले दूध से लेकर 4.1 ग्राम/किलो 11% वसा वाले दूध के लिये सुझाये गये हैं।

फॉस्फोरस

सारे विश्व में फॉस्फोरस ही ऐसा खनिज है जिसकी कमी भोज्य में पूरे

विश्व में विद्यमान है। अधिकांश प्राकृतिक चारों में फॉस्फोरस की कमी पाई जाती है और क्योंकि चारे ही रूमनधारी पशुओं का मुख्य भोजन होते हैं, यह आवश्यक है कि पशु भोजन में फॉस्फोरस की समुचित मात्रा हो जो कि अनुरक्षण, बढ़वार, गर्भावस्था एवं दूध देने के लिये पूर्ति कर सके।

अग्रवाल तथा साथियों ने भैंसों में फॉस्फोरस की आवश्यकता ज्ञात करने के लिये फॉस्फोरस के तीन स्रोत (सोडियम डाइहाइड्रोजन फॉस्फेट, कैलशियम फॉस्फेट और गेहूं की भूसी में विद्यमान फॉस्फोरस) खिलाये। इन अध्ययनों से यह तथ्य निकला कि अनुरक्षण के लिये फॉस्फोरस की आवश्यकता 12–17 ग्राम/दिन होगी। इन दो मानों का औसत 14.5 ग्रा./दिन आता है। इसी आधार पर मानों को सारणी–2 में दिया गया है।

गर्भावस्था, दुग्ध उत्पादन एवं बढ़वार की आवश्यकता को भी अनुरक्षण की आवश्यकता में जोड़ना होगा तथा सभी शरीर क्रियात्मक अवस्थाओं में फॉस्फोरस की आवश्यकता का ज्ञान हो सकेगा। इस बात की भी सावधानी बरतनी होगी कि कैलशियम : फॉस्फोरस अनुपात भी 3:1 से अधिक न हो। अब ऐसे तथ्य उपलब्ध हैं कि यदि राशन सन्तुलित हो तो इससे अधिक अनुपात होने पर भी कोई क्षतिकर प्रभाव नहीं पड़ेगा। और कई अवस्थाओं में जहां चारे खिलाकर ही पशुओं को रखा जाता है, कैलशियमःफॉस्फोरस अनुपात बड़ा हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु ऐसी अवस्था में भी यही सुझाव दिया जाता है कि भोजन में फॉस्फोरस की समुचित मात्रा देना आवश्यक है जिससे न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति हो सके।

पशु पोषण के विशेष पहलू

नवजातों में जब तक रूमेन पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो जाता, तब तक अलग से वसा देने की आवश्यकता रहती है। परन्तु वयस्क पशु में रूमेन के सामान्य कार्य–कलाप के लिये वसा की आवश्यकता नहीं होती। रूमेन में जो जीवाणु विद्यमान रहते हैं, वह गाय, भैंस के लिये लिपिड की आवश्यकता की पूर्ति करते रहते हैं। आमतौर पर चारे की फसलों में लिपिड की मात्रा तीन प्रतिशत से कम होती है और दाने के भाग में तीन–चार प्रतिशत से अधिक लिपिड पाये जाते हैं।

फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि नवजात बछड़े–बछड़ियों के राशन में

समुचित वसा की मात्रा देने की क्षमता आवश्यक है। नवजातों में समुचित ऊर्जा बढ़वार के लिये, आवश्यक वसीय अम्लों के लिए और वसा घुलित विटामिनों का परिवहन करने के लिये, मिल्क रिप्लेसर में वसा की मात्रा 10 प्रतिशत तक होनी आवश्यक है। रचनात्मक अवस्था में प्रौढ़ पशुओं के राशन में 2 प्रतिशत ईथरी निष्कर्ष का सुझाव दिया जाता है।

यह तो ज्ञात है कि वसा में कार्बोहाइड्रेड और प्रोटीन की अपेक्षा ऊर्जा घनत्व 2.25 गुना होता है और वसा को उपचारित भोज्य में मिलाने से उसके भौतिक गुण उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि उसका रेतीलापन कम हो जाता है और भोज्य की क्षति कम होती है। इसीलिए कभी–कभी रूमेनधारी पशुओं के राशन में वसा तथा तेल की सीमित मात्रा मिलाने की सिफारिश की जाती है। इसके अतिरिक्त गोपशुओं की खिलाई–पिलाई में अन्य कारक भी वसा तथा तेल का प्रयोग सीमित रखने में सहायक होते हैं। जब रूमेनधारी पशुओं के राशन में वसा या तेल की मात्रा पांच प्रतिशत से ऊपर होती है तो इसका विपरीत प्रभाव पशु के कार्यकलाप पर पड़ता है। आमतौर पर रूमेन में सेल्यूलोज की पचनीयता कम हो जाती है और भोज्य के अन्तर्ग्रहण की दर कम हो जाती है। मल साबुन (Faecal soaps) के निष्कासन की मात्रा बढ़ जाती है, हालांकि वसा का वास्तविक पाचन गुणांक 95 प्रतिशत के आस–पास ही रहता है। दूध देने वाली गायों को जब राशन में अतिरिक्त वसा दिया जाता है तो आमतौर पर दुग्ध उत्पादन तो नहीं बदलता परन्तु दुग्ध वसा और विश्लेषण पर प्रभाव पड़ सकता है। संतृप्त वसा खिलाने से दुग्ध वसा प्रतिशत में गिरावट आयेगी। ऐसे तेलों में जिनमें 18:2 असंतृप्त वसीय अम्लों की काफी मात्रा रहती है, दुग्ध वसा प्रतिशत में गिरावट लाने में काफी प्रभावकारी काम करते हैं। रूमेन में तेलों का आंशिक जैव हाइड्रोजनीकरण भी होता है जिससे कि दूध में 18:1 वसीय अम्ल की मात्रा काफी हद तक बढ़ जाती है परन्तु यदि राशन को दिन में कई भागों में बांट कर समय–समय पर खिलाया जाए या फिर तेल को तरल पदार्थ के रूप में न खिलाकर बीज के रूप में जैसे मूंगफली का दाना या पूरा सोयाबीन आदि, तो तेल का प्रभाव दुग्ध वसा पर नहीं पड़ता, या फिर संरक्षित अवस्था में तेल आमाशय तक पहुंचा दिया जाये और रूमेन में विघटन न होने पाये तो भी दुग्ध वसा पर गिरावट का प्रभाव नहीं पड़ेगा। ऐसी अवस्था में दुग्ध वसा की असंतृप्ता बढ़ जायेगी परन्तु ऑक्सीकरण स्थानीपन घट जायेगा।

स्थूल चारे

दुधारू पशुओं के राशन में स्थूल चारे का होना अत्यन्त आवश्यक है। एक तो सामान्य वसा प्रतिशत बनाये रखने में चारे का विशेष महत्व होता है, साथ ही रूमेन के कार्य में अव्यवस्था लाने से रोकता है और संभवतः बच्चा होने के बाद की तकलीफों को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। कई साधारण सी विधियां निकाली गई हैं जिनके द्वारा राशन में चारे की मात्रा का निर्धारण किया जा सकता है। उदाहरण के लिये राशन में कुल शुष्क पदार्थ का कम से कम 1/3 शुष्क पदार्थ 'हे' या साइलेज या अन्य स्थूल चारे से प्राप्त होना चाहिये या फिर प्रत्येक दुधारू गाय को उसके शरीर भार का 1. 5 प्रतिशत नित्य ही 'हे' तुल्य या फिर कुल राशन का एक भाग तन्तु के रूप में रहना आवश्यक है। लॉफग्रीन और वार्नर (1970) ने यह सुझाया था कि चारे के विश्लेषण में जो ऐसिड डिटरजेंट फाइवर और दुष्पचनीय तन्तु की मात्रा ज्ञात की जाती है वह वसा प्रतिशत की गिरावट को रोकने के लिए सबसे अच्छा सूचक होता है।

ऐसा ज्ञात किया गया है कि भोजन में 19.4 प्रतिशत एसिड डिटरजेंट फाइबर और 17.3 प्रतिशत दुष्पचनीय तन्तु सामान्य स्तर पर वसा प्रतिशत को बनाये रखने में सहायक होते हैं। दो विधियों से यह ज्ञात किया गया है कि एसिड डिटजेंट फाइबर की मात्रा और वसा प्रतिशत में बदल का सीधा संबंध होने के कारण दुष्पचनीय तन्तु की मात्रा को ज्ञात करने की अपेक्षा इस विधि को अधिक पसंद किया जाता है। परन्तु यहां यह भी समझ लेना आवश्यक है कि मोटे तरीकों को अपनाने में कुछ समस्याएं खड़ी हो सकती हैं। उदाहरण के लिये यदि चारे की पिसाई कर दें या गुटका रूप दे दिया जाए या चारे की छोटी–छोटी कुट्टी कर दी जाए तो स्थूल चारे का प्रभावी रूप घट जाता है। जब 'हे' को उपचारित करके (0.04 से.मी. छलनी से निकालकर) खिलाया जाए तो दुग्ध वसा प्रतिशत में निश्चित गिरावट देखी गयी थी, जबकि वही 'हे' 0.95 से.मी. छलनी से निकालकर खिलाया गया तो वसा प्रतिशत सामान्य रही। ऐसा भी देखा गया है कि जब 'हे' को 2.54 से.मी. छलनी से छान करके राशन का 30 प्रतिशत भाग खिलाया गया तो उसी प्रकार वसा का स्तर बना रहा जितना कि मक्का का पूरा भूट्टा पीसकर 1.59 से.मी. छलनी से पार करके उसी स्तर पर खिलाया गया। बाल्च (1971) और सडवीक्स और होम्स (1975) ने यह सुझाव दिया कि सांडों और बछड़ियों के राशन के शुष्क भाग

के दुष्पचनीय तन्तु का न्यूनतम मात्रा 15 प्रतिशत होना चाहिये जबकि दुधारू गायों में 17 प्रतिशत दुष्पचनीय तन्तु का सुझाव है। दुष्पचनीय तन्तु का यह स्तर स्थापित करने में ऐसा अनुमान किया गया है कि चारे का भौतिक रूप इतना स्थूल है कि इस तथ्य के विपरीत प्रभाव रोकने में सफल होगा। प्रायः देखा जाता है कि अधिक दूध देने वाले गायों में ब्यांत के पहले चरण में आमाशय का स्थान बदल (displaced) हो जाता है। ऐसी अवस्था को रोकने या सुधारने में राशन में समुचित स्थूल चारे की मात्रा आवश्यक होती है। यहां यह बता देना आवश्यक है कि 'स्थूल चारे' (Roughage) शब्द का उपयोग उन सभी भोज्य पदार्थों के लिए किया गया है जिनमें तन्तु की मात्रा अधिक होती है (15 से 17 प्रतिशत या अधिक) और सान्द्रों की अपेक्षा काफी अधिक होती है। कभी–कभी स्थूल चारे के स्थान पर हम चारे (forage) शब्द का प्रयोग कर लेते हैं।

अपुष्टिकर योगज

जीवाणुद्वेषी (antibiotics) राशन में मिलाकर खिलाने का आम प्रचलन शावकों में हैं, जहां कि 30–40 मि.ग्रा. प्रतिदिन दूध में मिलाकर देते हैं और कुछ अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि दुधारू गायों में निम्न स्तर पर जीवाणुद्वेषी देने से दुग्ध उत्पादन में थोड़ी बढ़ोतरी होती है। परन्तु इस प्रणाली को आम अपनाने की सिफारिश नहीं की गयी है। दुधारू गायों में सबसे बड़ा दुष्परिणाम तो यही है कि यह जीवाणुद्वेषी दूध में भी स्रावित हो जाते हैं जिससे कि दुग्ध पदार्थ बनाने में बाधा पड़ती है। दूसरे, अधिक काल तक जीवाणुद्वेषी खिलाने से गाय में औषधि प्रतिरोध (drug resistance) भी आ जाता है। इस कारण जीवाणुद्वेषी खिलाने से लाभ की अपेक्षा नुकसान ही होने की संभावना है।

समय–समय पर गायों में दूध बढ़ाने के लिए हारमोन सक्रिय पदार्थों को राशन में खिलाने पर ध्यान आकर्षित होता रहा है। भारत में और विदेशों में जो अनुसंधान हुए हैं, उनसे यही तथ्य निकलते हैं कि हॉरमोन सक्रिय पदार्थ गोपशुओं के राशन में खिलाने की आम सिफारिश नहीं की जा सकती। थायरोप्रोटीन को गाय को ब्याने के पश्चात 50 दिन तक देने से निश्चित रूप से दुग्ध उत्पादन में बढ़ोतरी देखी जाती है, परन्तु यह आरंभिक बढ़ोतरी ब्यांत के 22वें सप्ताह से लेकर 42वें सप्ताह तक काफी गिर जाती है और

यदि हम कुल ब्यांत के दुग्ध उत्पादन, वसा और दुग्ध प्रोटीन को देखें तो कोई सार्थक भिन्नता देखने में नहीं आती। हालांकि कुछ तथ्य इस बात के मिलते हैं कि गायों को निम्न स्तर पर ईस्ट्रोजन खिलाने से यह दुग्ध उत्पादन को बढ़ाने में मदद दे सकता है, परन्तु कानूनी सीमायें इनका प्रयोग करने से रोकती हैं।

विशिष्ट भोज्य योगज (additive) ने, जिनको कि समअवस्थापक (buffers) के रूप में वर्गीकृत किया गया है, वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया है। जब गायों को अधिक मात्रा में सान्द्र मिश्रण खिलाया जाता है तो दुग्ध वसा में या तो गिरावट को रोकने के लिए या फिर दुग्धवसा प्रतिशत को ठीक रखने के लिए इनका उपयोग किया गया है। दाने के मिश्रण में मिलाने के लिए जो योगज आंशिक रूप से प्रभावशाली साबित हुए हैं, वह हैं सोडियम बाईकार्बोनेट, मैगनीशियम ऑक्साइड के साथ मिलाकर या अकेले ही और सोडियम बेंटोनाइट। दूध में वसा प्रतिशत को गिरने से रोकने के लिए वैज्ञानिकों ने सान्द्र मिश्रण में एक प्रतिशत सोडियम बाईकार्बोनेट और 0.5 प्रतिशत मैगनीशियम ऑक्साइड, मिलाने को रचनात्मक स्तर कहा है। ऐसा देखा गया है कि इस स्तर पर योगज मिलाने से वसा के सामान्य स्तर से 90 प्रतिशत स्तर तक स्थाई रखने में सफलता प्राप्त हुई, जबकि नियंत्रित वर्ग में जिसमें कि यह योगज नहीं दिया गया था, वसा का स्तर 75 प्रतिशत ही रहा। रिण्डसिग और शुल्टज (1969) ने गायों के दूध में वसा को गिराने वाले राशन में पांच प्रतिशत सोडियम बेन्टोनाइट स्तर पर खिलाने पर सामान्य वसा के स्तर से 85 प्रतिशत पर बनाये रखने में सफलता प्राप्त हुई, जबकि बिना किसी योगज के राशन खिलाने पर 60 प्रतिशत तक ही वसा का स्तर बनाये रखने में सफलता मिली। सान्द्र मिश्रण के अन्तर्ग्रहण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। सन् 1970 के अध्ययनों से यह पता चला कि जिन गायों के राशन में बेन्टोनाइट खिलाया गया उनमें फॉस्फोरस और मैगनीशियम में कमी आई थी। सोडियम बाईकार्बोनेट खिलाने से रूमेन के पी.एच. मान में बढ़ोतरी देखी गयी और एसिटिक एसिड और प्रोपिओनिक एसिड (A/P) के अनुपात में भी बढ़ोतरी देखी गयी थी। इसका तात्पर्य हुआ कि राशन में समअवस्थापक देने से एसिटिक एसिड उत्पादन में बढ़ोतरी होती है जिसके कारण वसा का उत्पादन बढ़ता है या सामान्य रखने में सहायता मिलती है। बेन्टोनाइट खिलाने से रूमेन

में एसिटिक एसिड और प्रोपिओनिक एसिड के अनुपात में बढ़ोतरी होती है, परन्तु रूमेन के पी.एच. पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार के पदार्थों को भी आंख बन्द करके मिलाना ठीक न होगा क्योंकि एक तो यह पदार्थ पूर्ण रूप से वसा का स्तर बनाये रखने में प्रभावकारी नहीं होते और हो सकता है कि कुछ अन्य दुष्परिणाम देखने को मिले, जैसे कि इन पदार्थों का भोज्य अन्तर्ग्रहण और खनिजों के शेष पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसे अभी ठोस प्रभाव उपलब्ध नहीं हैं जिनसे यह सिद्ध हो कि यह निश्चित रूप से भैंसों के राशन में खिलाने से वसा स्तर को अधिक कर सकते हैं। अभी भी अमेरिका के विश्वविद्यालयों में इस तथ्य को जानने के लिए व्यापक अनुसंधान हो रहे हैं। विशेष रूप से भारत में जहां अभी और आने वाले वर्षों में भैंसों के राशन चारे पर भी आधारित होंगे यही कहना ठीक होगा कि विशेष अवस्थाओं को छोड़कर दूध के वसा में गिरावट को रोकने के लिए राशन में समुचित मात्रा में चारे का समावेश करना ही रचनात्मक सुझाव हो सकता है।

अच्छे राशन की विशेषतायें

राशन की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है। एक भैंस 24 घंटे में जितना भोजन अन्तर्ग्रहण करती है वह राशन कहलाता है। डेयरी राशन या तो संतुलित होगा या असंतुलित होगा। असंतुलित राशन वह होता है जो कि भैंस को 24 घंटों में जितने पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है वह देने में असफल रहता है, जबकि संतुलित राशन भैंस को 'ठीक' समय पर 'ठीक' मात्रा में पोषक तत्व प्रदान करता है। सन्तुलित राशन में विभिन्न पोषक तत्वों का उचित अनुपात रहना भी आवश्यक है। जैसे एक तरफ तो कार्बोहाइड्रेट और वसा और दूसरी तरफ प्रोटीन में शरीर क्रियात्मक अवस्था के अनुसार अनुपात होना अत्यन्त आवश्यक है।

पशु राशन को दो भागों में बांटा जा सकता है।

(i) अनुरक्षण राशन

पशु यदि कोई कार्य या उत्पादन न भी करें, फिर भी जीवित रहने के लिए आवश्यक शरीर क्रियाओं में भी ऊर्जा खर्च होती है, जैसे भोजन पचाना, हृदय का कार्यशील रहना, श्वांस लेना, रक्त का संचरण आदि। इसके अतिरिक्त शरीर के कोशिकीय और तन्तुओं में कुछ टूट–फूट होती रहती है।

इन शारीरिक तन्तुओं की मरम्मत एवं स्वतः कार्य करने वाली मांसपेशियों द्वारा भी ऊर्जा व्यय होती है। पशु की खुराक का वह भाग जो उपरोक्त कार्यों में उपयोग किया जाता है, अनुरक्षण राशन कहलाता है। इस प्रकार अनुरक्षण राशन वह राशन है जो विश्राम करने वाले पशु में जो किसी प्रकार का उत्पादन न कर रहा हो, अनिश्चित काल तक शारीरिक भार में किसी प्रकार की घटा–बढ़ी किये बिना स्वस्थ बनाये रखने के लिए ऊर्जा एवं अन्य पोषक तत्व प्रदान करता है। यह भी ज्ञात है कि पशु की अनुरक्षण की आवश्यकता उसके शारीरिक भार से सीधे अनुपात में संबंधित नहीं होती बल्कि उसके उपापचयाकार पर निर्भर करती है। यह उपापचयाकार पशु के शारीरिक भार डब्लू$^{0.75}$ होता है।

(ii) उत्पादन राशन

अनुरक्षण राशन के अतिरिक्त जो पोषक तत्व राशन में उपलब्ध होते हैं, वह उत्पादन के लिए उपयोग किये जाते हैं जैसे शरीर बढ़ोतरी, मोटापा, दुग्ध उत्पादन, कार्य करना, आदि। वैसे पशु का स्वभाव और जलवायु अनुरक्षण राशन की आवश्यकता को प्रभावित करते हैं। एक शीघ्र घबराने वाला या अशांत पशु एक आकार या नस्ल का होकर भी एक शांत पशु की अपेक्षा अधिक पोषक तत्व चाहेगा क्योंकि अशांत पशु चलने–फिरने और कार्यकलाप में अधिक ऊर्जा खर्च करेगा। दूध ऐसा पदार्थ है जो कि पशुओं से आमतौर पर उत्पादन के रूप में प्राप्त किया जाता है। इसमें प्रोटीन, कैल्सियम, फॉस्फोरस की प्रचुर मात्रा के अतिरिक्त बड़ी मात्रा में लैक्टोज, वसा, विटामिन होते हैं। इसलिए प्रत्येक भैंस के दुग्ध उत्पादन राशन की आवश्यकता उसके दूध की मात्रा तथा वसा पर निर्भर करेगी। भैंस की पूर्ण आवश्यकता ज्ञात करने के लिए उत्पादन राशन को अनुरक्षण राशन में जोड़ दिया जाता है।

डेयरी राशन स्वादिष्ट होना चाहिए। भैंसों में स्वादिष्ट भोजन ग्रहण करने की प्रबल इच्छा रहती है। अधिक दूध देने वाली भैंसों पोषक तत्वों को प्राप्त करने के लिए अस्वादिष्ट चारे या सान्द्र मिश्रण को समुचित मात्रा में ग्रहण नहीं करेगी। पशुशाला में, जहां दूध निकाला जाता है, भैंस के पास सान्द्र मिश्रण ग्रहण करने के लिए सीमित समय ही रहता है। इसलिए पशुपालक का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह पशु को ऐसा सान्द्र मिश्रण खिलाये जिसको कि भैंस शीघ्रता से ग्रहण कर सके।

भैंस के पाचन तंत्र की सीमित धारिता होती है। इस कारण अधिक दूध देने वाली भैंस को समुचित पोषक तत्व प्राप्त करने के लिए राशन के शुष्क पदार्थ की पचनीयता 65 प्रतिशत या इससे अधिक होनी चाहिए। यदि शुष्क पदार्थ की पचनीयता 65 प्रतिशत से कम होगी तो आमाशय तथा क्षुद्रांत्र की धारिता समुचित पोषक तत्व अन्तर्ग्रहण को सीमित करेगी और इससे दुग्ध उत्पादन कम होगा। भैंस जितनी ही छोटी होगी उतनी ही राशन की पचनीयता से प्रभावित होगी। बड़ी भैंस में प्रति इकाई शरीर भार पर पाचन क्षेत्र की धारिता थोड़ी अधिक होती है, इस कारण वह अधिक तन्तु वाले चारे से भी समुचित पोषक तत्व ग्रहण करने में समर्थ होती है। यही कारण है कि कई पशु–पालक बड़े आकार का पशु पालने की इच्छा प्रकट करते हैं।

राशन में आयतन (Bulk) का भी विशेष महत्व होता है। भैंस के शरीर में रूमेन की धारिता 250–300 लीटर तक रहती है। रूमेन में एक बात जो ध्यान देने की है वह है कि एक तो हम सिर्फ सान्द्र मिश्रण खिलाकर पाचन क्रिया ठीक नहीं रख सकते। जब तक आहार का आयतन पूरा नहीं होगा तब तक रूमेन में गतिशीलता नहीं आयेगी और जीवाणुओं द्वारा पाचन क्रिया नहीं होगी। भोजन में तन्तु का अपना महत्व है।

वैसे विविधता (Variety) का डेयरी राशन में महत्व नहीं है। इससे पहले प्रत्येक भोज्य का पोषणमान और स्वादिष्टता अधिक महत्व की होती है। यदि भैंसों की खिलाई–पिलाई का कार्यक्रम अपने फार्म पर ही पैदा किये गये चारे तथा दाने पर निर्भर है और समुचित मात्रा में प्रोटीन, विटामिन खनिज की पूर्ति की गई है तो ऐसी आशा की जाती है कि इससे काफी विविधता स्वतः आ जायेगी। जहां तक हो सके चारे तथा दाने की व्यवस्था पशुपालक को अपने फार्म से ही पूरी करनी चाहिए और जिन पोषक तत्वों की कमी रह जाये उसकी पूर्ति बाहर से खरीद कर करनी चाहिए।

भोजन की मात्रा

दुग्ध उत्पादन में हमें भैंस को एक दूध उत्पादन करने वाली मशीन के रूप में देखना चाहिए जिसे कि हम कुछ विशेष मात्रा में चारे तथा दाने के रूप में देते हैं और भैंस इन कच्चे पदार्थों को दूध के रूप में परिवर्तित करके हमें वापस कर देती है। जो कोई भी पशुओं की खिलाई–पिलाई करता है उसे यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि जो भोजन दुधारू भैंस को खिलायी

जाती है उसकी एक निश्चित मात्रा शरीर के अनुरक्षण के लिए उपयोग की जाती है। किसी अन्य कार्य के लिए भोज्य के उपयोग के पूर्व यह सबसे पहली आवश्यकता है और जो भोजन पशु ग्रहण करता है उसका उपयोग इसी कार्य के लिए करता है और जैसा कि ऊपर दिया जा चुका है यही 'अनुरक्षण राशन' है और रचनात्मक आधार पर यह निश्चित चार्ज (Fixed charges) होता है, जिसे चाहे पशु उत्पादन कर रहा हो चाहे न कर रहा हो, दोनों की अवस्थाओं में देना आवश्यक होता है।

सामान्यतः अनुरक्षण के लिए 35 कि.ग्रा. हरी ज्वार अकेली या गजराज घास के साथ दो कि.ग्रा. गेहूं का भूसा काफी रहेगा और इस अवस्था में किसी भी प्रकार का दाने का मिश्रण देने की आवश्यकता नहीं है। सर्दी के मौसम में 10–15 कि.ग्रा. बरसीम के साथ चार कि.ग्रा. गेहूं का भूसा काफी होगा। यदि हरे चारे की कमी है तो 10 कि.ग्रा. ज्वार तथा गजराज घास के स्थान पर एक कि.ग्रा. दाने का सन्तुलित मिश्रण देना होगा। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन प्रति पशु 20 ग्राम खनिज मिश्रण और 35 ग्राम साधारण नमक भी देना चाहिए। दाने का संतुलित मिश्रण बनाने के बारे में आगे बताया जायेगा।

यदि दुधारू भैंसों से अधिक उत्पादन प्राप्त करना है तो उन्हें चारा अधिक से अधिक मात्रा में खिलाना चाहिए। हरे चारे से पोषक तत्व पशुओं को आसानी से मिल जाते हैं और इनमें विटामिन की मात्रा भी अधिक होती है। पशु भी इसे चाव से खाते हैं। औसतन दूध देने वाली गाय को 20 से 25 कि.ग्रा. हरा चारा, चार–पांच कि.ग्रा. सूखा चारा और थोड़ा दाना काफी होगा। इसके अतिरिक्त 30–40 ग्राम नमक और 15–20 ग्राम खनिज मिश्रण देना होगा। पिछले कुछ समय में दाने की कीमतें 100 प्रतिशत से लेकर 200 प्रतिशत तक बढ़ गयी है और फिर दाने की कमी को देखते हुए पशुओं को दाना खिलाना एक समस्या बन गया है। इसलिये फसल चक्र में हेर–फेर करके द्विदलीय चारों की फसलों जैसे लोबिया, बरसीम, लूसर्न आदि उगाकर अनुमान लगाया गया है कि 30 प्रतिशत नाइट्रोजन जो पौष्टिक चारे के रूप में खिलाई जाती है, वह वापस खेत में आ जाती है।

चारे आमतौर पर दो प्रकार के होते हैं। एक तो साधारण जैसे ज्वार, मक्का, बाजरा, जई, हाथी घास, गिनी घास और दूसरे दो दाने वाले जैसे बरसीम, लूसर्न, लोबिया, ग्वार आदि। इसके अलावा नये चारों में गजराज

घास भी आती है। द्विदलीय या दलहनी चारों में प्रोटीन की अधिक मात्रा होने से दाने की राशन में काफी कमी की जा सकती है। साथ ही इनकी जड़ों में छोटी–छोटी गांठें होती हैं जो कि वायुमंडल की नाइट्रोजन को भूमि में जमा करती हैं। लूसर्न से प्रति हैक्टर 325 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्राप्त होती है, बरसीम से 275 कि.ग्रा., लोबिया से 25 कि.ग्रा., ग्वार से 62.5 कि.ग्रा. तथा मटर से 662.5 कि.ग्रा. नाइट्रोजन भूमि को प्राप्त होती है। कुछ आम चारों का विवरण सारणी 6.3 में दिया गया है। इसमें चारों का विश्लेषण भी दिया गया है।

सारणी 6.3 में दिये गये आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि द्विदलीय चारों में प्रोटीन की मात्रा अन्य चारों की अपेक्षा काफी अधिक होती है। साथ ही इन चारों में कैलशियम की मात्रा भी काफी होती है।

सान्द्र पदार्थों का निम्न प्रकार वर्गीकरण कर सकते हैं।

(क) पशु स्रोत – मछली का चूरा, रक्त का चूरा, मक्खन निकले दूध का पाउडर और मांस का चूरा।

(ख) दाने – जौ, ज्वार, मक्का, जई, चना आदि।

(ग) खली – मूंगफली की खली, तिल की खली, नारियल की खली, बिनौले की खली, अलसी की खली, तारामीरा की खली, मक्का की खली आदि।

(घ) उपोत्पाद – चोकर, दाल चुनी, धान का चोकर, मक्का का ग्लूटन, मक्का का ग्रिट, चने का छिलका, शीरा आदि।

पशुओं के राशन के काम आने वाले आहार पदार्थों का सिर्फ नाम जान लेना ही काफी नहीं है क्योंकि यह ज्ञान पशुओं के राशन का परिकलन करने के लिए काफी नहीं है। एक पशुपालक को इससे प्राप्त होने वाले पाचक कच्ची प्रोटीन, कुल पाचक तत्व और चयापचयी ऊर्जा का भी ज्ञान होना आवश्यक है। तभी एक बार पोषक तत्वों के आवश्यकता के आंकड़े इकट्ठे करके, भोज्य में पाये जाने और पोषक तत्वों के आधार पर किसी पशु के सन्तुलित आहार बनाने में सहायता मिल सकेगी।

इन आंकड़ों को सारणी 6.4 में दिया गया है।

खनिज मिश्रण पूरक रूप में

आमतौर पर जब द्विदलीय चारों की राशन में बहुतायत होती है तो राशन में फॉस्फोरस की कमी पाई जाती है। आमतौर पर दुधारू पशुओं के राशन में कैलसियम तथा फॉस्फोरस दोनों खनिजों का समावेश आवश्यक है। वैसे चरी तथा मक्का जैसे चारों में कैल्शियम की कमी देखी जाती है। यह बात ध्यान में रखने की है कि कैल्शियम की मात्रा फॉस्फोरस की मात्रा से दुगनी से अधिक होनी चाहिए। कैल्शियम तथा फॉस्फोरस के कुछ स्रोत नीचे दिये गये हैं।

स्रोत	फॉस्फोरस प्रतिशत	कैल्शियम प्रतिशत
डाइ कैल्शियम फॉस्फेट	18–20	22–25
स्टीम्ड बोन मील (भांपित हड्डी का चूरा)	14–15	28–30
मोनो सोडियम फॉस्फेट	20–25	–
डाई सोडियम फॉस्फेट	22–25	–
लाइम स्टोन (चूना)	–	36–40

राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में एक खनिज मिश्रण बनाया गया है। उसमें 3 कि.ग्रा. मिश्रण बनाने के लिए निम्न पदार्थ मिलाये गये हैं:

नाम	किलोग्राम	तत्वों की मात्रा
डाईकैल्शियम फॉस्फेट	1.65	कैल्शियम 19%, फॉस्फोरस 11.27%
सोडियम क्लोराइड	0.90	–
मैग्नीशियम कार्बोनेट	0.0900	मैग्नीशियम 0.856%
खड़िया	0.3312	–
फेरस सल्फेट	0.150	लोहा 0.1%
कॉपर सल्फेट	0.0021	तांबा 0.02%
मैग्नीज डाइऑक्साइड	0.0021	मैंग्नीज 0.04%
कोबाल्ट क्लोराइड	0.0015	कोबाल्ट 0.012%
पोटेशियम आयोडाइड	0.0003	आयोडीन 0.008%
सोडियम फ्लोराइड	0.0003	जिंक 0.057%
जिंक सल्फेट	0.0075	

व्यावसायिक रूप में भी खनिज मिश्रण बाजारो में उपलब्ध है, जिनके कई नामों से जाना जाता है। सान्द्र मिश्रण में आमतौर पर एक प्रतिशत खनिज मिश्रण मिलाया जाता है।

रूमेनधारी पशुओं में विटामिन 'ए' का विशेष महत्व है। वैसे जब राशन में हरे चारे की प्रचुर मात्रा रहती है तो विटामिन 'ए' की आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु निम्न कोटि के चारे खिलाने पर या जब राशन में प्रोटीन का स्थानांतरण करके यूरिया खिलाई जाती है तो विटामिन 'ए' की आवश्यकता पड़ सकती है। इस अवस्था में खाद्य पूरक के रूप में (रोवीमिक्स) विटामिन 'ए' का प्रयोग किया जा सकता है। दाने के मिश्रण में प्रति किलोग्राम 20,000 से 30,000 अर्न्तराष्ट्रीय युनिट विटामिन 'ए' देना ठीक रहता है।

संतुलित राशन खिलाना

एक दुधारू भैंस को प्रोटीन की अपेक्षा ऊर्जा की 10 गुनी आवश्यकता पड़ती है और ऊर्जा ही मुख्य रूप से दुधारू भैंसों में सीमाकारक होती है, परन्तु ऊर्जा के साथ प्रोटीन की समुचित मात्रा भी देना आवश्यक होगा, तभी भैंस दूध का उत्पादन ठीक प्रकार कर सकेगी।

सान्द्र मिश्रण में प्रोटीन का सन्तुलन करने के लिए सबसे पहले हमें चारे का प्रकार, किस्म और मात्रा का निर्धारण करना होगा। पशु अच्छे प्रकार के चारे आसानी से ग्रहण करते हैं। आमतौर पर एक दुधारू भैंस तीन किलोग्राम या अधिक 'हे तुल्य' प्रति 100 किलोग्राम शरीर भार पर ग्रहण करती है और वह भैंसें जो औसत किस्म का चारा ग्रहण करती हैं उनमें अन्तर्ग्रहण की क्षमता 2.0 से 2.2 किलोग्राम और जो साधारण चारा खाती हैं, उनमें 1.5 किलोग्राम या इससे भी कम 'हे तुल्य' प्रति 100 कि.ग्रा. शरीर भार पर ग्रहण करेगी। सारणी 6.5 में साइलेज या हेलेज को 'हे तुल्य' आधार पर परिवर्तित करने की विधि दी गयी है।

सान्द्र मिश्रण में प्रोटीन की मात्रा निर्धारण करने के लिए सारणी 6.5 की सहायता ली जा सकती है। दाना बनाने के लिए उसमें काम आने वाले स्थानीय वस्तुओं का ध्यान रखना आवश्यक है। आर्थिक दृष्टि से भी यह उचित

है कि दाने का मिश्रण तैयार करने के लिए उन्हीं वस्तुओं को काम में लाया जाए, जो उस क्षेत्र में मिलती हों।

आमतौर पर पशुपालक मिश्रित चारा ही खिलाते हैं। उदाहरण के लिए यदि पशुपालक दो भाग 'हे तुल्य' मक्का की साइलेज खिलाता है और एक भाग अति उत्तम लूसर्न 'हे' खिलाता है, तो उसे ऐसा सान्द्र मिश्रण बनाना होगा, जिसमें पाचक + कच्ची प्रोटीन की मात्रा 16 प्रतिशत हो। इस प्रतिशत का निर्धारण करने के लिए सारणी 6.6 की सहायता ली जा सकती है। पहले 19 + 19 का जोड़ (2 भाग मक्का साइलेज) और + 10 (एक भाग अति उत्तम लूसर्न है) और फिर इसे 3 से भाग दे दें (48 + 3 = 16)।

अब 16 प्रतिशत सान्द्र मिश्रण बनाने के लिए हम मक्का का दाना (8. 6 प्रतिशत कच्ची प्रोटीन) तथा मूंगफली की खली का प्रयोग कर सकते हैं। इसकी गणना के लिए पीयर्सन की स्कवायर विधि को अपनाया जा सकता है।

पीयर्सन स्कवायर विधि

स्कवायर के बीच में 16 को रखना होगा। फिर बाईं तरफ ऊपर के कोने में 8.6 अंक और नीचे के कोने पर 44.3 अंक लिखना होगा। अब प्रकोणी स्थाप (diagnonally) घटायें। इस प्रकार जैसे चित्र में दिखाया गया है, 16 प्रतिशत पाचक कच्ची प्रोटीन वाला सान्द्र मिश्रण बनाया जा सकता है।

जब एक से अधिक दाने का स्रोत और/या उच्च प्रोटीन पूरक प्रयोग करना हो तो पहले यह निर्धारण करना होगा कि किस अनुपात में दाने प्रयोग करने होंगे। इसके पश्चात पीयर्सन स्कवायर का प्रयोग करने से पूर्व दाने और प्रोटीन की औसत मात्रा परिकलित करनी होगी। यह करने के पश्चात प्रत्येक पदार्थ का भाग ज्ञात करने के लिये जैसा ऊपर दिया गया है, ज्ञात करना होगा। उदाहरण के लिये यदि दो भाग मक्का का दाना, एक भाग जई प्रयोग करना है तो जितना दाना मिलाना हो, उसे भाग दें जो मात्रा आयेगी, उतना जई का दाना प्रयोग होगा और कुल दाने की मात्रा से इसे घटाने से मक्का के दाने की मात्रा ज्ञात होगी। इस प्रकार दाने के मिश्रण में मक्का तथा जई के दाने की मात्रा ज्ञात हो जायेगी। इसके बाद उच्च प्रोटीन के पूरक के साथ

पीयर्सन स्क्वायर का प्रयोग करके दाने का मिश्रण तैयार किया जा सकता है।

पशुओं की खिलाई–पिलाई में किफायत बरतना आवश्यक है और जैसा कि चारे के अध्याय में लिखा गया है कि यदि हम एक कि.ग्रा. पाचक कच्ची प्रोटीन बरसीम जैसे चारे से देना चाहें तो कीमत तीन रुपये के लगभग आयेगी, जबकि उतनी ही पाचक कच्ची प्रोटीन सान्द्र मिश्रण द्वारा देने से 8 रुपये से अधिक लगेंगे। इसलिये दुधारू भैंसों का जहां तक संभव हो अच्छे पौष्टिक चारे ही खिलाने चाहिए, तभी दुग्ध उत्पादन की लागत कम आयेगी और पशुपालक को लाभ होगा।

दुधारू भैंसों की पोषक तत्वों की आवश्यकता किलोग्राम पाचक कच्ची प्रोटीन या किलोग्राम कुल पाचक तत्व या मैगाकैलोरी प्रतिदिन दी जाती है। यह पोषक तत्व अच्छे पौष्टिक चारे द्वारा दिये जा सकते हैं। अधिक दूध देने वाले पशुओं के लिए चारे के साथ थोड़ा दाने का मिश्रण (मुख्य रूप से दाने और उपोत्पादों से बना हुआ) देना आवश्यक होगा।

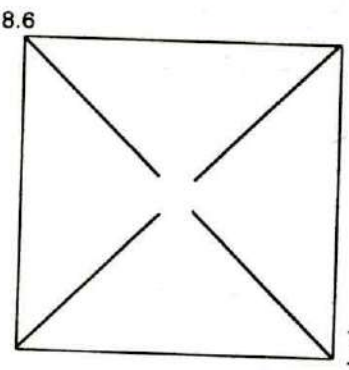

ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में मक्का और लोबिया का मिश्रित चारा उगाया जा सकता है। एक भैंस यदि 40–50 कि.ग्रा. मिश्रित चारा खाती है तो यह चारा अनुरक्षण तथा चार से छः कि.ग्रा. प्रतिदिन दुग्ध उत्पादन के लिए काफी

होगा। साधारण तौर पर अधिक दूध देने वाले पशुओं के लिए जो प्रति ब्यांत 3,000 लीटर दूध उत्पादन करते हैं, उनको प्रतिदिन दो कि.ग्रा. सान्द्र मिश्रण की अतिरिक्त आवश्यकता पड़ेगी। सर्दी के मौसम में बरसीम + सरसों या जई + सरसों बोई जा सकती है। ऐसे चारे खिलाने से छः से आठ कि.ग्रा. दूध उत्पादन तक की पूर्ति सिर्फ चारा खिलाकर की जा सकती है। इस मौसम में 10 कि.ग्रा. प्रतिदिन दूध देने वाले पशु को एक कि.ग्रा. अतिरिक्त दाने का मिश्रण देना होगा।

राशन में ऊर्जा की समस्या

सान्द्र मिश्रण को ऊर्जा के लिए सन्तुलित बनाने के लिए ऐसे भोज्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ेगी जिनमें ऊर्जा अधिक मात्रा में हो। ऐसे भोज्य पदार्थों में जौ, मक्का, जई आदि आते हैं। उन्नत देशों के विपरीत उच्च ऊर्जा युक्त भोज्य पदार्थ भारत में प्रोटीन भोज्यों की अपेक्षा मंहगे हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि यह पदार्थ मानव आहार में व्यापक रूप से प्रयोग किये जाते हैं और भविष्य में भी ऐसी आशा करना व्यर्थ है कि यह पदार्थ उपलब्ध हो सकेंगे। इसलिये पशुपालकों को कृषि उद्योग के उपोत्पादों पर ही निर्भर करना होगा। कुछ ऐसे सान्द्र मिश्रणों को नीचे दिया जा रहा है। यह सान्द्र मिश्रण न मात्र सस्ते होंगे, अपितु पर्याप्त अनाज मानव आहार के लिये बचा रहेगा।

	सान्द्र मिश्रण	मात्रा (% में)
(i)	मूंगफली की खली	15
	चोकर	45
	अरहर चुनी	40
(ii)	सरसों की खली	20
	चोकर	45
	मूंग चुनी	35
(iii)	नारियल गिरी की खली	30
	मूंगफली की खली	20
	धान का चोकर	40
	बिनौले	10

	कुछ अन्य मिश्रण	
(iv)	मूंगफली की खली	35
	चोकर	20
	मक्का	15
	जई/जौ	15
	चने की चुनी	15
(v)	जौ/जई	25
	चना	25
	मूंगफली की खली	
	चोकर	20
	चना का छिलका	10
(vi)	जौ या जई	40
	चना	10
	मूंगफली की खली	30
	चोकर	20
(vii)	टेपिओका टुकड़े	20
	मूंगफली की खली	30
	चने की चुनी	25
	धान का चोकर	25
(viii)	टेपिओका	40
	चना	19
	मूंगफली की खली	37
	चोकर	13
(ix)	नारियल गरी की खली	30
	धान का चोकर	40
	बिनौला	10
	मूंगफली की खली	20
(x)	चोकर	40
	तिल खली	20
	चने की चुनी	20
	जौ	20

(xi)	तिल खली	20
	चना	40
	ज्वार	20
	धान का चोकर	10
	चने का छिलका	10
(xii)	मक्का	25
	मक्का का ग्लूटन	25
	मक्का का छिलका	25
	मक्का का चोकर	25
(xiii)	सरसों की खली	25
	चोकर	75
(xiv)	मक्का	30
	मूंगफली की खली	14
	चने की चुनी	12
	चोकर	20
	धान का चोकर	10
	यूरिया	1
	शीरा	10
	खनिज मिश्रण	2
	नमक	1
(xv)	जौ	40
	मूंगफली की खली	17
	चोकर	30
	यूरिया	1
	शीरा	10
	खनिज मिश्रण	1
	नमक	1

जिन सान्द्र मिश्रणों में खनिज मिश्रण पहले से नहीं मिलाया गया हो उनमें प्रति गाय या भैंस 40–45 ग्राम नमक और 25–30 ग्राम खनिज मिश्रण प्रतिदिन आवश्यक होगा।

राशन का परिकलन

विभिन्न मौसम में भिन्न–भिन्न प्रकार के चारे उपलब्ध होते हैं। उन्हीं के आधार पर राशन का परिकलन नीचे दिये गये उदाहरणों में दिया गया है।

उदाहरण-1

खरीफ के मौसम में

एक 400 कि.ग्रा. शरीर भार की भैंस जो 8 लीटर दूध देती है और दूध में वसा की मिकदार (मात्रा) 6.0 प्रतिशत है।

राशन	आवश्यकता			उपलब्ध पोषक तत्व		
	पा.क.प्रो. (कि.ग्रा.)	कु.पा.त.	कि.ग्रा. भोजन	मात्रा कि.ग्रा.	पा.क.प्रो. (कि.ग्रा.)	कु.पा.त. (कि.ग्रा.)
अनुरक्षण	0.74	4.88	मक्का/बाजरा/ 90 हरा चारा (20% शुष्क पदार्थ)	60	0.70	10.14
दुग्ध उत्पादन	0.60	3.44	सान्द्र मिश्रण• (90% शुष्क पदार्थ)	2.0	0.34	1.40
कुल	1.34	8.32			1.04	11.54

• पा.क.पो. 17, कु.पा.त. 70

उदाहरण-2

खरीफ के मौसम में

एक 400 कि.ग्रा. शरीर भार की भैंस जो 8 लीटर दूध देती है और दूध में वसा की मिकदार (मात्रा) 6.0 प्रतिशत है।

राशन	आवश्यकता			उपलब्ध पोषक तत्व		
	पा.क.प्रो. (कि.ग्रा.)	कु.पा.त.	कि.ग्रा. भोजन	मात्रा कि.ग्रा.	पा.क.प्रो. (कि.ग्रा.)	कु.पा.त. (कि.ग्रा.)
अनुरक्षण	0.43	6.72	जई का चारा (15 कि.ग्रा.)	0.15	2.40	2.40
दुग्ध उत्पादन	0.60	3.44	बरसीम 30 किलो	0.75	3.60	
			सान्द्र मिश्रण• 1.5 कि.ग्रा.	0.24	1.05	
			गेहूं का भूसा 4.5 कि.ग्रा.	0.00	1.98	
कुल	1.30	9.16	1.14	9.03		

• पा.क.प्रो. 16 प्रतिशत, कु.पा.त. 70 प्रतिशत

ऊपर दिये गये उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अच्छे चारे के मिश्रण या द्विदलीय चारे के समावेश से राशन में दाने की कमी की जा सकती है। अधिक दुग्ध उत्पादन पर हम पूर्ण रूप से चारा खिलाकर दूध उत्पादन नहीं ले सकते। साथ ही पौष्टिक चारे खिलाकर भी दाने की बचत संभव है।

एक बात और जो ध्यान की है, वह है अधिक दूध देने वाली भैंसों के राशन में चारे की अधिक मात्रा दी जाती है तो लायसीन नामक अमीनो अम्ल की मात्रा कम उपलब्ध होने की संभावना रहती है। हालांकि इसकी कमी का काफी हद तक रूमेन में विद्यमान जीवाणु संश्लेषण करके पूरी करते हैं परन्तु फिर भी अधिक दूध देने वाली गाय को सान्द्र मिश्रण से इसकी पूर्ति करना आवश्यक होता है (बिगवुड, 1963)।

अपने फार्म पर उगाये चारे का महत्व

जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि दुधारू पशुओं के खिलाई–पिलाई में चारे का विशेष महत्व है और दुग्ध उत्पादन से आर्थिक लाभ उठाने के लिए भी चारे को बाजार से खरीद कर खिलाने की सुझाव नहीं दिया जा सकता है। दूसरी तरफ दाने में प्रयोग आने वाले भोज्य पदार्थों की कीमत भी लगातार आसमान को छूती जा रही है। इन सभी तथ्यों को

ध्यान में रखकर भोजन में दाने को कम करके अच्छे चारे के समावेश की सिफारिश की जाती है। ऊपर जो राशन परिकलित करने के उदाहरण दिये गये हैं उनसे भी यह स्पष्ट होता है कि राशन में द्विदलीय चारे प्रयोग करने से राशन को संतुलित करने के लिए जो पूरक प्रोटीन की आवश्यकता होती है, उसमें काफी कमी आ जाती है। इस प्रकार यह द्विदलीय चारे पशुओं की खिलाई–पिलाई में किफायत लाते हैं और क्योंकि भूमि में नाइट्रोजन भी जमा करते हैं तो भूमि की उर्वरा शक्ति को भी बढ़ाते हैं और यह चारा कैल्शियम तथा विटामिन की प्रचुर मात्रा भी पशु को देने में समर्थ हैं।

यह भी देखा जा सकता है कि जिन राशनों में बरसीम या लूसर्न जैसे चारों का समावेश किया गया है, वहां दाने में समुचित कमी करके खिलाई–पिलाई में खर्च की कमी की जा सकती है और सभी पौष्टिक हरे चारे स्वादिष्ट होते हैं और पशु चाव से खाते हैं, तो इससे उनके दुग्ध उत्पादन की पैतृक क्षमता का पूरा–पूरा लाभ उठाने में भी सहायता मिलती है और इस प्रकार उच्चतम उत्पादकता का लाभ पशुपालक को प्राप्त हो सकता है।

यहां यह बात जो विशेष रूप से ध्यान में रखने की है, कि भैंस को उसकी आवश्यकतानुसार ही खिलाया जाये। यदि राशन में पोषक तत्वों की मात्रा आवश्यकता से अधिक होगी तो अतिरिक्त पोषक तत्व पशु के शरीर में मोटापा लायेंगे। इस प्रकार अत्यधिक खिलाई–पिलाई अनावश्यक होने के साथ अधिक खर्चीली तो होगी ही, साथ ही प्रजनन क्षमता में गड़बड़ी लाकर एक अच्छी भैंस को नष्ट भी कर देती है और यह तो कहावत भी है कि 'अति हरेक चीज की बुरी होती है' और यह बात पशुओं के खिलाई–पिलाई में भी सटीक बैठती है।

इस बात पर यहां जोर दिया जाना आवश्यक है कि यदि हम यह चाहते हैं कि भैंस हमें उच्चतम लाभ पहुंचाये तो यह भी आवश्यक है कि जन्म से लेकर सम्पूर्ण जीवनकाल तक उसकी खिलाई–पिलाई समुचित रूप से की जाए और यदि खिलाई–पिलाई पर पूर्ण रूप से ध्यान नहीं दिया जायेगा तो एक अच्छी भैंस भी नकारा साबित होकर आर्थिक रूप से बोझ बन सकती है।

सारणी-6.5 भैंसों में प्रतिदिन पोषक तत्वों की आवश्यकता

शरीर भार (कि.ग्रा.)	बढ़वार (कि.ग्रा.)	शुष्क पदार्थ अन्तर्ग्रहण % शरीर भार	ऊर्जा च.ऊ. (मै. कैलोरी)	ऊर्जा कुल पाचक तत्व (कि.ग्रा.)	कुल अ. (ग्रा.)	प्रोटीन पाचक प्रोटीन (ग्रा.)	कै. (ग्रा.)	फॉ. (ग्रा.)	विटामिन ए (1000 अ.भा.)
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
अनुरक्षण एवं बढ़वार									
100[अ]	0.50	2.8	8.95	2.47	373	254	14	11	6
150	0.75	2.6	12.86	3.55	548	378	17	15	9
200	0.50	2.6	11.65	3.22	543	341	14	13	12
	0.75	2.6	14.15	3.91	610	400	19	17	13
	1.00	2.4	16.65	4.60	682	471	23	20	13
250	0.50	2.4	12.86	3.55	604	374	15	12	12
	0.75	2.4	15.36	4.24	677	433	19	17	14
	1.00	2.2	17.86	4.93	732	493	22	19	14

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
300	0.50	2.3	14.51	4.01	663	402	17	16	13
	0.75	2.3	18.26	5.04	736	461	21	19	15
350	0.50	2.2	16.11	4.45	703	416	17	15	15
	0.75	2.2	19.11	5.28	776	475	20	18	17
400	0.50	2.1	17.67	4.88	740	428	17	16	16
	0.75	2.2	20.92	5.78	818	487	20	19	18
450	0.50	2.0	19.21	5.31	758	424	16	16	17
	0.75	2.1	22.71	6.27	836	482	18	18	18
500	0.50	1.9	20.71	5.72	786	433	16	16	18
	0.75	2.0	24.46	6.76	869	492	18	18	20
बछड़ियां									
अंतिम तीन माह गाभिन[ब]									
300	0.5	2.2	14.1	3.1	538	294	16	14	25
350	0.5	2.1	15.1	4.2	592	324	21	16	27
400	0.5	2.0	16.2	4.5	647	354	23	18	30
450	0.5	2.0	17.2	4.8	726	405	26	20	34
500	0.5	1.9	18.2	5.0	779	435	28	22	38

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
प्रौढ़ भैंसें									
अंतिम तीन माह गाभिन									
450	0.4	1.9	16.2	4.5	720	405	26	20	34
500	0.4	1.9	17.2	4.8	776	435	29	22	38
550	0.4	1.8	18.2	5.0	832	470	31	24	42
600	0.4	1.7	19.2	5.3	889	506	34	26	46
650	0.4	1.7	20.2	5.6	944	537	36	38	50
700	0.4	1.7	21.2	5.9	992	557	39	30	53
750	0.4	1.6	22.2	6.1	1064	607	42	32	57
800	0.4	1 6	23.2	6.4	1116	637	44	34	61
दूध देने वाली भैंसों के लिये									
चार किलो दुग्ध उत्पादन 7% वसा[द]									
400	0.0	2.3	18.0	5.0	908	559	30	23	21
450	0.0	2.1	19.1	5.3	950	580	31	24	23
500	0.0	2.0	20.2	5.6	988	600	33	25	35
550	0.0	1.9	21.3	5.9	1028	620	34	26	27
650	0.0	1.8	23.4	6.5	1089	659	36	28	32
700	0.0	1.7	24.4	6.7	1144	678	38	29	34

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
750	0.0	1.7	25.3	7.0	1178	696	39	30	36
800	0.0	1.6	26.4	7.3	1214	714	40	31	38
वयस्क अनुरक्षरण									
400	0.0	1.8	11.2	3.1	469	227	17	13	17
450	0.0	1.7	12.2	3.4	512	248	18	14	19
500	0.0	1.6	13.2	3.6	553	268	20	15	21
550	0.0	1.6	14.2	3.9	597	288	21	16	23
600	0.0	1.6	15.2	4.2	633	305	22	17	26
650	0.0	1.6	16.1	4.4	683	327	23	18	28
700	0.0	1.5	17.0	4.7	714	346	25	19	30
750	0.0	1.5	17.9	4.9	752	364	26	20	32
800	0.0	1.4	18.8	5.2	788	382	27	21	34
कार्यकारी भैंसें									
सामान्य कार्य (4 घं./दि.)[इफ]									
400	0.05	2.0	15.02	4.1	644	354	17	13	17
500	0.0	1.9	18.02	5.0	617	295	20	15	21
600	0.0	1.8	20.91	5.8	709	339	22	17	26

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
भारी कार्य (घं./दिन)									
400	0.05	2.2	18.86	5.2	715	389	17	13	17
500	0.0	2.2	22.83	6.3	699	325	20	15	21
600	0.0	2.1	26.67	7.4	815	373	22	17	26

[अ] कुल प्रोटीन का परिकलन पाचक प्रोटीन से किया गया।

[ब] छोटे पशु अपने शरीर भार का 1 से 1.25 प्रतिशत अधिक की बढ़वार नहीं करेंगे जब तक कि उनके भोजन में अधिक वसा की मात्रा उपलब्ध न हो। जैसे दूध या दुग्ध प्रतिस्थापक।

[स] स्तन ग्रंथि के विकास के लिये पहली बार ब्याने वाली बछड़ियों में ऊर्जा का प्रावधान किया गया है।

[द] विटामिन ए को छोड़कर पहले ब्यांत में 20 प्रतिशतत था दूसरे ब्यांत में 10 प्रतिशत की बढोतरी पोषक तत्वों में की गई है। यह बढ़वार को ध्यान में रखकर किया गया है।

[ई] 2.40 किलो कैलोरी चयापचीय ऊर्जा/घं.कार्य/किलो शरीर भार + च.ऊ. की आवश्यकता अनुरक्षण एवं बढ़वार का मान ऊर्जा की आवश्यकता के परिकलन के लिये किया गया है।

[फ] पाचक प्रोटीन की आवश्यकता में कार्यकारी भैंसों में बढ़वार एवं अनुरक्षण की आवश्यकता में सामान्य कार्य करने वालों में 10% की बढ़ोत्तरी की गई है।

नोट: दुधारू भैंसों की आवश्यकता का परिकलन करने के लिये आगे की सारणी 6.6 में दिये गये मानों का उपयोग करना चाहिये। कुल आवश्यकता के लिये अनुरक्षण एवं उत्पादन के पोषण मानों का कुल जोड़ लेना होगा।

सारणी-6.6 दूध देने वाली भैंसों की विभिन्न वसा स्तर पर पोषक तत्वों की आवश्यकता (पोषक तत्व/किलो दूध)

वसा %	ऊर्जा च.ऊ. (मै. कैलोरी)	कु.पा.त. (कि.ग्रा.)	प्रोटीन कुल (ग्रा.)	प्रोटीन पाचक (ग्रा.)	कैलशियम (ग्रा.)	फॉस्फोरस (ग्रा.)
4.0	1.23	0.34	87	61	2.7	2.0
5.0	1.40	0.38	98	69	2.9	2.2
6.0	1.57	0.43	108	76	3.1	2.4
7.0	1.74	0.48	118	83	3.3	2.6
8.0	1.91	0.53	128	90	3.5	2.8
9.0	2.08	0.57	138	97	3.7	3.0
10.0	2.25	0.62	149	104	3.9	3.2
11.0	2.42	0.67	159	111	4.1	3.4

सारणी-6.7 कुछ हरे चारों का रासायनिक विश्लेषण शुष्क आधार पर (प्रतिशत में)

नाम	कच्ची प्रोटीन	दुष्पचनीय तन्तु	नाइट्रोजन रहित निष्कर्ष	ईथर निष्कर्ष	माह
बाजरा	12.56	28.45	45.72	1.97	जुलाई–अगस्त
बरसीम	23.10	30.87	46.94	2.78	नवम्बर–फरवरी
लोबिया	19.03	17.55	43.19	2.78	जुलाई–अगस्त
ग्वार	18.13	31.91	37.65	1.87	जुलाई–अगस्त
ज्वार	5.21	38.87	45.59	1.37	जून–अगस्त
लूसर्न	26.60	43.66	46.33	2.63	दिसम्बर–अप्रैल
मक्का	7.62	25.73	56 20	1.47	जुलाई–सितम्बर
जई	6.44	28.72	53.20	2.31	दिसम्बर–मार्च
गजराज घास	10.15	30.50	41.00	2.11	मई–अगस्त
गेहूं का भूसा	3.20	36.90	45.60	1.30	अप्रैल के बाद
मकचरी	4.47	32.20	51.33	1.20	जुलाई–अगस्त (उत्तर भारत पूरे साल दक्षिण भारत)

सारणी-6.8 विभिन्न भोज्य पदार्थों का कच्ची प्रोटीन, पाचक कच्ची प्रोटीन और ऊर्जा (कुल पाचक तत्व और चयापचयी ऊर्जा) कच्चे पदार्थ के आधार पर (कि.ग्रा./100 कि.ग्रा. पर)

भोज्य	कच्ची प्रोटीन	पाचक कच्ची प्रोटीन	कुल पाचक तत्व	चयापचयी ऊर्जा मैगाकैलोरी प्रतिकिलो
हरे चारे				
बरसीम	4.12	2.51	11.9	0.43
लोबिया	5.62	3.52	10.5	0.38
ग्वार	3.39	1.33	9.8	0.35
लूसर्न	5.07	3.00	12.0	0.43
बाजरा	1.53	1.00	14.8	0.53
ज्वार	1.53	0.53	16.2	0.58
मक्का	2.47	1.17	16.9	0.61
जई	2.04	1.10	16.7	0.61
हाथी घास	1.50	0.91	13.1	0.46
गिनी घास	1.50	0.78	13.1	0.46
पैरा घास	2.52	1.51	11.4	0.41
सूखे चारे				
ज्वार कड़बी	3.30	1.05	50.8	1.84
धान का पुआल	2.18	0.00	44.6	1.62
गेहूं का भूसा	2.50	0.00	44.1	1.59
'हे'				
बरसीम 'हे'	15.4	9.26	59.2	2.14
लोबिया 'हे'	15.8	9.30	45.3	1.64
लूसर्न 'हे'	16.37	10.73	50.4	1.82
जई 'हे'	5.8	2.36	54.1	1.95

साइलेज				
ज्वार साइलेज	2.2	0.71	15.3	0.55
मक्का का साइलेज	2.8	1.02	18.4	0.66
जई का साइलेज	2.8	1.22	18.7	0.67
दाने का बीज				
बाजरा	11.7	4.52	45.5	1.65
जौ	12.3	6.65	77.7	2.80
चना	20.0	12.90	73.8	2.66
मक्का	11.1	7.40	84.9	3.07
खली				
बिनौले की खली	27.5	17.48	71.6	2.59
मूंगफली की खली	47.0	41.75	71.0	2.57
अलसी की खली	37.5	30.57	64.6	2.34
तोरिया खली	33.8	25.88	71.1	2.57
सरसों की खली	35.0	27.83	74.2	2.68
उपोत्पाद				
चने की छिलका	4.9	0.00	52.2	1.99
ग्वार का चूरा	42.9	38.27	95.1	2.71
मक्का का छिलका	–	4.09	67.2	2.43
चावल की भूसी	10.4	6.08	58.9	2.13
गेहूं की भूसी	14.6	10.62	67.5	2.44

• सेन, के.सी., एस.एन. रे, एवं एस.के. रंजन, 'न्यूट्रिटिव वेल्यूज ऑफ इंडिरून केटल फीड्स एंड द फीडिंग ऑफ एनीमल्स', 1976, 7 एडीशन, आई.सी.ए.आर., नई दिल्ली

सारणी-6.9 साइलेज या हेलेज – 'हे तुल्य'

	साइलेज का 'हे' से अनुपात
(i) 'हे' 90 प्रतिशत शुष्क पदार्थ, 100 कि.ग्रा. में 90 कि.ग्रा. (शुष्क पदार्थ)	1:1
(ii) 'हेलेज' 45 प्रतिशत शुष्क पदार्थ 200 कि.ग्रा. में 90 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ	2:1
(iii) मक्का के साइलेज में 30 प्रतिशत शुष्क पदार्थ 300 कि.ग्रा. में 90 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ	3:1
(iv) सीधा काटा गया साइलेज 20 प्रतिशत शुष्क पदार्थ 400 कि.ग्रा. में 90 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ	4:1

सारणी-6.10 विभिन्न प्रकार के चारे के इस्तेमाल के समय सान्द्र मिश्रण में कच्ची प्रोटीन की मात्रा का निर्धारण

चारे के प्रकार	अति उत्तम	चारे की किस्म औसत	निम्न
द्विदलीय चारे (बरसीम, लूसर्न)	10	11	12
मिश्रित (द्विदलीय + घास)	13	14	15
घास (मक्का, ज्वार, साधारण घास)	16	17	18
मक्का का साइलेज	19	–	–
यूरिया मिश्रित मक्का का चारा	14	–	–

प्रमुख कृषि एवं उद्योगिकी उपोत्पादों का भैंसों के आहार में उपयोग

देश में पशु आहार में प्रयोग किये जाने वाले परंपरागत खाद्य पदार्थों की भारी कमी है। इसके साथ ही कभी–कभी दैवी प्रकोपों उदाहरणार्थ, सूखा, बाढ़ आदि के कारण खाद्य पदार्थों की उपलब्धता में और कमी आ जाती है। हमारे देश में आगामी वर्षों में भी मिश्रित खेती अपनाये जाने की संभावना है।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि इन वर्षों में फसल उत्पादों के उपोत्पाद बड़ी मात्रा में पशुओं को प्राप्त होते रहेंगे। इन परिस्थितियों में वैज्ञानिक भी इन खाद्य पदार्थों को पशु आहार में उपयोग करने के भरसक प्रयास करते रहेंगे।

सारणी-6.11 वर्ष 2000 में भैंसों को आवश्यक खाद्य पदार्थ (कि.ग्रा., दस लाख)

पशु वर्ग	पशुओं की अनुमानित संख्या (दस लाख)	प्रतिदिन खाद्य पदार्थों की आवश्यकता दाना मिश्रा	हरा चारा	सूखा चारा
नर (कार्यशील एवं प्रजनन)	6.98	0.20	5.00	5.00
मादा दुधारू एवं सूखे पशु (देसी)	12.99	0.50	5.00	5.00
उन्नत	17.60	1.50	10.00	6.00
वृद्धि करने वाले	19.07	0.10	5.00	2.00

मुदगल (1988)

वर्ष 2000 तक भैंसों के लिए आवश्यक खाद्य पदार्थों और उपलब्धता में अंतर का अध्ययन करने के लिए सारणी 6.12 का अवलोकन किया जा सकता है।

सारणी-6.12 वर्ष 2000 तक पशु खाद्य–पदार्थों की उपलब्धता एवं आवश्यकता में अंतर (दस लाख टन)

विवरण	आवश्यकता	उपलब्धता	कमी
पादप स्रोतों से दाना मिश्रण	82.8	77.05	5.75
हरे चारे	594.8	575.00	19.80
सूखे चारे	373.0	356.8	16.20

मुदगल (1988)

पशु खाद्य पदार्थों की इस संभावित कमी का अनुमान कई वर्षों पूर्व लगा लिया गया था और इसकी भरपाई हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने 1961 में एक 'अखिल भारतीय कृषि उत्पाद एवं अन्या उद्योगिकी उपोत्पाद पदार्थों से सस्ते आहारों का विकास समन्वय परियोजना' की स्थापना की गई थी। इस योजना का अध्यक्ष डॉ. एन.डी. केहर को नियुक्त किया गया था। इस योजना के अन्तर्गत देश के 10 केन्द्रों पर अनुसंधान कार्य चल रहा है। इसके अतिरिक्त भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, कृषि विश्वविद्यालयों और राज्य के पशु पालन विभागों आदि में अनुसंधान कार्य चल रहे हैं।

विभिन्न प्रकार के भूसों की पाचनशीलता एवं नाइट्रोजन प्रतिशत निम्नलिखित सारणी–6.13 में प्रदर्शित हैं।

सारणी-6.13: प्रमुख भूसों के पाचन गुणांक एवं नाइट्रोजन धारिता

भूसे	कार्बनिक पदार्थों के पाचन गुणांक (इन–विट्रो)	नाइट्रोजन प्रतिशत (शुष्क पदार्थ के आधार पर)
गेहूँ का भूसा	28–58	0.4–1.0
जई	34–68	0.4–1.0
धान का पुआल	40–52	0.5–1.0
जौ का भूसा	34–61	0.4–1.0

सभी प्रकार के भूसों में किण्वन होने वाली नाइट्रोजन एवं बाई पास प्रोटीन की मात्रा कम होती है। उनका पाचन गुणांक निम्न होता है तथा प्रोपिओनेट किण्वन कम होता है। पुआल में सिलिका एवं ऑक्जेलेट की अधिकता होने से उसका पोषक मूल्य कुप्रभावित होता है। भूसे एवं पशुओं के आहार में प्रयोग किये जाने वाले प्रमुख चारों एवं अप्रचलित खलियों का वर्णन निम्न प्रकार कर सकते हैं।

गेहूँ का भूसा

भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान में चतुर्वेदी, आदि (1973) ने भूसे का पोषक मूल्य बढ़ाने के लिए इसे पानी में भिगो कर पशुओं को खिलाया। इस उपचार से अपरिष्कृत रेशे की पाचनशीलता में तो गिरावट आई परन्तु शुष्क पदार्थ के अन्तर्ग्रहण एवं नाइट्रोजन रहित तत्व की पाचनशीलता में वृद्धि पाई गई। वाष्पशील वसा अम्लों एवं ऊर्जा की उपलब्धता में भी बढ़ोतरी प्राप्त की गई।

इन्हीं वैज्ञानिकों ने भूसे की कुट्टी काटकर पीस कर और साथ में दाना मिश्रण, खनिज तथा विटामिनों का समावेश करके भैंस के कटड़ों को खिलाया। इन उपचारों का शुष्क पदार्थ के अन्तर्ग्रहण एवं पोषकों की पाचनशीलता पर (मात्रा अपरिष्कृत रेशे को छोड़कर) कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पाया गया। वाष्पशील वसा अम्लों का उत्पादन भी इन उपचारों से अप्रभावित रहा।

अनेक विद्धानों (सांगवान, आदि 1987, भाटिया, आदि 1979 एवं पारथसार्थी, 1990) ने भैंसों में भूसे की उपयोगिता को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के आहारों का परीक्षण किया (सारणी–6.14)।

सारणी-6.14: भैंसों में भूसा आधारित आहारों के द्वारा, शुष्क पदार्थ अर्न्तग्राहयता (कि.ग्रा./100 कि.ग्रा. भार) एवं पोषकों की पाचनशीलता (प्रतिशत)

आहार	विवरण	निष्पादन
1. गेहूं का भूसा + दाना मिश्रण (अपरिष्कृत प्रोटीन 14%)	शुष्क पदार्थ अर्न्तग्राहयता	197
	शुष्क पदार्थ पाचनशीलता	56.9
	अपरिष्कृत प्रोटीन पाचनशीलता	62.4
	अपरिष्कृत रेशा पाचनशीलता	71.7
	ईथर सत्व पाचनशीलता	66.2
2. गेहूं का भूसा + दाना मिश्रण (अपरिष्कृत प्रोटीन 17%)	शुष्क पदार्थ अर्न्तग्राहयता	2.12
	शुष्क पदार्थ पाचनशीलता	54.3
	अपरिष्कृत प्रोटीन पाचनशीलता	65.0
	ईथर सत्व पाचनशीलता	73.6

3. गेहूं का भूसा + लूसर्न 'हे' + दाना मिश्रण (अपरिष्कृत प्रोटीन 18%)	शुष्क पदार्थ अर्न्तग्राहयता	2.21
	शुष्क पदार्थ पाचनशीलता	62.0
	अपरिष्कृत प्रोटीन पाचनशीलता	55.0
	अपरिष्कृत रेशा पाचनशीलता	56.3
	ईथर सत्व पाचनशीलता	49.9
4. गेहूं का भूसा + गवार चूर्ण (अपरिष्कृत प्रोटीन 16%)	शुष्क पदार्थ अनर्तग्राहयता	1.57
	शुष्क पदार्थ पाचनशीलता	54.5
	अपरिष्कृत प्रोटीन पाचनशीलता	70.9
	अपरिष्कृत रेशा पाचनशीलता	56.8
	ईथर सत्व पाचनशीलता	71.8
5. गेहूं का भूसा + दाना मिश्रण (अपरिष्कृत प्रोटीन 16%)	शुष्क पदार्थ अर्न्तग्राहयता	2.48
	शुष्क पदार्थ पाचनशीलता	58.5
	अपरिष्कृत प्रोटीन पाचनशीलता	59.3
	अपरिष्कृत रेशा पाचनशीलता	61.2
	ईथर सत्व पाचनशीलता	79.4

राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में (राय एवं मुदगल, 1989) ने यूरिया के द्वारा भूसा को उपचारित करके और दाना मिश्रण का भी आहार में समावेश करके भैंसों पर अनेक परीक्षण किये। इन आहारों को वृद्धि करने वाले कटड़े/कटड़ियों को तथा दूध देने वाली भैंसों को कम लागत मूल्य पर प्रदान किया गया (सारणी–6.15)।

सारणी के आंकड़ों से स्पष्ट है कि संतोषप्रद वृद्धि के लिए भी पर्याप्त दाना मिश्रण को यूरिया द्वारा भूसे को उपचारित करके बचाया जा सकता है।

इन्हीं वैज्ञानिकों ने दुधारू भैंसों को यूरिया उपचारित भूसे को हरे चारे एवं दाना मिश्रण के साथ खिला कर सारणी 6.16 के अनुसार परिणाम प्राप्त किये।

दहिया एवं सहकर्मी (1990) ने आभास किया कि अग्रिम वर्षों में हमारे पशु धन को आहार में मात्र चारे की प्राप्त हो सकेंगे और अन्न का एक दाना भी पशु आहार के लिए उपयोग न हो सकेगा। इन परिस्थितियों से निपटने

सारणी-6.15 मुर्रा शावकों की शुष्क पदार्थ अर्न्तग्राहयता, पोषकों की पाचनशीलता एवं वृद्धि दर पर यूरिया उपचारित भूसा आहार का प्रभाव

विवरण	नियंत्रित वर्ग–1	वर्ग–2 (पा.प्रो. 12.5% अधिक)	वर्ग–2 (प.प्रो. 12.5% कम)
पशुओं की संख्या	5.0	5.0	5.0
पशुओं का शारीरिक भार	194.2	200.1	193.3
शुष्क पदार्थ की ग्राह्यता			
(i) दाना मिश्रण द्वारा (कि.ग्रा.)	1.42	2.08	0.89
(ii) भूसा द्वारा (कि.ग्रा.)	3.67	3.54	3.82
कुल शुष्क. पदार्थ अर्न्त–ग्राह्यता (कि.ग्रा.)	5.09	5.62	4.71
शुष्क पदार्थ अन्तर्ग्राह्यता (कि.ग्रा.)	2.66	2.83	2.46
शुष्क पदार्थ की पाचन शीलता	60.94	63.43	60.30
वृद्धि दर (ग्रा./दिन)	340	356	333

के लिए, उन्होंने प्रयास किये कि गेहूं के भूसे जैसे चारों को यूरिया, तरल तथा गैस अमोनिया से उपचारित कर उनकी प्रोटीन पौष्टिकता को बढ़ाने के साथ ही उनसे ऊर्जा की उपलब्धता में भी वृद्धि की जाए। भूसे को 4.0 प्रतिशत यूरिया और 40.0 प्रतिशत पानी से उपचारित करने के पश्चात पोलीथीन के अंदर दबा कर लगभग एक माह के लिए रखा गया। इसी प्रकार यूरिया के समान नाइट्रोजन के आधार पर अमोनिया तरल तथा गैस से भी भूसे को उपचारित किया गया। दूध देने वाली भैंसों को चार वर्गों में विभाजित कर निम्न प्रकार से आहार खिलाया गया।

सारणी-6.16 उपचारित गेहूं भूसा आधारित चारों के पोषकों की उपयोगिता एवं दूध उत्पादन

विवरण	परीक्षण आहार		
	भूसा+हरा+दाना	यू.उ.भ.+दाना	भू.उ.भू.+दाना+हरा
शरीर भार (कि.ग्रा.)	444.20	448.80	448.80
शुष्क पदार्थ ग्राह्यता (कि.ग्रा.)			
(i) दाना मिश्रण	2.05	2.02	1.92
(ii) चारा	9.07	7.29	9.23
कुल शुष्क पदार्थ ग्राह्यता (कि.ग्रा.)	11.12	9.31	11.15
शुष्क पदार्थ (कि.ग्रा.)/100 कि.ग्रा. शारीरिक भार	2.51	2.08	2.49
पानी की अन्तर्ग्राह्यता (लि./दि.)	39.05	44.55	46.05
पाचनशीलता (प्रतिशत)			
(i) शुष्क पदार्थ	63.19	59.47	61.68
(ii) अपरिष्कृत प्रोटीन	65.92	64.61	66.88
(iii) कार्बनिक पदार्थ	65.96	61.89	64.74
दूध उत्पादन (लि./दिन)	5.58	4.86	5.37
दूध का संघटन (%)			
(i) कुल ठोस	17.05	16.73	16.24
(ii) वसा	7.41	7.82	7.57
(iii) प्रोटीन	3.42	3.68	3.71

वर्ग– : अनुपचारित गेहूं का भूसा (भरपेट) + 10 कि.ग्रा. हरा चारा + कर्ल (1982) की संस्तुति के अनुसार पोषक प्रदान करने के लिए दाना मिश्रण

वर्ग–2 : यूरेया उपचारित गेहूं का भूसा (भरपेट) + 1. कि.ग्रा. हरा चारा +उपर्युक्त संस्तुति के आधार पर 75% दाना मिश्रण

वर्ग–3 : वर्ग–2 की भांति परन्तु भूसे को तरल अमोनिया गैस से उपचारित किया गया था।

वर्ग–4: वर्ग–2 की भांति परन्तु भूसे को अमोनिया गैस से उपचारित किया गया था।

सारणी-6.17 विभिन्न प्रकार के चारों पर भैंसों की आहार उपयोगिता एवं दूध उत्पादन क्षमता

विशिष्टतायें	वर्ग–1	वर्ग–2	वर्ग–3	वर्ग–4
शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	523.75	506.25	525.00	505.00
शुष्क पदार्थ अर्न्तग्राहयता (कि.ग्रा./100 कि.ग्रा. शरीर भार)	2.60	3.12	3.16	2.84
पोषकों की पाचनशीलता (%)				
(i) शुष्क पदार्थ	52.43	57.71	60.08	54.51
(ii) कार्बनिक पदार्थ	57.45	64.51	65.41	60.43
(iii) अपरिष्कृत प्रोटीन	65.66	63.17	64.30	62.17
(iv) अपरिष्कृत रेशा	59.07	69.19	71.09	65.82
(iv) नाइट्रोजन रहित सत्व	56.48	59.61	60.89	57.40
दूध उत्पादन (लि./दिन)				
(i) दूध उत्पादन	7.52	8.18	7.63	7.39
(ii) 4% वसा संशोधित	10.82	12.05	11.28	11.10
दूध का रासायनिक संघटन				
(i) कुल ठोस (%)	16.28	16.66	16.56	12.74
(ii) वसा (%)	6.97	7.26	7.16	7.35
(iii) प्रोटीन (%)	4.28	4.39	4.32	4.31
(iv) लैक्टोज (%)	4.60	4.69	4.68	4.61

सारणी 6.17 के आंकड़ों से स्पष्ट है कि यूरिया एवं अन्य उपचारों से दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता में महत्वपूर्ण अंतर नहीं आया। इससे यह भी ज्ञात किया जा सका कि यूरिया उपचारित गेहूं का भूसा खिलाने से 25 प्रतिशत दाने की बचत की जा सकती है। सभी उपचारों में यूरिया उपचार को सर्वोत्कृष्ट माना गया।

दहिया, आदि (1991) ने मध्य ब्यांत की भैंसों पर गेहूं के भूसे को 4.0 प्रतिशत यूरिया एवं 50 प्रतिशत पानी से उपचारित कर साइलेज खिला कर परीक्षण किये और इनका दूध उत्पादन तथा दूध के रासायनिक संघटन पर प्रभावों का अवलोकन किया। विभिन्न परीक्षण वर्ग निम्न प्रकार थे।

वर्ग–1 : इस नियंत्रित वर्ग में गेहूं का उपचारित भूसा (भरपेट) और उसके साथ खनिज तथा लवण मिला 2.5 कि.ग्रा. दाना मिश्रण और 20.0 कि.ग्रा. हरा चारा

वर्ग–2 : इस वर्ग में वर्ग–1 के दाने को 1.5 कि.ग्रा. बिनौला की खल से प्रतिस्थापित कर दिया गया।

वर्ग–3 : वर्ग–1 में दिये गये दाना मिश्रण के स्थान पर वर्ग–2 की अपेक्षा दो गुना (3.0 कि.ग्रा.) बिनौला खल प्रदान की गई।

सभी भैंसों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करने के पूर्व, वर्ग–1 के आहार पर लगभग 4 सप्ताहों तक रखा गया था और इसके पश्चात् 6 सप्ताहों तक आहार खिलाने के पश्चात् उपचार के प्रभाव का दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता पर परीक्षण किया गया। इसे सारणी 6.18 के अनुसार परिणाम प्राप्त किये गये।

धान का भूसा (पुआल)

श्रीलंका में जयसूरिया (1982) ने धान के पुआल को 4.0 प्रतिशत यूरिया से उपचारित करके 4 सप्ताह में साइलेज तैयार की और वृद्धि करने वाले स्वाम्प भैंस के बच्चों को खिलाया। परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि यूरिया उपचार से कार्बनिक पदार्थ की पाचनशीलता 30% एवं शुष्क पदार्थ की अन्तर्ग्राहयता 40% बढ़ गई। अगले वर्ष (1983) 4.0 प्रतिशत यूरिया घोल से उपचार करके 4.0 सप्ताह में धान के पुआल की साइलेज बनाकर औसतन 95 कि.ग्रा. शरीर भार वाले भैंस के बच्चों को खिलाया। इसकी तुलना अनुपचारित पुआल से की गई और इस बार भी प्रथम वर्ष के समान ही परिणाम प्राप्त हुए। इस प्रकार के अनेक परीक्षणों से निष्कर्ष निकाले गये कि यूरिया (अमोनिया) उपचारित पुआल के कार्बनिक पदार्थ की पाचनशीलता, यद्यपि सोडा उपचारित पुआल के समान थी परन्तु यूरिया स्प्रे किये गये पुआल से अधिक थी। इन अनेक परीक्षणों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि पुआल के पोषक

सारणी-6.18 विभिन्न भूसा आधारित आहारों का भैंसों में पोषकों की पाचनशीलता, दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता पर प्रभाव

विशिष्टतायें	वर्ग–1	वर्ग–2	वर्ग–3
शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	480.55	470.44	476.33
शुष्क पदार्थ अर्न्तग्राहयता (कि.ग्रा./100 कि.ग्रा. भार)	2.62	2.52	2.71
पोषकों की पाचनशीलता (%)			
(i) शुष्क पदार्थ	57.66	57.25	58.50
(ii) कार्बनिक पदार्थ	60.15	59.97	61.29
(iii) अपरिष्कृत प्रोटीन	58.87	58.80	57.26
(iv) अपरिष्कृत रेशा	61.89	60.20	60.87
(v) ईथर सत्व	64.17	64.00	64.81
(vi) कुल कार्बोहाइड्रेट	58.34	58.63	54.58
दूध उत्पादन (लि./दिन)			
(i) दूध उत्पादन	5.68	5.16	5.76
(ii) 4.0% वसा संशोधित	8.32	8.30	8.49
दूध का रासायनिक संघटन			
(i) वसा (%)	7.13	8.38	7.21
(ii) प्रोटीन (%)	4.24	3.92	4.47
(iii) कुल ठोस (%)	16.81	18.40	17.09

मूल्य को बढ़ाने हेतु लघु कृष्कों के लिये यूरिया उपचार अधिक व्यवहारिक एवं सस्ता है।

आस्ट्रेलिया में धान के पुआल की कुट्टी बनाकर तथा पानी में भिगो कर कारबओस को खिलाया गया। इन परीक्षणों में पाया गया कि कुट्टी से शुष्क पदार्थ अर्न्तग्राहयता 1.51 कि.ग्रा. प्रति 100 कि.ग्रा. पशु शरीर भार से 1.62 कि.ग्रा. बढ़ गई परन्तु पानी में भिगोकर खिलाने का शुष्क पदार्थ की अर्न्तग्राहयता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

श्रीलंका में धान के पुआल को अमोनिया द्वारा उपचारित करने से ज्ञात हुआ कि भैंसों के दूध में 2.4 लिटर से 3.2 लिटर प्रति पशु प्रतिदिन वृद्धि हो गई। परीक्षण के समय पशुओं के शरीर भार भी –17 ग्राम प्रतिदिन प्रति पशु से बढ़कर 93 ग्राम प्रति पशु प्रतिदिन हो गया। इन परीक्षणों में पुआल के मात्र 1.0 कि.ग्रा. दाना मिश्रण भी प्रति पशु प्रतिदिन की दर से प्रदान किया गया था।

एक अन्य परीक्षण में अमोनिया उपचारित धान के पुआल के साथ, गोले की खल भी पशुओं को खिलाई गई। इससे दूध उत्पादन 2.6 से 3.2 कि.ग्रा. /दिन प्रति पशु बढ़ गया और वसा में 9.1 से 9.8 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई। पशुओं का शारीरिक भार भी औसत रूप से 0.1 से 0.2 कि.ग्रा. प्रतिदिन बढ़ गया।

श्रीलंका में किये गये अनेक परीक्षणों (परडोक, 1982 एवं 1984) का स्वाम्प भैंसों के दूध उत्पादन पर प्रभाव देखा जा सकता है।

सारणी-6.19 पुआल के यूरिया उपचार का दूध उत्पादन पर प्रभाव

उपचार	भंडारण समय (दिन)	खाद्य पदार्थ	मिश्रित खाद्य पदार्थ	पशु	दूध उत्पादन (लि./दिन)
4% यूरिया	28	पुआल	दाना मिश्रण + खनिज	भैंस	2.17
4% यूरिया	28	पुआल	उपर्युक्त	भैंस	2.56
4% यूरिया	11–29	पुआल	दाना मिश्रण + खनिज + हरा चारा	भैंस	3.18

इसी प्रकार श्रीलंका में धान के पुआल को सोडा से भी उपचारित किया गया और इंडोनेशिया में भी सुबबुल को पुआल के साथ मिलाकर उसका पोषकता को बढ़ाने के प्रयास किये गये।

मुदगल एवं साथियों (1981) ने राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में पुआल को यूरिया से उपचारित करके, शीरा मिलाकर भैंसों को खिलाया और ज्ञात किया कि शुष्क पदार्थ के अन्तर्ग्रहण, पोषकों की

पाचनशीलता और नाइट्रोजन के संतुलन में वृद्धि हुई। इन परीक्षणों से स्पष्ट हुआ कि यूरिया एवं शीरा से उपचार करके पुआल को जीवन निर्वाह आहार के रूप में उपयोग किया जा सकता है। थाइलैंड में वानपत (1983) ने पुआल के साथ जलकुंभी मिलाकर परीक्षण किये और पाया कि छोटे फार्मों के लिए यह एक अच्छा चारा सिद्ध हुआ। जलकुंभी मिलाने से अनेक पोषकों की पाचनशीलता में वृद्धि देखी गई थी। गोपाल कृष्ण, आदि (1982) ने पुआल के साथ आलू के तने (हाम) एवं शीरा मिला कर साइलेज तैयार की और पाया कि 18 कि.ग्रा. साइलेज खिलाने से जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक प्रोटीन एवं ऊर्जा की पूर्ति की जा सकती है। गेहूँ के भूसे की भांति ही अधिक धान उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में पुआल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है और हरा चारा प्राप्त न होने पर अथवा कम होने पर इसे पशुओं के खिलाने के काम में लाया जाता है। यदि पौधों की पत्तियां उपलब्ध हों उदाहरणार्थ – सुबबुल, तो उसे भी पुआल के साथ काट कर खिलाया जा सकता है।

सारणी-6.20 वृद्धि करने वाले भैंस के शावकों में सुबबुल एवं दाना मिश्रण के साथ पुआल खिलाने का प्रभाव (देवेन्द्रा, 1988)

आहार के अवयव	नियंत्रित	40% सुबबुल चूर्ण	50% सुबबुल चूर्ण	60% सुबबुल चूर्ण
कसावा के टुकड़े	47	45	43.5	34
सोयाबीन खल	18	5	–	–
पत्तियों का चूर्ण	00	40	50	60
चावल का चोकर	20	–	–	–
मक्का का चूर्ण	15	9	5	5
यूरिया	0	1	1.5	1
निष्पादन				
भैंसों की संख्या	5	5	5	5
शारीरिक भार	317.3	316.9	342.6	326.5
भार वृद्धि (कि.ग्रा./दिन/पशु)	0.620	0.480	0.390	0.480

सारणी 6.20 में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट है कि सुवबूल की उच्चतम मात्रा को भी सहन किया गया। इसी प्रकार अन्य परीक्षणों में यूरिया उपचारित पुआल एवं सुवबूल खिलाने पर अधिकतम वृद्धि दर 444 ग्राम प्रति दिन प्राप्त की गई है।

मक्का का भुट्टा

सामान्यतः मक्का के भुट्टों के दाने पृथक करने के पश्चात उन्हें व्यर्थ मान कर फेंक दिया जाता है अथवा जलाने के काम लाया जाता है। राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में इन भुट्टों को बारीक पीस कर दाना मिश्रण तैयार किये गये। इन मिश्रणों को वृद्धि करने वाले तथा दूध देने वाले पशुओं में प्रयोग किया गया और ज्ञात किया गया कि प्रचलित दाना मिश्रण (चना 10%, चोकर 25%, मूंगफली की खल 35%, जौ 27%, नमक 2% खनिज मिश्रण 1%) के समान ही इन मिश्रणों का भी प्रभाव पड़ा (सारणी–6.21)।

सारणी-6.21 मक्का भुट्टों से तैयार किये गये दाना मिश्रण (प्रतिशत)

आहार अवयव	दाना मिश्रण (क)	दाना मिश्रण (ख)
कुल मक्का के भुट्टे	22	10
चोकर	30	25
तेल रहित मूंगफली की खल	35	37
चना	10	10
तेल रहित चावल का चोकर	–	15
नमक	2	2
खनिज मिश्रण	1	1

रे एवं मुदगल (1968)

नीम की खली

नीम के बीज में 48.9 प्रतिशत तक तेल होता है और शेष पदार्थ खल कहलाता है। इस खली को सामान्यतः भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिए प्रयोग किया जाता है क्योंकि इसमें 5.0 प्रतिशत नाइट्रोजन एवं 0.74

प्रतिशत गंधक होती है। नीम की खली में निम्बिन एवं व्युत्पन्न पदार्थ पाये जाते हैं, जो मुख्य रूप से कड़वे होते हैं। इन पदार्थों से इस खली के स्वाद पर कुप्रभाव पड़ता है। अरोड़ा, आदि (1975) ने नीम की खल से दो निम्नलिखित आहार तैयार करके भैंसों पर परीक्षण किये।

टी–1: मूंगफली की खल 30%, मक्का 42%, गेहूं की चोकर 25%, और खनिज मिश्रण 3%।

टी–2: मूंगफली खल 20%, नीम खल 50%, मक्का 20%, गेहूं की चोकर 7% और खनिज मिश्रण 3%।

सारणी-6.22 विभिन्न वर्गों में शारीरिक भार, शुष्क पदार्थ अर्न्तग्राह्यता एवं पोषकों के पाचन गुणांक

पोषक	टी–1	टी–2
प्रारंभिक शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	183.4	181.2
शुष्क पदार्थ अर्न्तग्रहण (कि.ग्रा.)	4.41	4.39
शुष्क पदार्थ पाचन गुणांक	55.85	53.52
कार्बनिक पदार्थ पाचन गुणांक	57.84	86.62
एसिड डिटरजेंट फाइबर पाचन गुणांक	44.75	55.67
अपरिष्कृत प्रोटीन पाचन गुणांक	56.02	49.02
ईथर सत्व पाचन गुणांक	65.98	61.24

सारणी 6.22 से स्पष्ट है कि शुष्क पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ एवं एसिड डिटरजेंट फाइबर के पाचन में दो वर्गों में कोई भिन्नता नहीं थी परन्तु टी–2 वर्ग जिसमें नीम की खली सम्मलित थी, प्रोटीन के पाचन गुणांक पर दुष्प्रभाव देखने को मिला। साथ ही इस वर्ग के पशुओं में नाइट्रोजन अवरोधन भी कम दिखाई दिये। ऐसा प्रतीत होता है कि नीम की खल से निम्बिन अथवा निम्बिडीन जैसे पदार्थों को पृथक करके ही पशु आहार में उपयोग किया जाना चाहिए।

महुआ की खल

जबलपुर में किये गये अनुसंधान कार्यों में दुधारू भैंसों के आहार में मूंगफली की खल को पूर्ण रूप से महुआ खल से प्रतिस्थापित किया गया। परीक्षण से प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि दूध उत्पादन पर इस खल के कुप्रभाव नहीं पड़े (सारणी–6.23)।

सारणी-6.23 महुआ खल मिलाकर तैयार किये गये दाना मिश्रण

विवरण	1 (नियंत्रित)	2	3	4	5
मक्का	25	25	25	25	25
मूंगफली की खल	32	24	16	8	–
उपचारित मुहआ खल	–	13	26	30	52
मसूर चूनी	40	34.78	29.555	24.335	19.110
खनिज मिश्रण	2	2	2	2	2
नमक	1	1	1	1	1
यूरिया	–	0.22	0.445	0.665	0.89
पचनीय अपरिष्कृत प्रोटीन (प्रतिशत)	18.07	18.07	18.07	18.07	18.07
कुल पाचक तत्व (प्रतिशत)	68.40	68.00	67.60	67.20	66.80

करंज की खल

भैंसों के कटड़ों पर करंज खली खिला कर अनुसंधान किये गये और ज्ञात किया गया कि दाना मिश्रण में 40% करंज खल मिलाने पर शुष्क पदार्थ के अन्तर्ग्रहण में गिरावट आई। दाना मिश्रण में 8.0% खल मिलाने पर भैंसों में विषाणु जैसे प्रभाव देखने को मिले उदाहरणार्थ – पशुओं के बाल उड़ गये, पपड़ी जम गई तथा पूंछ गल कर गिरने लगी। इस खल में 48% शीरा, 1% खनिज एवं 1% नमक मिला कर खिलाने पर भी स्वाद में सुधार नहीं हुआ। संभवतः इसका सम्पूर्ण तेल निकालकर प्रयोग करना हितकर होगा।

सारणी-6.24 प्रमुख कृषि एवं उद्योगोंकी उपोत्पादों की उपलब्धता, संघटन एवं पोषक मूल्य

उपोत्पाद का नाम	उपलब्धता	रासायनिक संघटन (प्रतिशत, शुष्क पदार्थ के आधार पर)										
	(लाख मेट.)	अपरिष्कृत प्रोटीन	ईथर सत्व	अपरिष्कृत रेशा	अप्रोटीन सत्व	खनिज	कैल्सियम	फॉस्फोरस	पाचक प्रोटीन	कुल पाचन शील तत्व	हानिकर कारक
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बबूल के बीज (Acacia nilotica)	0.60	17.6	6.0	12.3	59.3	44	0.9	0.3	13.8	59.0	टेनिन (5%)
अरंडी का चूर्ण (Castor bean meal)	0.60	34.8	34.8	10.6	33.2	32.2	–	–	–	–	राइसिन(0.22%)
कोका की फलियां (Theobroma cacao)	0.30	7.8	2.3	35.1	47.6	7.2–	–	–	6.6	63.5	–
गोला पिथ्य अर्थात् कोर व्यर्थ (Cocos nucifera)	2.00	1.8	2.9	19.3	70.6	5.4	0.3	0.1	0.0	62.7	लिगनिन (35–40%)
आंवला व्यर्थ (Malus sylvestris)	0.20	12.0	2.8	3.5	78.5	3.2	–	–	2.0	70.0	–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
केफील रहित समुद्र व्यर्थ (Camellia assamica)	0.05	17.9	0.3	12.6	60.0	9.1	5.6	0.8	7.5	58.0	टेनिन
करंज की खल (Pongamia glabra)	1.3	34.1	0.2	4.1	58.2	3.3	–	–	25.5	62.0	करंजीन एवं अन्य
कोकम की खल (Garcinia indica)	0.15	16.6	1.6	4.4	70.0	7.4	–	–	9.3	80.0	–
कुसुम की खल (Schleichera Oleosna)	0.30	22.11	0.42	7.57	62.10	7.80	0.49	1.09	14.73	79.62	हाइड्रोसाइनिक अम्ल (2.4 मि.ग्रा. /100 ग्रा.)
आम की गिरी की खल (Mangifera indica)	10.00	8.7	11.0	0.10	75.80	3.6	0.3	0.3	6.1	70.00	टेनिन (5–6%)
महुआ बीज की खल (Madhuca indica)	3.0	20.4	2.7	13.3	57.2	6.5	0.4	0.2	9.3	49.8	मोवरिन (19%)
नाइगर बीज की खल (Guizotia obyssinica)	1.0	34.2	5.7	13.6	37.0	9.50	–	–	32.7	49.4	–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धान का पुआल (Oryza sativa)	2000	4.0	1.0	35.4	48.60	11.00	–	–	0.8	41.5	लिगनिन्आक्जेलेट एवं सेलिनियम
रबड़ के बीज की खल (Hevea brasiliensis)	1.5	35.1	12.5	7.1	34.8	10.5	1.0	0.8	18.6	66.0	हाइड्रोसाइनिक अम्ल
साल के बीज की खल (Shorea robusta)	0.70	8.6	2.5	1.3	84.4	3.1	0.2	0.2	0.1	57.8	टेनिक अम्ल (8–10%)
प्रयोग किये एनेटो का बीज (Bixa Orellana)	0.30	11.8	4.9	15.8	62.4	5.1	–	–	7.9	67.2	टेनिक अम्ल (10%)
गन्ने की खोई (Sugarcane bagasse)	200	2.9	0.9	41.7	49.6	4.9	–	–	–	–	लिगनिन (8–10%)
सूर्यमुखी का भूसा (Helionthusannuus)	2.0	2.8	2.0	31.0	52.2	12.0	0.43	0.09	–	–	टेनिन (1–5%)
टेपियोका स्टार्च व्यर्थ (Manihot esculenta)	0.40	4.90	1.00	19.20	69.30	5.60	–	–	1.80	64.00	–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
इमली का बीज (Tamarindus indica)	87.00	19.80	4.70	2.10	70.30	3.10	–	–	11.26	63.92	–
चाय व्यर्थ (Camellia sinensis)	0.15	28.70	3.60	18.30	43.80	5.60	–	–	9.70	43.30	टेनिन्स (1–9%)
बिलायती बबूल का बीज (Prosopis juliflora)	10.00	12.50	3.60	25.60	53.30	5.10	0.40	0.20	7.00	75.00	टेनिन्स (0.74–1.5%)
गेहूं का भूसा (Triticum miliaceum)	15.00	3.10	1.10	35.70	48.70	11.40	0.26	0.09	0.00	40.10	लिगनिन
जलकुम्भी (Eichhorina carassipes	20.00	19.2	2.20	15.20	47.00	16.40	1.40	0.60	4.20	53.10	आक्जेलिक अम्ल (2–98%)
ब्रिवरस ग्रेन (शराब बनाने के बाद शेष दाने)	0.50	28.90	5.00	4.20	35.60	25.40	5.70	3.40	–	–	–
कॉफी की भूसी (Coffea arabica)	–	7.70	2.50	26.50	57.90	5.40	–	–	3.1	–	–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ताड़ की गिरी की खल (Elacis quinensis)	–	10.60	17.40	22.50	46.20	3.40	–	–	–	–	–
धूपा खल (Veteria indica)	–	6.70	7.00	8.90	70.50	6.9	–	–	–	–	–
नीम की खल (Azavi dacta indica)	–	13.30	19.90	5.50	51.20	10.10	–	–	6.50	62.60	टेनिक अम्ल (1.1–5.0%)
काजू का चोकर (Anacardium Occidentale)	–	16.90	29.00	6.50	13.90	3.70	–	–	–	–	–
नीबू घास (Lemon grass spent)	–	7.40	33.80	3.50	49.10	6.20	–	–	–	–	–

कुसुम की खल

बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, रांची में गुप्ता (1987) ने कुसुम खल को अनेक प्रकार से उपचारित करके परीक्षण किये और ज्ञात किया कि इससे सत्व निकाल लेने पर प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि होती है परन्तु खल को उबालने एवं गर्म करने पर इसमें कमी आई थी। यद्यपि सभी प्रकार के उपचारों से हानिकर ग्लाइकोसाइड्स में गिरावट आई परन्तु टेनिन की मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उपचारित करने पर खल के शुष्क पदार्थ एवं प्रोटीन का विघटन क्रमशः 9.63 से 15.19 प्रतिशत तथा 23.35 से 47.80 प्रतिशत तक पाया गया। दोनों को ही रूमेन में 20 घंटों तक उष्मायन (इन्कूवेंट) करने पर, इन्कूवेशन के समय में वृद्धि के साथ विघटन में भी बढ़ोतरी पाई गई।

ज्ञात हुआ कि पुआल के साथ कुसुम खल खिलाने पर शुष्क पदार्थ के अर्न्तग्रहण में तथा पोषकों के पाचन गुणांक में वृद्धि हुई। इस वर्ग का आहार भी अपेक्षाकृत स्वादिष्ट था तथा इन पशुओं में नाइट्रोजन का संतुलन भी अधिक पाया गया। नियंत्रित 50 प्रतिशत एवं 100 प्रतिशत कुसुम द्वारा प्रतिस्थापित नाइट्रोजन वाले वर्गों में दैनिक शारीरिक वृद्धि क्रमशः 445, 489 एवं 417. 90 ग्राम प्रति पशु पाई गई। इन प्रयोगों में कुसुम खल को बिल्कुल ही हानिकर नहीं पाया गया।

अध्याय-7

भैसों की गृह व्यवस्था

स्वच्छ वातावरण में रहने वाला पशु सदैव ही स्वस्थ, निरोग एवं प्रसन्नचित रहता है। अत: कुशल प्रबन्ध के लिए भली भांति एवं योजना बद्ध, उचित गृह व्यवस्था आवश्यक है, अन्यथा श्रम व्यय में वृद्धि हो सकती है, पशु अस्वस्थ रह सकते हैं और परिणाम स्वरूप लाभ में कमी आ सकती है। गृह व्यवस्था का प्रबंधन करते समय ध्यान रखना चाहिए कि पशुओं को आरामप्रद, स्वच्छ एवं उचित वायु के आवागमन वाला स्थान प्रदान किया जाय।

निम्नलिखित कविता में आदर्श पशुशाला की कल्पना की गई है।

चारों दिशा दीवाल अनुपम, खिरकी की बहुत रखावै।
शीतल मन्द समीर बहै जहां, पशु को सुख पहुंचावे।।
ओस नीर आतपहि बचावै, छाया पुष्टि करीजे।
एक झरौखा ऊपर राखे, तेहि दुर्गन्ध हरीजै।।
शीत वायु अरू उष्ण बचावै, गृह की रचना कीजै।
जामें रोग निकट नहीं आवे, सो प्रकार लिख लीजै।।

पशुशाला का निर्माण

पशुशाला बनाते समय सर्वप्रथम निर्माण स्थल का चयन और उनको क्रम से स्थापित करना आवश्यक है।

स्थान का चयन

पशुशाला निर्माण स्थल का चयन करते समय अनेक बातों का ध्यान रखना चाहिए, इनमें मुख्य निम्नलिखित हैं।

जल-निकास

पशुशालायें ऊंचाई एवं ढालू भूमि पर स्थित होनी चाहिए, जिससे वहां

पानी न भर सके। उंचाई पर भवन स्थित होने से भराव में भी कम व्यय होता है। नमी वाले स्थान में रहने वाले पशु अनेक रोगों से ग्रस्ति हो जातेहैं।

हाट की निकटता

फार्म पर उत्पन्न होने वाले पदार्थों को समीप के हाट में ले जाना पड़ता है। हाट के निकट होने से समय एवं धन की बचत होती है क्योंकि ढुलाई में कम व्यय करना पड़ता है।

जल व्यवस्था

फार्म पर पशुओं को पीने के लिए तथा पशुशाला की सफाई के लिए पानी की आवश्यकता होती है अतः प्रचुर मात्रा में स्वच्छ जल उपलब्ध होना चाहिए। आधुनिक युग में टंकी (नल) अथवा नलकूप (हेण्ड पम्प) का होना आवश्यक है यदि विद्युत उपलब्ध हो तो नलकूप के साथ मोटर लगाकर पानी निकाला जा सकता है। स्वच्छ जल के पीने से पशु नीरोग रहते हैं।

फार्म का क्षेत्रफल

फार्म का क्षेत्रफल पर्याप्त एवं आकार वर्गाकार होना चाहिए। साधारणतः मुख्य सड़क एवं रेलवे लाइनों के दोनों ओर पशुशालाओं का निर्माण नहीं करना चाहिए।

सूर्य प्रकाश

पशुशालाओं में सभी स्थानों (नांद, नालियों, फर्श आदि) पर अधिकतम धूप पहुंचने के लिए आवश्यक है कि पशुशालाओं की लम्बाई उत्तर दक्षिण में हो। ज्ञातव्य है कि धूप की उपस्थिति में अनेक रोगों के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

तीव्र वायु से रक्षा

ग्रीष्म ऋतु में पशुओं को उष्ण वायु से और शीत ऋतु में ठण्डी वायु से बचाना आवश्यक होता है। फार्म पर पर्याप्त वृक्षों की उपस्थिति हवाओं को रोकते तथा ग्रीष्म ऋतु में शीतल छाया प्रदान करते हैं।

अन्य ध्यानापयोगी बातें

पशुधन फार्म चारों ओर खेतों से घिरा हुआ तथा सड़क के निकट होना चाहिए। फार्म पर विद्युत की व्यवस्था होना आवश्यक है। यदि टेलीफोन की भी व्यवस्था हो तो लाभप्रद होगा। फार्म कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा हेतु यदि पाठशाला की व्यवस्था पड़ोस में हो और पत्रालय भी हो तो अच्छा है।

फार्म भवनों की क्रम से स्थापना

पशुधन फार्म पर नये भवनों को बनाने अथवा पुराने भवनों को परिवर्तित करने की योजना बनाते समय उनका रेखाचित्र तैयार करना चाहिए। भवनों का चित्र बनाते समय उसमें दरवाजों एवं खिड़कियों की स्थिति, घेरों, वृक्षों को लगाने के स्थान, सड़कों के निर्माण का स्थान आदि महत्वपूर्ण बातों का सावधानी से प्रयोजन निश्चित करना चाहिए, क्योंकि भवन का निर्माण सम्पन्न होने के पश्चात परिवर्तन करना असुविधाजनक होने के साथ व्यय में वृद्धि भी करता है। प्रायः पशुशालाओं एवं अन्य साधारणतः प्रयोग किये जाने वाले भवनों को एक केन्द्र में स्थित प्रांगण के चारों ओर बनाया जाना चाहिए। सामान्यतः फार्म के भवनों की स्थिति अंग्रेजी के ई, यु, एल, सी एवं आई जैसी होती है परन्तु इसके निश्चय करने में निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान देना चाहिए।

पशुपालक के गृह की स्थिति

पशु फार्म बनाने के पूर्व फार्म प्रबन्धक के गृह की स्थिति निश्चित कर लेनी चाहिए। सामान्यतः प्रबंधनक अपने गृह को आवास एवं कार्यालय के लिए प्रयोग करता है। गृह उंचे स्थान पर स्थित होना चाहिए। जिसमें पशुशालाओं को सुगमता से देखा जा सके। गृह सड़क के निकट होना चाहिए।

पशुशालाओं की दिशा

पशुशालाओं की लम्बाई उत्तर दक्षिण होनी चाहिए जिससे पर्याप्त धूप एवं वायु पशुशाला में प्रवेश करती रहे। विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर ही पशुशाला की दिशा निर्धारित करनी चाहिए। फार्म प्रबंधनक के गृह का मुख्य दरवाजा सड़क की ओर खुलना चाहिए।

वायु की दिशा

फार्म प्रबंधनक का गृह पूर्व एवं उत्तर की ओर होने से शूकर शाला अथवा कुक्कुट गृहों की दुर्गन्ध पशुशाला एवं प्रबन्धक के गृह में प्रविष्ट नहीं करती है। पशुशाला को तीव्र वायु से बचाने के लिए उसमें 25–45 मीटर की दूरी पर वृक्षों की 3–7 पंक्तियां लगाई जानी चाहिए। वृक्षों की दो पंक्तियों के मध्य 6–10 मीटर की दूरी होनी चाहिए। वायु की तीव्रता को रोकने की दृष्टि से फार्म पर लगाये जाने वाले वृक्ष तीव्र गति से वृद्धि करने वाले एवं उंचे होने चाहिए। वे वृक्ष हैं कीकर, शीशम, नीम, यूकलिप्टस आदि।

समय एवं श्रम की उपयोगिता

फार्म गृह इस प्रकार से स्थित हों कि विभिन्न कार्यों के करने में कम से कम चलना पड़े और कम से कम व्यय हो। जिन फार्म गृहों में सर्वाधिक कार्य करना पड़ता है (दुग्धशाला) वे प्रबंधनक के गृह के निकट स्थित होने चाहिए। यद्यपि फार्म परस्पर निकट हों परन्तु इतने नहीं कि आग लगने से समीप के भवन भी प्रभावित हो जायें। पशुशालायें इस प्रकार से स्थित हों कि उनमें भण्डारों से सुगमता से चारा दाना पहुंच सके।

पशुशालाओं का रेखाचित्र तैयार करने के लिए आवश्यक जानकारी

पशुशाला के उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए निम्न जानकारी आवश्यक है।

पशु रक्षा

पशुशाला का मुख्य उद्देशय पशुओं को उचित वातावरण प्रदान करना तथा असहनीय जलवायु से उनकी रक्षा करना है। जलवायु के जिन अवयवों से पशुशाला पशुओं की रक्षा करती है उनमें प्रमुख हैं--वायु तथा वर्षा।

पशु उत्पादन

पशु पालकों की आय, उनके पशुओं की शारीरिक वृद्धि, उत्पादन और जनन पर निर्भर करती है। जलवायु में साधारण परिवर्तन होने से पशु के उत्पादन में विशेष प्रभाव परिलक्षित भले ही न हों परन्तु असहनीय जलवायु वाले वातावरण में पर्याप्त समय तक रहने से पशु रोग ग्रस्त हो सकते हैं और

उनका उत्पादन घट जाता है। पशुशाला आरामप्रद परन्तु कम लागत वाली हो। यदि वर्ष के थोडे दिनों ही अत्यधिक प्रतिकूल मौसम से पशुओं की रक्षा करनी हो जैसे सर्दी से पशुओं को बचाना हो इसके लिए पर्दे आदि डालने की अस्थाई व्यवस्था करनी चाहिए। नवजात बच्चों को अधिक सर्द से बचाने के लिए फर्श पर सूखा बिछावन डाल देना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में भी पशुओं को लू से बचाने की अस्थाई व्यवस्था करनी चाहिए।

आर्थिक दृष्टिकोण

पशुशाला निर्माण पर किये जाने वाले व्यय का निर्धारण, पशुओं से होने वाली आय से भी किया जा सकता है। अधिक दूध देने वाले पशुओं को प्रायः अधिक सुविधाजनक आवास की आवश्यकता पाई जाती है।

संवातन (वेन्टीलेशन)

रूमेन किण्वन से उत्पन्न होने वाली भैसें उदाहरणार्थ—मीथेन, इथेन तथा हाइड्रोजन सल्फाइड और विष्ठा तथा मूत्र से बनने वाली अमोनिया गैस से पशु आवास के अन्दर की वायु में आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। अतः आवश्यक है कि पशुशाला में पर्याप्त वायु विनमय होता रहे जिससे पशुशाला की वायु से वाष्प, अमोनिया, कार्बन डाइआक्साइड, धूलकण एवं हानिकारक जीवाणुओं को कम किया जा सके और पशु स्वस्थ बने रहें। इसके लिए पशुशालाओं में उचित संवातन की व्यवस्था होनी चाहिए।

पशु आवास के प्रकार

भारत जैसे विशाल देश में जलवायु की विभिन्न परिस्थितियां पाई जाती हैं अतः प्रत्येक क्षेत्र के लिए अनुकूल एवं आदर्श पशुशाला की संस्तुति करना सम्भव नहीं है क्योंकि देश के विभिन्न स्थानों पर पशु पालन की विधियां जलवायु के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं।

सामान्यतः पशु आवासों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है।

1. खुला आवास

इस प्रकार के आवास में पशु को घिरे हुए बार दीवारों के अन्दर खुला रखते हैं। बाडे का एक भाग ऊपर से छत से ढका रहता है। उनके आहार

की व्यवस्था भी वहीं होती है जिसे स्टाल फीडिंग करते हैं। समय–समय पर पशुओं को आहार नादों में दिया जाता है तथा पानी की भी वहां व्यवस्था रहती है। पशु आहार खाने तथा पानी पीने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होता है, मात्र दूध निकालने के लिए बांड़ों में ले जाया जाता है तथा बांध कर दूध निकाला जाता (चित्र 7.1) है।

यह विधि बहुत ही उत्तम मानी जाती है, क्योंकि इसमें पशुओं में लंगड़ापन, टांग, खुरों तथा पिछले पैर के जोड़ों का घाव थनों में चोट आदि लगने की संभावना नहीं रहती है। इसके अतिरिक्त इस गृह व्यवस्था में थनैला रोग तथा अपच आदि भी पशु को नहीं होता है।

खुले आवास के लाभ

1. इसे बनाने में अन्य विधियों की अपेक्षा कम व्यय होता है।
2. पशुओं की संख्या बढ़ने पर इसका आकार बढ़ाया जा सकता है।
3. पशुओं के स्वभाव का सावधानी पूर्वक अध्ययन करके मद में आने वाले पशुओं की पहचान सुगमता से की जा सकती है।
4. इस प्रकार की आवास व्यवस्था में, दूध निकालने के गृह के अलग होने के कारण उसे सुगमता से स्वच्छ रखा जा सकता है क्योंकि उसमें पशु मात्र दूध निकालते समय जाते हैं। अतः दूध स्वच्छ रहता है।
5. पशुओं को व्यायाम कराने के लिए अलग से आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि खुले आवास में पशुओं के घूमते रहने से उनका पर्याप्त व्यायाम हो जाता है।
6. आहार खिलाने एवं पानी पिलाने की सम्मलित व्यवस्था होने के कारण प्रबंधन सुगम हो जाता है और श्रम की बचत होती है।
7. बन्द आवास व्यवस्था की तुलना में आग लगने जैसे देवी प्रकोप से पशु हानि की कम संभावना रहती है।
8. पशुओं के स्वछन्द घूमने से इन्हें आराम मिलता है तथा प्रबंधन सुगम हो जाता है।
9. प्रबंधन व्यवस्था में श्रम की बचत हो जाती है।

खुले आवास की सीमायें

खुले आवास की सीमायें भी हैं।

1. इसमें अपेक्षाकृत अधिक स्थान की आवश्यकता होती है।
2. मद में आने वाला पशु दूसरे पशु को तंग करता है।
3. पशुओं की अलग–अलग आहार व्यवस्था संभव नहीं है।

2. बन्द आवास

इस व्यवस्था में पशुओं को बांध कर रखा जाता है और उनका दूध भी वहीं निकाला जाता है। पशुओं को यदि चरागाह में ले जाना हो तो मात्र उसी समय आवासों से बाहर निकाला जाता है। इस पद्धति को स्टाल–बार्न पद्धति कहते हैं। सम्पूर्ण पशु–शाला ऊपर से छत से ढकी रहती है दीवारों में संवातन के लिए उचित संख्या में खिडकियों एवं रोशनदान होते हैं।

बन्द आवास के लाभ

बन्द आवास व्यवस्था के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. अपेक्षाकृत कम स्थान की आवश्यकता होती है।
2. पशुओं को स्वच्छ रखने में कम श्रम लगता है।
3. इस पद्धति में पशुओं को सींग रहित करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि बंधे रहने के कारण वे परस्पर लड़ कर सींगों द्वरा हानि नहीं कर सकते हैं।
4. पशुओं के साथ कार्य करने वाले व्यक्तियों को प्रतिकूल मौसम से बचाने का भय नहीं रहता है।
5. पशुओं की आहार व्यवस्था अलग–अलग की जा सकती है।
6. रोगों का सुगमता से आभास हो जाता है और उनको नियंत्रित किया जा सकता है।
7. जिन डेयरी फार्मों पर फुटकर दूध विक्रय किया जाता है, वहां पशु पशुशाला में बंधे हुए अच्छे दिखाई देते हैं।

बन्द आवास की सीमायें

अनेक लाभ होने पर भी बन्द आवास की निम्नलिखित सीमायें हैं।

1. पशुओं की संख्या बढ़ने पर आवास का आकार बढ़ाने में कठिनाई होती है।
2. पशुओं को स्वच्छ घूमने का अवसर प्राप्त नहीं होता है।
3. इस प्रकार का आवास निर्माण अधिक व्यवशील है।
4. खुले आवास की अपेक्षा मद में आने वाले पशु की पहिचान करने में कठिनाई होती है।
5. आग लग जाने की परिस्थितियों में पशुओं को बचाना अपेक्षाकृत कठिन है।
6. स्वास्थ्यकर परिस्थितियों बनाये रखने में कठिनाई होती है।

खुला आवास बनाने की योजना तथा निर्माण

सांड़ों, गाभिन भैंसों एवं 6 सप्ताह से कम आयु के बछड़ों को छोड़कर अन्य पशुओं के लिए सम्मलित गृह व्यवस्था की जा सकती है। खुले आवास में रखने वाली भैंसों को सींग रहित कर देना चाहिए। सम्पूर्ण खुले आवास में निम्नलिखित भवन एवं सुविधाओं की व्यवस्था होनी चाहिए।

1. भैंसों तथा ओसरों के लिए, आहार, विश्राम एवं पानी पीने का प्रबन्ध।
2. दूध निकालने का भवन।
3. दूध अभिलेख करने का कक्ष।
4. बच्चा जनन के बाड़े।
5. सांड़ों के बाड़े।
6. बच्चों के लिए बाड़े।

आहार व्यवस्था

खुला आवास बनाते समय सम्पूर्ण क्षेत्र एक होता है तथा क्षेत्र का एक भाग सीमेंट अथवा एस्वेस्टस की चादरों से ढक दिया जाता है। पशुओं को

आहार खाने के लिए नादें या तो ढके हुए स्थान में बना दी जाती हैं अथवा एक कोने में। लेकिन ढके हुए छत के नीचे बनाना उत्तम है। नादों में आहार वहीं पर डाला जा सकता है। नादें बनाने की अनेक विधियाँ हैं। इन्हें ईंटों से अथवा लकड़ी के तख्तों से बनाया जा सकता है। प्रत्येक पशु को 50–60 से.मी. आहार स्थान (नांद) की आवश्यकता होती है। कम आयु के पशुओं को इसके आधे स्थान की आवश्यकता होती है। नांदों के किनारे गोल एवं चिकने होने चाहिए।

दूध देने वाली भैंसों को दाना मिश्रण, दूध निकालने के बाड़े में दूध निकालते समय खिलाया जा सकता है। शक्तिशाली पशु निर्बल पशुओं का दाना न खा सके, इसलिए उन्हें छोटे–छोटे समूहों में दाना खिलाया जा सकता है।

विश्राम करने का क्षेत्र

नांद तथा खुले क्षेत्र के मध्य के स्थान को खड़े होने का स्थान कहते हैं। इस स्थान का फर्श पक्का तथा धुलाई करने योग्य होना चाहिए। खुले स्थान में भी ईंटें बिछा देनी चाहिए। यदि पूरा क्षेत्र पक्का करवाना संभव न हो तो खड़े होने के क्षेत्र के साथ–साथ लगभग 6 मीटर चौड़ी पट्टी में ईंटें बिछवा देनी चाहिए। डेयरी पशुओं के लिए फर्श तथा नांद की आवश्यकता निम्नलिखित सारणी 7.1 के अनुसार होगी।

सारणी 7.1 विभिन्न आयु के पशुओं के लिए फर्श एवं नांद स्थान की आवश्यकता

पशु	प्रति पशु स्थान (वर्ग मीटर)	फर्श (घन मीटर)	प्रति पशु नांद की लंबाई (से.मी.)	बाड़े का प्रकार
भैंस	18.6–27.8	74.3–92.9	50–60	समूह
गाभिन भैंस	92.9–111.5	167.2–185.8	60–75	एकहरी
ओसर	15.0–20.0	50.0–70.0	40–60	समूह
सांड़	111.5–130.0	185.8–232.3	50–75	एकहरी
कम आयु के पशु	14.0–18.6	46.5–55.7	35–50	समूह

खुले स्थानों में वृक्ष लगाने से गर्मियों में पशुओं को छाया प्राप्त हो सकती है। सर्दियों में धूप की आवश्यकता के कारण वृक्षों की टहनियों को छांट देना चाहिये।

शीत ऋतु में विश्राम स्थल की एक ओर को पर्दा आदि से ढकने से सर्द वायु के झौंकों से पशुओं का बचाव हो जाता है। जितना संभव हो, विश्राम स्थल वर्गाकार होना चाहिए। नांद और मार्गों के लिये प्रयोग किये जाने वाले स्थान की विश्राम स्थल में गणना नहीं करनी चाहिए। भूमि के नीचे वाली बहाव नालियाँ आदर्श मानी जाती हैं परन्तु ऐसा संभव न होने पर उचित बहाव के लिए प्रति 120 लंबाई में 1 का ढाल देना चाहिए।

पानी की सुविधा

पशुओं को रात्रि दिन पानी की प्रचुर मात्रा उपलब्ध होनी चाहिए। ढके हुए अथवा खुले स्थान में अलग से पानी की टंकी (हौदी) होनी चाहिए जो स्वच्छ पानी से सदैव भरी रहनी चाहिए। प्रति पशु प्रतिदिन लगभग 300 लिटर पानी की आवश्यकता होती है। पानी की हौदी के चारों ओर लगभग 3.0–3.5 मीटर का क्षेत्र पक्का तथा ढालदार होना चहिए। दूध देने वाली भैंस को प्रति लिटर दूध उत्पादन पर 3–5 लिटर पीने के पानी की आवश्यकता होती है। परिवेश ताप, वायु की आर्द्रता, खाये जाने वाले आहार की गुणवत्ता एवं मात्रा, पशु के आकार एवं उत्पन्न किये गये दूध की मात्रा के आधार पर एक पशु एक दिन में 80–120 लिटर पानी पी सकता है। दूध अभिलेख करने वाले कक्ष के बर्तनों आदि को साफ करने के लिए प्रति लिटर दूध पर लगभग 5 लिटर पानी की आवश्यकता होती है। पशुओं को साफ करने के लिए प्रतिदिन लगभग 100 लिटर पानी की आवश्यकता होती है। युवा पशुओं की पानी की आवश्यकता लगभग आधी मानी जा सकती है। सामान्यतः गहरे कुएं का पानी पीने के लिए उचित रहता है।

दूध निकालने का कक्ष

दूध निकालने वाले बाडे में सफाई किये गये पशु मात्र दूध निकालने के लिए ले जाये जाते हैं अतः इसे सुगमता से साफ किया जा सकता है जो कि स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए अति आवश्यक है। इस कक्ष में पशु बारी–बारी से ले जाये जाते हैं इसलिए एक स्टाल प्रति 2–3 भैंसों के लिए पर्याप्त होगा।

मशीन द्वारा दूध निकाले जाने पर एक स्टाल में 5–7 भैंसों का दूध निकाला जा सकता है। फर्श स्तर का दूध निकालना अत्यन्त कठिन एवं असुविधाजनक है क्योंकि पशुओं का दूध निकालने के लिये ग्वाले को प्रति पशु औसतन 5 बार झुकना पड़ता है। उठे हुए स्तर वाले स्टाल में दूध निकालने के लिए ग्वाले को झुकना नहीं पड़ता है। संभवतः यू (U) आकार की रचना अधिक प्रसिद्ध है। हमारे देश में फर्श स्तर पर दूध निकालने वाली पद्धति अधिक प्रसिद्ध है, हाथ द्वारा दूध निकालने के लिए। दूध निकालने का बाड़ा खुले आवास के साथ संकरे मार्ग द्वारा जुड़ा रहता है। हाथ से दूध निकालने पर उचित होगा कि भैंसों को छोटे समूह में लाया जाए, उन्हें धोकर साफ किया जाए, दूध निकाला जाए तथा इसके पश्चात अन्य पशुओं को इसी प्रकार लाया जाए (चित्र 7.2)।

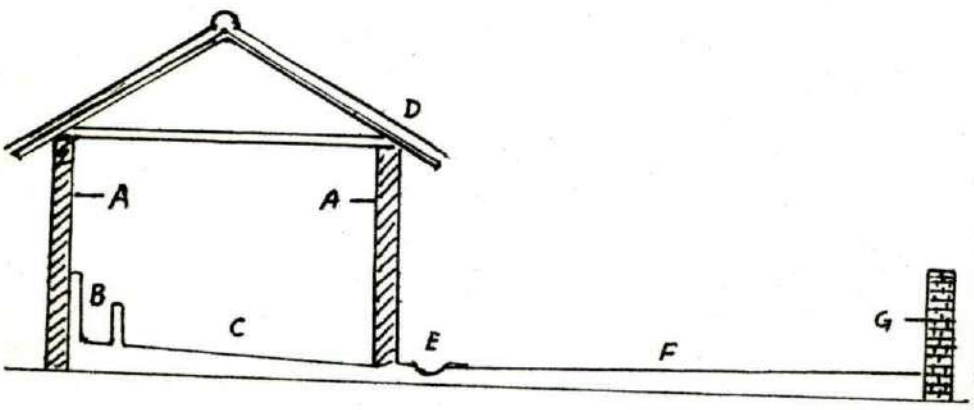

चित्र-7.1 खुला आवास का सेक्शन जिसमें आतरिक विवरण दिखाया गया है। A. छत को संभालने वाली रचनाएं; B. नाद; C. ढका क्षेत्र; D. छत; E. मल–नाली; F. कम्पाउड की दीवार।

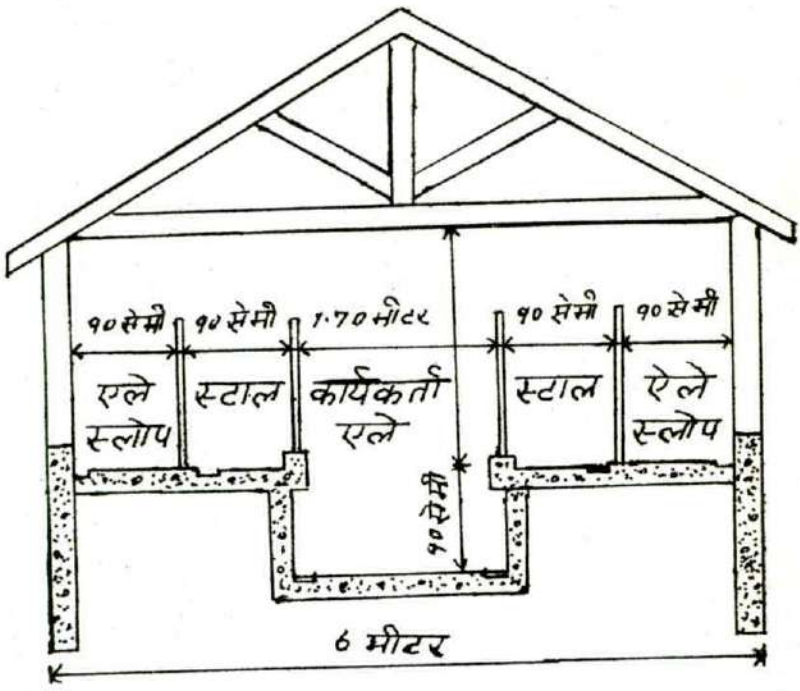

चित्र-7.2 दूध निकालने का स्टाल

दूध निकालने का कक्ष ऐसा होना चाहिए कि उसमें मक्खियां प्रविष्ट न कर सकें। वायु के आवागमन में अधिकता लाने के लिए दीवारों के ऊपरी भाग पर दीवार के स्थान पर जाली लगाई जा सकती है। प्रत्येक खिड़की एवं दरवाजे के साथ स्वयं बंद होने वाला जाली का दरवाजा लगाना चाहिए। दीवारों और फर्शों को ऐसे पदार्थ से बनाना चाहिए कि सुगमता से सफाई हो सके। फर्श और नालियों में उचित ढाल होना चाहिए, जिससे सफाई करने के पश्चात पानी आदि बह जाए और फर्श शुष्क रह सके। प्रत्येक बाडे में पशु को ठीक से खड़ा रखने के लिए, उसकी ग्रीवा फंसाने (स्टैन्चियन) का प्रबंधन होना चाहिए (चित्र 7.3)।

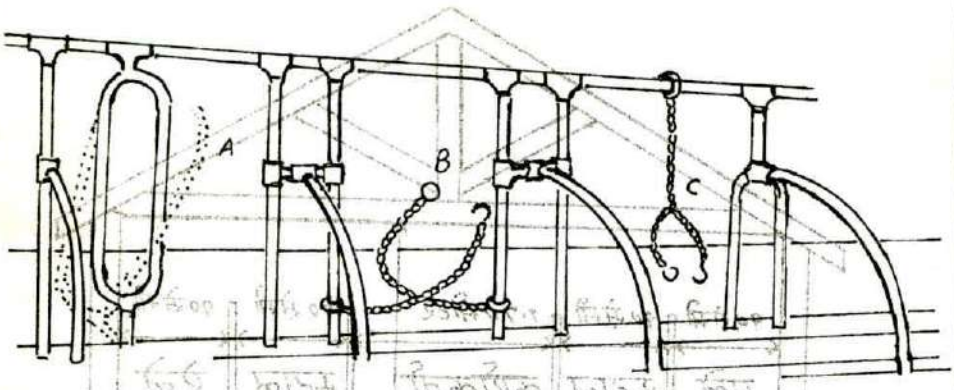

चित्र-7.3 भैंसों के अलग-अलग गर्दन से बांधने के तीन उपाय
A. धातु जुआ वाला स्टेन्चियन, B. दो जंजीर का स्टेन्चियन,
C. एक जंजीर का स्टन्चियन।

बछड़ा गृह

छः सप्ताह से कम आयु के बछड़ों को बछड़ा गृहों में एक बछड़ा प्रति बछड़ा गृह के हिसाब से रखना चाहिए। बछड़ा गृह छत वाला और सुरक्षित होना चाहिए। नवजात बछड़े मौसम के उतार-चढ़ाव को सहन करने में समर्थ नहीं होते हैं। सर्द ऋतु में बछड़ों को सर्द वायु के झोकों से बचाने के लिए पर्दे लगाना चाहिए। अत्यधिक ठंड पड़ रही हो तो बाड़े को एक ओर अस्थाई रूप से छप्पर आदि से बंद कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त 30 से.मी. मोटी बिछावन भी दी जा सकती है। नम और मिट्टी लगी बिछावन को तुरंत बदलनी चाहिए। तेज धूप वाले दिन बच्चों को धूप में छोड़ना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु और सामान्य मौसम में बछड़ा बाड़े में दृढ़ जाली को भूमि से लगभग 25 से.मी. की ऊंचाई पर लगाकर बछड़े पालने से स्वच्छता को बनाये रखा जा सकता है।

अत्यधिक गर्मी के दिन उष्ण वायु से बछड़ों को बचाना आवश्यक है। बछड़ों को अलग-अलग आहार प्रदान करना चाहिए। बड़े फार्मों पर रटेन्चियन्स में बछड़ों को बांध कर दाना अथवा दूध दिया जाता है। लगभग छः सप्ताह की आयु के पश्चात बछड़ों को सामूहिक बाड़ों में भेज दिया जाता है।

यदि संभव हो तो एक बाड़े में 5–6 बछड़ों से अधिक को नहीं रखना चाहिए। बछड़ों के आकार को ध्यान में रखकर पानी की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे वे सुगमता से पानी पी सकें।

दूध अभिलेखन कक्ष

दूध निकालने के बाड़े से अलग, बिना दीवार के मार्ग से जुड़ा, दूध अभिलेखन कक्ष होता है। यदि मार्ग न हो और दूध निकालने के बाड़े तथा इस कक्ष की दीवार सम्मलित हो तो इसमें बड़े आकार का कांच लगा रहना चाहिए जिससे दूध निकालने के कार्य को भी देखा जा सके। सामान्यतः दूध निकालने के बाड़े की ओर लगे बर्तन में दूध डालने से वह पाइप द्वारा दूध मापने की बाल्टी में चला जाता है और इसको तौल लिया जाता है। आधुनिक डेयरियों में स्वचालित यन्त्रों द्वारा दूध निकालने की मशीन से सीधा दूध ठंडा करने की मशीन में चला जाता है।

प्रतिदिन दूध अभिलेखन कक्ष में दूध एकत्रित होता है अतः यह कक्ष फार्म के प्रवेश द्वारा की ओर होना चाहिए परन्तु सड़क की ओर जहां धूल उड़ती रहती है, नहीं होना चाहिए जिससे दूध अस्वच्छ हो जाए। दूध ढोने वाले ट्रक में दूध लादने के लिए, प्लेटफार्म का होना, यद्यपि आर्थिक दृष्टि से महंगा परन्तु समय की बचत करने वाला होता है (चित्र 7.4)।

दूध अभिलेखन कक्ष का आकार, प्रतिदिन प्राप्त होने वाले दूध की मात्रा पर निर्भर करता है। सारणी–7.2 में फर्श की आवश्यकता प्रदर्शित की गई है। अतिरिक्त दूध उत्पादन के लिए फर्श की आवश्यकता ज्ञात करने के लिए, 700 लिटर के ऊपर दूध उत्पादन होने पर प्रति 40 लिटर दूध पर 0.37 वर्ग मीटर जोड़ना चाहिए। सारणी में दिखाये गये फर्श स्थान में दूध अभिलेखन यंत्र, दूध ठंडा करने के यंत्र (बल्क कूलर), बाल्टियों के रैक और पानी की सिंक आदि के लिए ही स्थान सम्मलित हैं। यदि इनके अतिरिक्त ब्रोइलर, कम्प्रेशर आदि के लगाने की आवश्यकता हो तो अतिरिक्त स्थान की आवश्यकता पडती है।

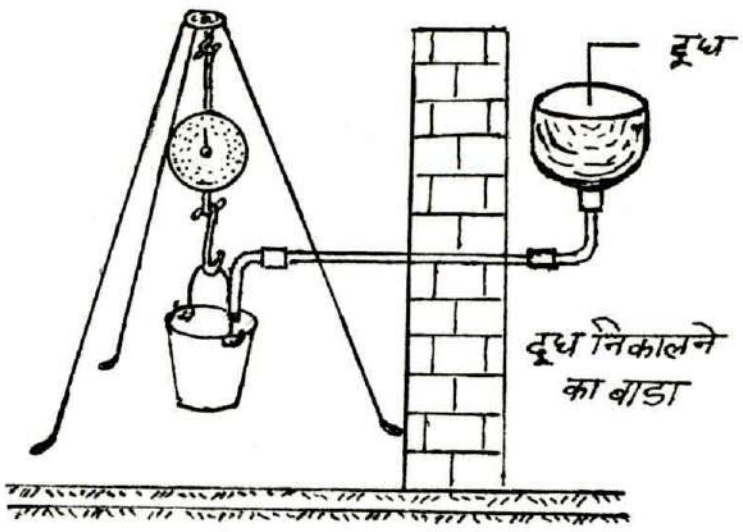

चित्र-7.4 दूध अभिलेखन कक्ष

सारणी-7.2 दूध अभिलेखन कक्ष के लिए फर्श स्थान की आवश्यकता

प्रतिदिन दूध प्राप्ति (लिटर)	फर्श स्थान (मीटर)	टिप्पणी
100 से कम	3.7 x 3.1	इसमें कम्प्रेशन ब्रोइलर
100–200	3.7 x 3.7	आदि का स्थान
200–450	3.7 x 4.3	सम्मलित नहीं है
450–700	3.7 x 4.9	

फर्श पक्का और चिकना होना चाहिए जिससे भली–भांति सफाई की जा सके। इस कक्ष के पानी का ढाल भूमिगत नाली की ओर होना चाहिए। सभी खिड़की एवं दरवाजों में जाली लगी होनी चाहिए। एक 100 वाट का बल्ब सफाई के बर्तनों के पास और दूसरा कूलर तथा बाल्टियों के रैक के पास पर्याप्त होता है। छत के पंखे के स्थान पर एक्जोस्ट पंखा अधिक उपयुक्त होता है क्योंकि छत के पंखे से वायु में धूल फैल जाती है। नल के पानी, गर्म पानी तथा वाष्प (स्टीम) आदि की सुविधायें भी होना चाहिए।

बच्चा जनन कक्ष

बच्चा जनन करने वाले पशुओं को अलग रखना चाहिए। इसके लिए एक कक्ष में 10–12 पशु रखे जा सकते हैं। बच्चा देने के एक–दो दिन पूर्व ही पशु को बच्चा जनन कक्ष में भेजें और वहां आहार तथा पानी की पूर्ण व्यवस्था रखें। स्वच्छता की दृष्टि से फर्श का पक्का होना आवश्यक है। इस कक्ष में प्रकाश का उचित प्रबंधन होना चाहिए और वायु का पर्याप्त आवागमन भी। खाली पड़े बच्चा जनन कक्ष का उपयोग भंडारण अथवा कर्मचारियों के सोने के लिए नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे अस्वच्छता फैलती है।

प्रत्येक प्रसूति कक्ष का आकार 3x4 मीटर ढका भाग तथा 3x4 मीटर खुला भाग होना चाहिए। बाड़े के चारों ओर 1.25 मीटर ऊँची दीवार होनी चाहिए। बाड़े के खुले भाग के बाहरी दीवार में 1.2 मीटर चौड़ा दरवाजा होना चाहिए। प्रत्येक बाड़े में एक नांद तथा पानी पीने की टंकी होनी चाहिए। भैंसों को फिसलने से बचाने के लिए फर्श खुरदरा (नालीदार) होना चाहिए। फर्श, कंक्रीट, सीमेंट तथा मोरम का और किनारे पर खड़ी ईंटों का बनाना चाहिए। निकास नाली की ओर फर्श का ढाल 40 में 1 की दर से होना चाहिए।

अस्वस्थ पशुओं का बाड़ा

रोग–ग्रस्त पशुओं को अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए। बाड़ों की रचना प्रसूति कक्ष की भांति की जा सकती है। इन्हें अन्य पशुओं से दूर रखना चाहिए, जिससे वे इनके समीप न आ सकें और लगने वाले रोगों से वंचित रह सकें।

नवजात बच्चों का बाड़ा

दुग्धशाला के अंत अथवा बगल में नवजात बच्चों का बाड़ा स्थित होना

चाहिए। इससे दूध निकालते समय इन्हें सुगमता से अपनी माँ के पास लाया जा सकता है और दूध निकालने के पश्चात् वापस ले जाया जा सकता है। एक बाड़े में लगभग समान आयु के बच्चे होने चाहिए, उनकी संख्या अधिक होने पर कई बाड़े बनाये जा सकते हैं।

बाड़े का आकार बच्चों की संख्या पर निर्भर करता है। नांद तथा पीने के पानी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए और बाड़े के ढके भाग की फर्श किनारे पर खड़ी ईंटों की बनी होनी चाहिए।

बाल पशुओं का बाड़ा

छः माह से अधिक आयु के कटड़ा, कटड़ियों को कम आयु के बच्चों से अलग बाड़े में रखते हैं। इन्हें एक साथ रखने पर अधिक आयु वाले बच्चे कम आयु वालों को आहार प्राप्त करने में रूकावट उत्पन्न करते हैं जिससे वे दुर्बल हो जाते हैं। इसी प्रकार नर बच्चे मादा बच्चों को आहार ग्रहण करने में विघ्न डालते हैं जिससे वे दुर्बल हो जाते हैं अतः दोनों लिंगों को भी अलग–अलग रखना चाहिए।

यदि बाल बच्चों की संख्या कम हो तो उन्हें सूखी भैंसों के बाड़े में बढ़ाये गये भाग में रखा जा सकता है परन्तु संख्या अधिक होने पर पृथक इकाई में रखना आवश्यक है। बाड़े एक अथवा दो पंक्तियों में बनाये जा सकते हैं। यदि वे दो पंक्तियों में हों तो उनके ढके भाग एक–दूसरे के सामने होने चाहिए। नांद एवं पानी पीने की टंकी की माप के अतिरिक्त इन बाड़ों की विशेष रचना भैंसों के बाड़ों की भांति होनी चाहिए।

सांड़ कक्ष

कृत्रिम गर्भाधान के प्रचलन के कारण फार्म पर सांड़ रखना आवश्यक ही है। भैंसों की अपेक्षा सांड़ अधिक दृढ़ और (कभी–कभी तीव्र स्वभाव वाले भी) होते हैं अतः उनको अलग कक्ष में रखना चाहिए, जहां से अन्य पशु उसे दिखाई देते रहें।

सांड कक्ष की नांदें ढके स्थान में होना चाहिए और दो बाड़ों (कक्ष) के मध्य पानी पीने की एक टंकी (हौद) हो सकती है। सांड़ बाड़े की रचना में सुदृढ़ पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए। सांड़ बाड़े का ढका भाग 3x4 मीटर तथा खुला भाग 120 वर्ग मीटर क्षेत्रफल का होना चाहिए।

विद्युत प्रकाश की सुविधा

भवनों में विद्युत प्रकाश की बहुत आवश्यकता होती है। सभी स्थानों पर जहाँ पशु आहार खाते हैं अथवा अन्य आवश्यक कार्य किये जाते हैं, विद्युत प्रकाश होना चाहिए। दीवार स्विच जिससे विद्युत नियंत्रण किया जाता है, अत्यधिक प्रयोग में आने वाले प्रवेश स्थान पर लगाया जाना चाहिए। प्रकाश के लिए 5–10 फीट कैण्डिलस प्रकाश, प्रयोग करने वाले स्थल पर होना चाहिए। विश्राम स्थल पर नांद के 1.8–2.7 मीटर ऊपर 100 वाट के बल्ब का प्रकाश अथवा इतनी शक्ति की ट्यूब का प्रकाश 6–7.6 मीटर की दूरी तक पर्याप्त होता है। यदि विश्राम स्थल पर नांद न हो तो 100 वाट का बल्ब जो कि फर्श के ऊपर 3.0–4.3 मीटर की ऊंचाई पर लगा हो, लगभग 93 वर्ग मीटर क्षेत्र में प्रकाश के लिए उचित रहता है। खुले क्षेत्र में एक 200 वाट का बल्ब अथवा समान शक्ति वाला ट्यूब 930–975 वर्ग मीटर क्षेत्र को प्रकाशित करने के लिए पर्याप्त माना जाता है।

दूध निकालने एवं सफाई करने वाले स्थान पर उचित प्रकाश का प्रबंधन होना चाहिए। कार्य करने के स्थान पर 15 फीट कैण्डिलस का प्रकाश समुचित होता है। पशु के कूल्हे, अयन एवं थनों पर समुचित प्रकाश पड़ना चाहिए, जिससे उनकी सफाई का निरीक्षण किया जा सके। आपरेटर एले के ऊपर (3.6–4.7 मीटर), 6–9 मीटर की दूरी पर स्थित, उचित संख्या में 100 वाट के बल्ब लगे रहने चाहिए।

बंद आवास (स्टाल/बार्न) की रचना योजना एवं निर्माण

यदि भैंसों की संख्या 10 से कम हो तो उन्हें एक पंक्ति में बांध कर रखा जा सकता है परन्तु अधिक संख्या में पशु होने पर उन्हें दो पंक्तियों में रखा जाता है। साधारणतः एक भवन में 80–100 भैंसों से अधिक नहीं रखनी चाहिए। दो पंक्तियों वाले गृह में पशुओं को मुंह सामने (फेस–टू–फेस) अथवा पूंछ से पूंछ (टेल–टू–टेल) पद्धति से बांध कर रखा जाता है। दोनों पद्धतियों के स्पष्ट लाभ हैं और एक पद्धति के लाभ दूसरी पद्धति की सीमायें हैं (चित्र 7.5 एवं 7.6)।

मुँह से मुँह पद्धति से लाभ

इसके निम्नलिखित लाभ हैं।

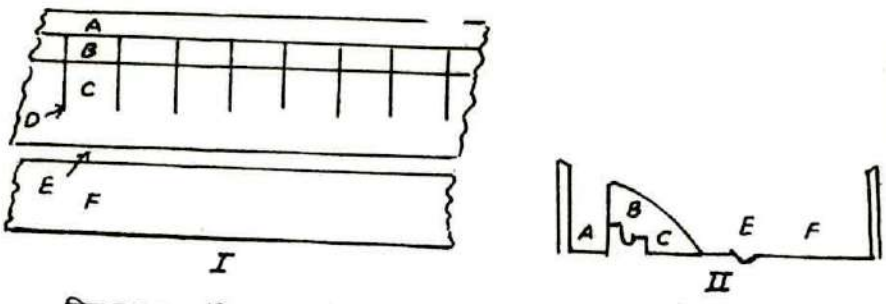

चित्र-7.5 एक पंक्ति दुग्धशाला का विन्यास और सेक्शन ॥ A चारा ले जाने की गली; B, नाद, C, पशु खडा होने का स्थान; D, स्टन्चियनों को विभक्त करने की दीवार या लोहे के पाइप; E, मल–नाली; और F, रास्ता

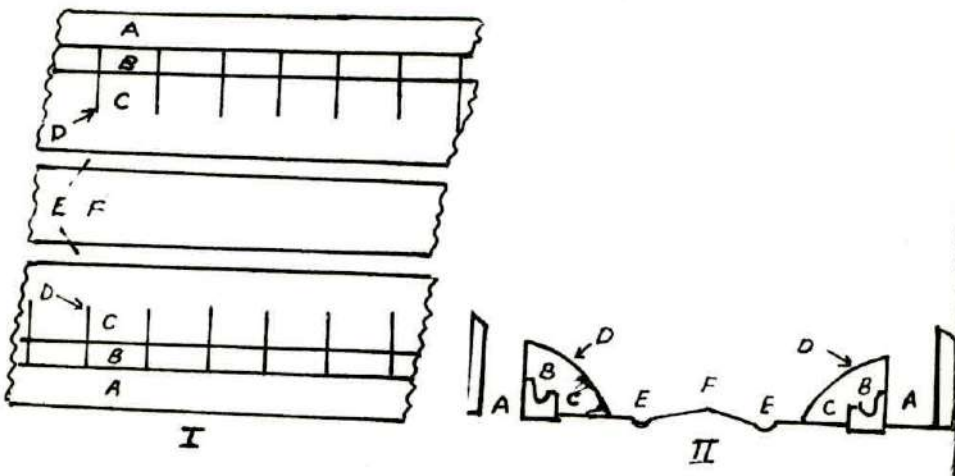

चित्र-7.6 पूंछ–से–पूंछ खडी भैंसों हेतु दो पंक्तियों वाली दुग्धशाला का विन्यास और सेक्शन ॥ (चित्र की भांति)

1. पशुओं के सिर आमने–सामने होने पर, आगंतुक को पशुओं का निरीक्षण अधिक लुभावना लगता है।

2. पशुओं का बाड़े में प्रवेश करना एवं बाहर निकलना अधिक सुगम होता है।

3 मूत्र एवं बिष्ठा वाली नालियों में सूर्य के प्रकाश के पड़ने से रोग के कीटाणुओं से बचाव होता है।

4. पशुओं को आहार, प्रदान करना सुगम रहता है।

5. संकरे बाड़े में पशुओं के खड़े होने की स्थिति, इस पद्धति में अधिक उपयुक्त होती है।

पूंछ से पूंछ पद्धति के लाभ

इस पद्धति के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं।

1. प्रति भैंस प्रति वर्ष 125–150 व्यक्ति घंटे (मैन ऑवर) की आवश्यकता होती है। पशुओं पर व्यय किये गये कुल श्रम का 15 प्रतिशत उनके सामने, 25 प्रतिशत बाड़े के अन्य भागों एवं दूध गृह में और शेष 60 प्रतिशत पशु के पिछले भाग पर व्यय होता है। इस प्रकार पशु के पिछले भाग पर अग्रिम भाग की अपेक्षा चार गुना अधिक समय व्यय होता है।

2. पशुओं की सफाई करते समय अथवा दूध निकालते समय, बाड़े के मध्य का स्थान (ऐली) बहुत सहायक होता है।

3. एक पशु से दूसरे पशु को रोग लगने की कम संभावना रहती है।

4. बाहर की ओर मुंह होने से पशु अधिक मात्रा में स्वच्छ वायु प्राप्त कर सकता है।

5. दूध निकालने के कार्य का निरीक्षण अधिक प्रभावकारी ढंग से किया जा सकता है।

6. पशु के पिछले भाग के रोग अथवा अन्य असामान्यता को शीघ्र ही ज्ञात किया जा सकता है।

सहायक भवन

सहायक भवनों की आवश्यकता फार्म के प्रकार एवं आकार पर निर्भर करती है। यहां पर अत्यधिक महत्वपूर्ण सहायक भवनों का ही वर्णन किया गया है।

भंडारण भवन

फार्म पर उत्पन्न होने वाले दूध एवं दूध पदार्थों (मावा, चीज, घी आदि) यंत्रों एवं खाद्य पदार्थों के भंडारण करने के लिए इन सहायक भवनों की आवश्यकता होती है।

अनाज भंडारण

दाना मिश्रण में काम आने वाले खाद्य पदार्थों की मात्रा, फार्म पर रखे गये पशुओं की संख्या, एक बार में क्रय किये जाने वाले अनाज की मात्रा के अनुसार भंडारण भवन के आकार को निश्चय किया जाता है। एल्युमिनियम के कोठों में दाने का भंडारण किया जा सकता है परन्तु शीरे जैसे पदार्थों का भंडारण करने के लिए ईट एवं सीमेंट की टंकी की आवश्यकता है। प्रति वयस्क पशु 0.2 घन मीटर भंडारण आवश्यक है।

दूर स्थान पर मुख्य भंडारण अथवा केन्द्रीय भंडारण होना चाहिए जिसमें पर्याप्त मात्रा में अनाज, खल, चोकर आदि रखा जाता है। दाने का मिश्रण बना कर दुग्धशाला के बगल में छोटे भंडारण कक्ष में एक–दो दिन के लिए रखते हैं। भंडारण कक्ष में नमी न हो और चूहे भी न हों। भंडारण कक्ष में खाद्य सामग्री के अनुसार क्षमता होनी चाहिए (सारणी–7.3)।

चारों का भंडारण

चारों को शुष्क दशा में उदाहरणार्थ – 'हे' अथवा भूसे के रूप में तथा हरी दशा में साइलेज के रूप में भंडारित किया जा सकता है। इन चारों की आवश्यकता हरे चारों के उपलब्ध न होने अथवा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होने पर पड़ती है। इन चारों की मात्रा पशुओं की संख्या एवं फार्म पर हरे चारों की अनुपलब्धता के आधार पर निकाली जा सकती है।

सारणी-7.3 विभिन्न खाद्य पदार्थों के प्रति क्विंटल के लिए आवश्यक भंडारण स्थान

खाद्य–पदार्थ	भंडारण स्थान (घन मीटर)
खुली सूखी घास	1.6
गांठ बंधी सूखी घास	0.7
छोटे टुकड़ों वाली सूखी घास	0.6
खुला भूसा	3.0
गांठ बंधा भूसा	0.7
चोकर	0.5
अनाज एवं खल	0.17

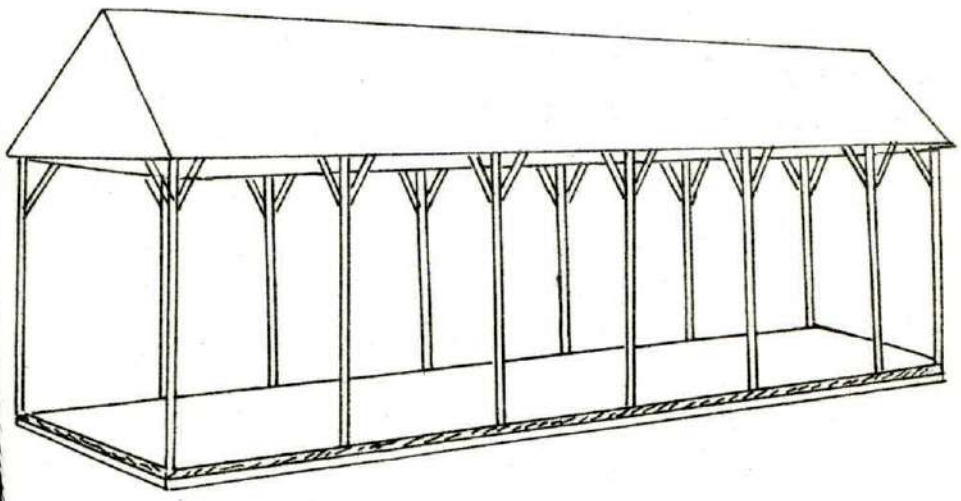

चित्र-7.? खुला फ्रेम हे भण्डार

(अ) 'हे'

'हे' को खुला, काट कर अथवा बंडल के रूप में भंडारित किया जा सकता है। इन रूपों में इनका भार क्रमशः 22, 55 एवं 66 कि.ग्रा. प्रति घनमीटर होता है। इस आधार पर और डेयरी में पशुओं की संख्या तथा 'हे' की आवश्यकता के अनुसार 'हे' भवन का आकार निर्धारित किया जा सकता है। 'हे' एवं साइलेज की मात्रा सारणी 7.4 के अनुसार निकाली जा सकती है। यह भंडारण मुख्य भवन से दूर होना चाहिए क्योंकि इसमें आग लगने की संभावना रहती है। 'हे' में अधिकतम नमी 20 प्रतिशत होनी चाहिए (चित्र 7.7)।

सारणी-7.4 मात्र चारा उपलब्ध होने पर प्रति दिन आवश्यक चारे की मात्रा

पशु	चारा (कि.ग्रा.)	प्रति पशु मात्रा	टिप्पणी
वयस्क पशुधन	'हे'	6	एक किलोग्राम 'हे' के स्थान
	साइलेज	14	पर तीन किलोग्राम
युवा पशुधन	'हे'	3	साइलेज प्रदान
	साइलेज	7	की जा सकती है।

(ब) साइलेज

रचना जिसमें साइलेज का भंडारण किया जाता है "साइलो" कहलाता है। साइलो अनेक प्रकार के होते हैं। जहां पर पानी का स्तर अधिक नीचे तक हो गड्ढा (ट्रेंच) साइलों सर्वोत्तम होता है। साइलो का आकार इस प्रकार निश्चित करना चाहिए कि लगभग 0.305 मीटर साइलेज नित्य हटाया जा सके जिससे साइलेज व्यर्थ में नष्ट न हो। सारणी 7.5 में विभिन्न मापों के साइलो की भंडारण क्षमता प्रदर्शित की गई है। साइलो विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं (चित्र 7.8, 7.9 एवं 7.10)।

यंत्र भंडारण

बड़े डेयरी फार्मों पर भी कभी–कभी यंत्रों को रखने के लिए भवन की कमी पाई गई है परन्तु जब कृषि अथवा अन्य यंत्र प्रयोग में न आ रहे हों

सारणी-7.5 गड्ढा (ट्रेंच साइलो) की भंडारण क्षमता

चौड़ाई निचला तल (मीटर)	गहराई ऊपरी तल (मीटर)	क्षमता (मीटर)	प्रति मीटर लंबाई (कुल साइलेज)
1.8	2.6	1.2	15.4
1.8	2.4	1.8	23.9
1.8	3.0	2.4	34.0
2.1	3.3	1.8	27.1
2.1	3.7	2.4	40.9
2.4	3.9	1.8	33.4
2.4	4.4	2.4	48.3

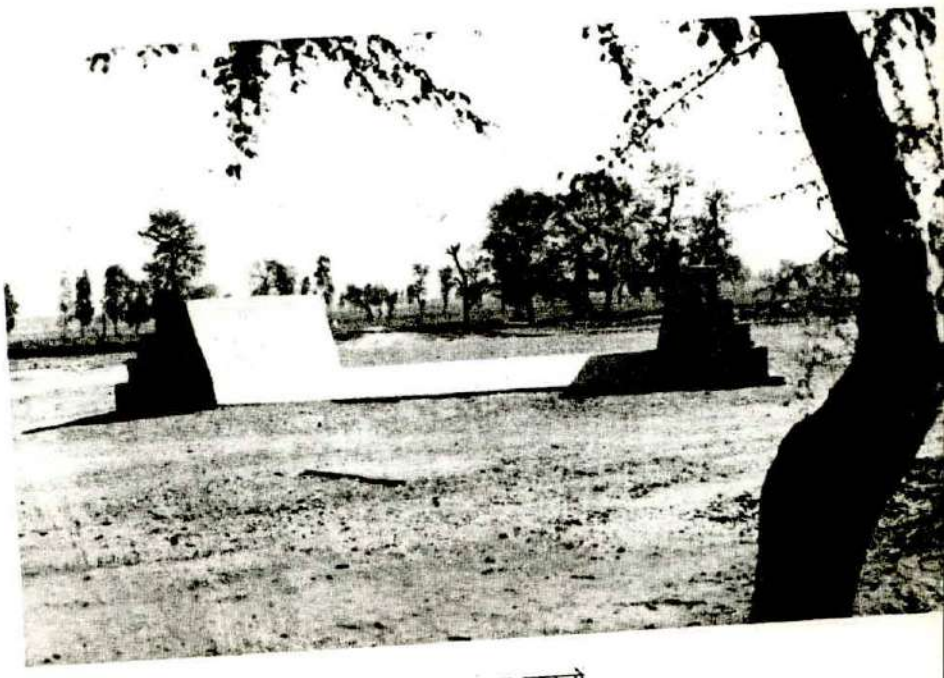

चित्र-7.8 बकर साइलो

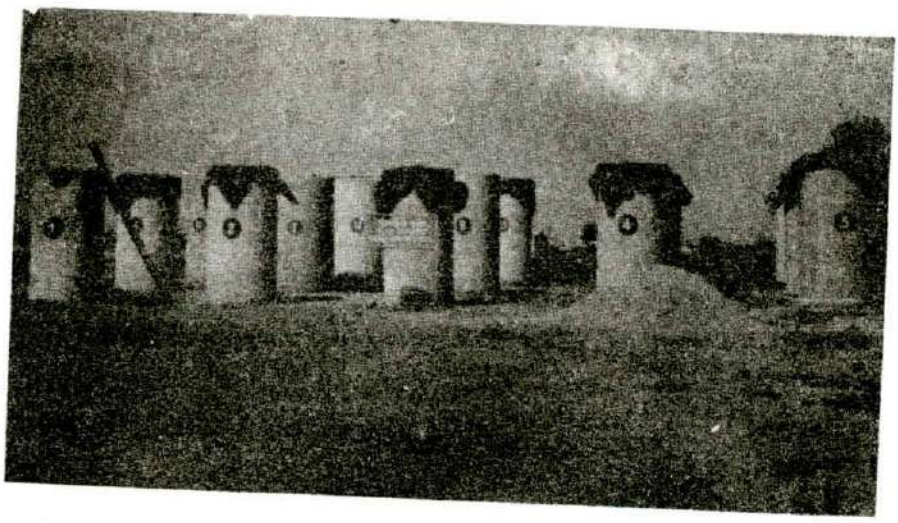

चित्र-7.9 टावर साइलो

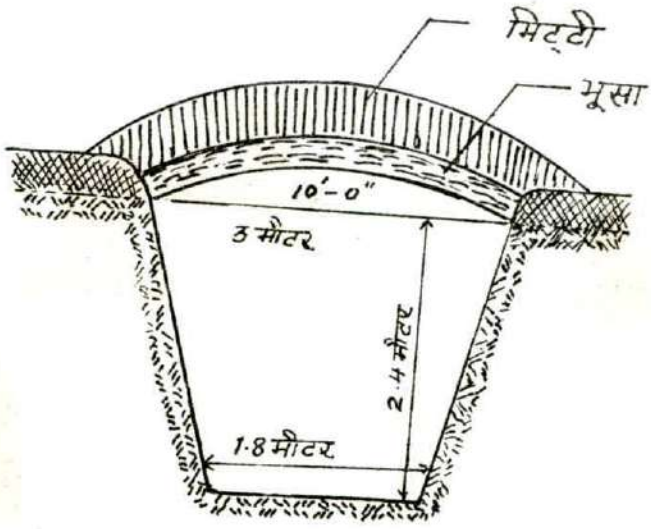

चित्र-7.10 गड्ढा साइलों का क्रास सेक्सन

अथवा प्रयोग के पश्चात उन्हें सुरक्षित स्थान पर रखना हो तो इसके लिए अलग से भवन होना चाहिए। वर्षा, धूप में यंत्रों को हानि होती है और उनका जीवन कम हो जाता है। हल्की छत वाला आयताकार भवन इसके लिए ठीक रहता है। इसका आकार यंत्रों की संख्या पर निर्भर करता है।

कार्यकर्त्ता कक्ष

एक फार्म पर यदि पशुओं की संख्या लगभग 100 है तो इस पर लगभग 10 फार्मकर्ताओं की आवश्यकता पड़ेगी। एक गृह जिसका आकार 3 x 4. 5 मीटर हो, जिसके साथ स्नानागार एवं शौचालय लगा हुआ हो, उपर्युक्त कार्यकर्त्ताओं के लिए पर्याप्त होगा।

खाद का भंडारण

भूमि में फैलाने के पूर्व खाद को 6–8 सप्ताहों तक गड्ढों में रखा जाता है। इस समय में प्रति पशु लगभग 10 क्विंटल खाद प्राप्त होगी, जिसका गड्ढे में भंडारण किया जाना है। एक घन मीटर आयतन में 4.5 क्विंटल खाद रखी जा सकती है। अतः प्रति पशु लगभग 2.2 घन मीटर भंडारण स्थान की और युवा पशु के लिए लगभग आधे स्थान भंडारण की आवश्यकता होगी। गड्ढे को वर्षा के पानी से छत बना कर बचा लेने से नाइट्रोजन की हानि नहीं होती है।

बाड़ (फेन्सिंग)

विभिन्न भवनों को बाहरी पशुओं आदि से बचाने के लिए बाड़ लगाने की आवश्यकता होती है। इसके लिए सादा तार, चिकिन तार अथवा कांटेदार तार लगाये जाते हैं परन्तु कांटेदार तारों से पशुओं को चोट लगने की संभावना रहती है। लकड़ी के तख्ते, लोहे के पाइप, ईंट एवं पत्थरों से बाड़ बनाई जा सकती है। विद्युत बाड़ यद्यपि सर्वोत्तम है परंतु विद्युत प्रवाह न रहने पर यह प्रभावी नहीं होती।

पशु पकड़ने का यार्ड

पशु–फार्मों पर अनेक बार पशुओं को एकत्रित करने की आवश्यकता होती है क्योंकि उनका भार ज्ञात करना होता है अथवा टीका लगाना पड़ता है अथवा सींग रोंधना अथवा बधिया करना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति

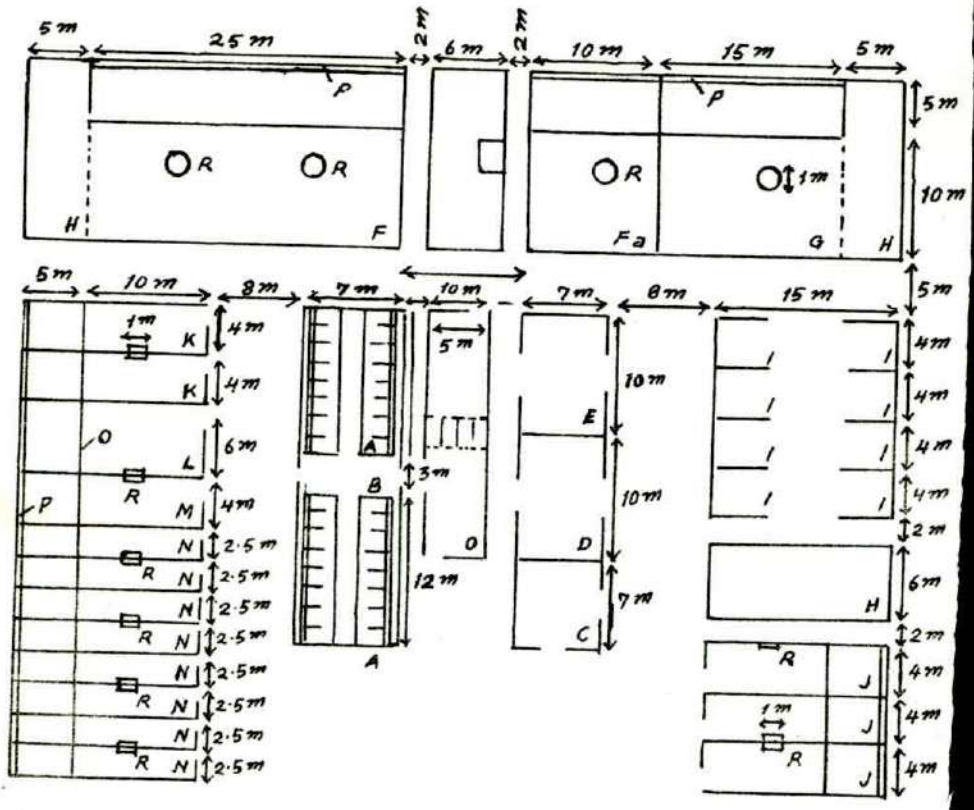

चित्र-7.11 सौ भैंसों के डेयरी फार्म का विन्यास (ले आउट)
A–दुग्धशाला, B–दुग्धघर, C–कार्यालय, D–गर्भाधान प्रयोगशाला, E–भण्डारण, G–दुधारू भैंसों का बाडा, Fa–एक तिहाई सर्वोत्तम दुधारू भैंसो का बाडा, G–शुष्क भैंसो का बाडा, H–हे./भूसा एव भैंसागाडी अथवा ट्रेक्टर का शेड, I–ट्रेच/टावर/बंकर साइलो, J–सांडों के बाडे, K–छोटे बछडों हेतु बाडे, L–बडे बछडों हेतु बाडे, M–ओसरो हेतु बाडे, N–प्रसूति कक्ष, O–पशु पकडने हेतु बाडा, P–नाद, Q–मलनाली, R–जलनाद

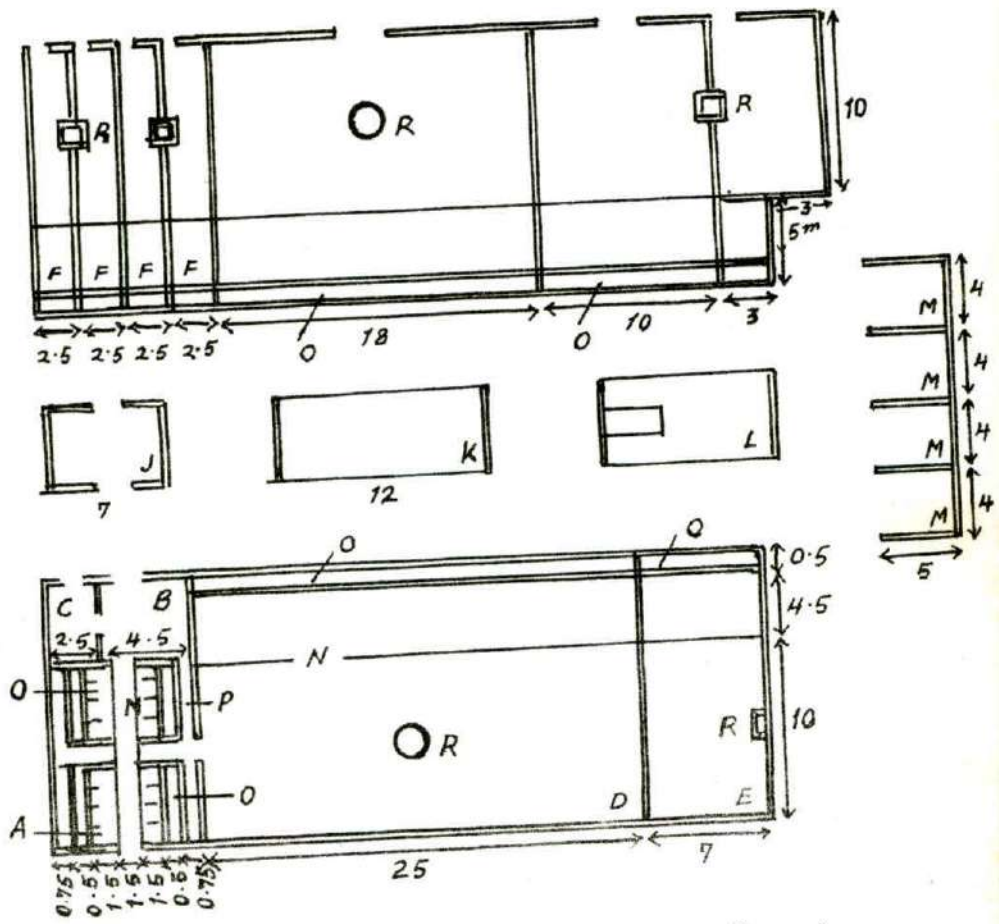

चित्र-7.12 पचास भैंसों के डेयरी फार्म का भवन विन्यास (ले आउट)
A–दुग्धशाला, B–दुग्धघर, C–कार्यालय, D–दुधारू भैंसों का बाडा, E–छोटे बछडों हेतु बाडा, G–प्रसूति कक्ष, G–शुष्क भैंसों हेतु बाडा, H–बडे बछडों हेतु बाडा, I–सांड बाडा, J–भण्डारण, K–हे/मूसा एवं बैलगाडी/टैक्टर शेड, L–चारा काटने का शेड M–ट्रैंच/टावर/बंकर साइलो, N–मलनाली, O–नाद, P–चारा ले जाने का मार्ग, Q–स्टैन्चियन, R–जलनाद (मीटरों में)

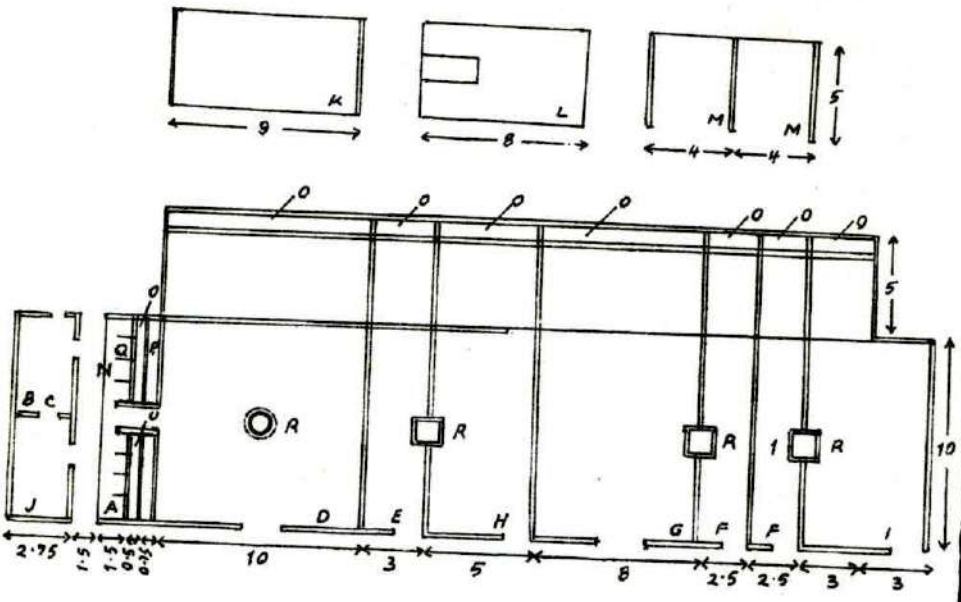

चित्र-7.13 पचीस भैंसों के आवास हेतु भवन विन्यास (ले आउट)
A–दुग्धशाला, B/C दुग्ध एवं रिकार्ड गृह, D–दुधारू भैंसों का बाडा, E–शावों को बाडा, F–प्रसूति गृह, G–सूखी भैंसों/बैलों का बाडा, H–बडे शावकों का बाडा, I–साडो का बाडा, J–भण्डारण, K–हे/मूसा बैलगाडी/टैक्ट्रर शेड, L–चारा काटने का शेड M–साइलो गड्ढा, N–उथली मल नाली, O–नांद, P–आहार ले जाने का मार्ग, Q–स्टैन्चियन, R–जलनाद (माप मीटरों में)

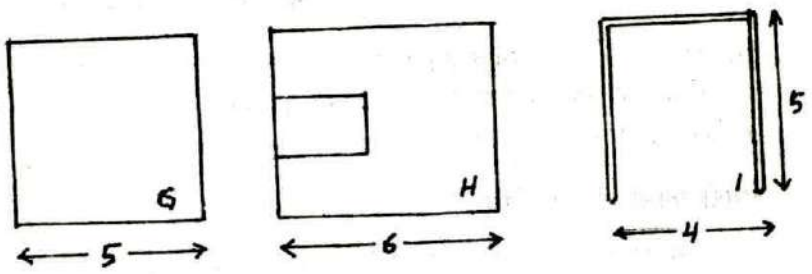

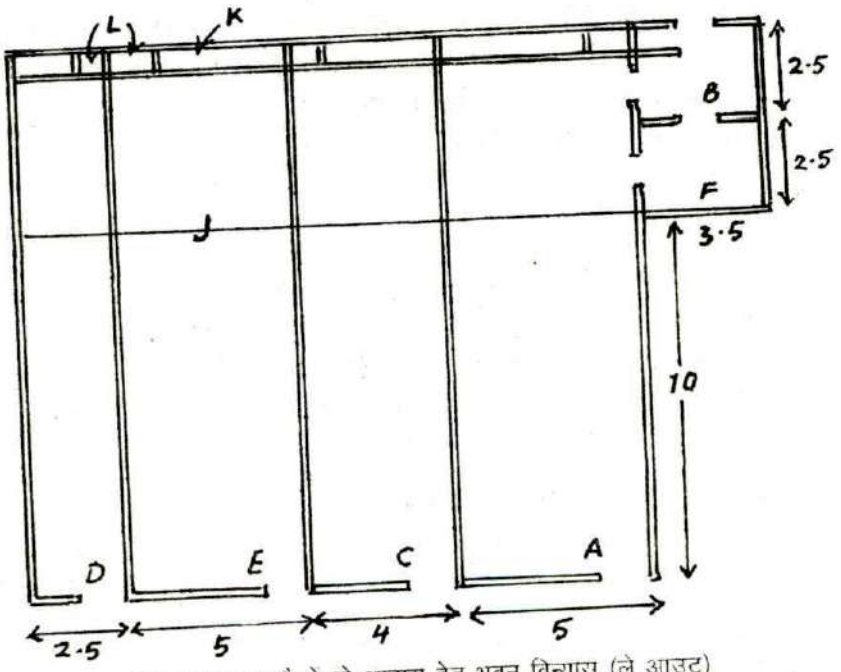

चित्र-7.14 दस भैंसो के आवास हेतु भवन विन्यास (ले आउट)
A–दुधारू भैंसो के रहने एवं दूध निकालने का बाडा, B दुग्धघर तथा रिकार्ड रखने का कमरा, C–बछडों का बाडा, D–प्रसूति कक्ष, E–सूखी भैंसो का बाडा, F–भण्डार, G–हे/भूसा/भैंसा गाडी शेड, चारा काटने का शेड, I–साइलो, J–मलनाली, K–नाद, L–जलनाद (माप मीटरों में)

हेतु एक लचीला यार्ड बनाते हैं। यार्ड के विभिन्न बाडों का परिमाण पशुओं की संख्या पर निर्भर करता है। छोटे फार्मों पर पशुओं को नियंत्रित करने के लिए साधारण ट्रेविस या पशु कक्ष पर्याप्त होता है।

डेयरी फार्मों के रेखाचित्र

निर्माण कराने से पूर्व डेयरी फार्मों के रेखाचित्र तैयार कर लेने चाहिए। ये चित्र संभावित आय पर आधारित होते हैं। प्रारंभ में थोड़े पशुओं से फार्म चलाना चाहिए और उनका निर्माण अर्द्ध स्थाई वस्तुओं से भी किया जा सकता है परन्तु जैसे–जैसे अनुभव बढ़ता जाए तथा अधिक आय की संभावना दिखाई दे, पशुओं की संख्या बढ़ाई जा सकती है एवं अधिक भवनों का निर्माण कराया जा सकता है। डेयरी व्यवसाय की नींव दृढ़ होने के साथ अधिक टिकाऊ भवन सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। विभिन्न पशु संख्या वाले डेयरी भवनों के उचित नक्शे क्रमशः चित्र 7.11–7.14 में दिये गये हैं। आवश्यकतानुसार उनमें से किसी को भी अपनाया जा सकता है।

भारत में अधिकतर कृषक मिश्रित खेती करते हैं अतः भारवाही पशुओं के अतिरिक्त एक–दो दूध वाले पशु भी रहते हैं, छोटे कृषक अधिक मूल्यवान गृहों का निर्माण न कराके पुराने गृहों में ही पशुओं को रख सकते हैं परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आवास स्वच्छ, शुष्क और हवादार हों तथा उनमें संवात का उचित प्रबंधन हो।

भवन निर्माण सामग्री एवं निर्माण

डेयरी भवनों के निर्माण करने के लिए सामग्री का चयन करते समय सामग्री की सुगम प्राप्ति, टिकाऊपन, मूल्य आदि अनेक बातों का ध्यान रखना चाहिए। भवन निर्माण में प्रयोग की जाने वाली सामग्री का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

लकड़ी (टिंबर)

लकड़ी का प्रयोग दरवाजों, खिड़कियों, छत आदि के बनाने में किया जाता है। लकड़ी खोखली न हो, उसमें दरारें न हों तथा गांठें भी नहीं होनी चाहिए। यद्यपि शीशम, आम, नीम, जामुन, टीक आदि की लकड़ी भवन निर्माण के कार्य में लाई जाती है परंतु उत्तम कोटि की स्थानीय प्राप्त लकड़ी का प्रयोग

किया जाना चाहिए। सड़न से बचाव के लिए लकड़ी को नम स्थान पर नहीं रखना चाहिए।

ईंटें

निर्माण एवं प्राप्ति की सुविधा के कारण ईंटें अत्यधिक ख्याति प्राप्त भवन निर्माण सामग्री है। अच्छी क्वालिटी की ईंटें रंग में गहरा लाल अथवा तांबा रंग की होती है और आपस में टकराने पर स्पष्ट घंटी बजने की आवाज देती हैं। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में कच्ची ईंटें, थोड़े समय तक ही चलती हैं।

गारा (मोरटार)

ईंटों से निर्माण करने पर उन्हें जोड़ने के लिए गारे की आवश्यकता पड़ती है। गारा मिट्टी, सीमेंट अथवा चूने का हो सकता है। यदि अधिक शक्तिशाली निर्माण की आवश्यकता हो तो मिट्टी के गारे का प्रयोग नहीं करना चाहिए। सीमेंट का गारा तैयार करने के लिए सीमेंट एवं बालू को सामान्यतः 1:5–8 अनुपात में मिला कर बनाया जाता है। अधिक दृढ़ निर्माण की आवश्यकता होने पर बालू का अनुपात कम कर देते हैं। मिश्रण को प्रयोग करने के तुरंत पूर्व ही तैयार करना चाहिए। यदि चूना स्थानीय तौर पर उपलब्ध हो तो इसके साथ बालू के 1½–2 भाग मिला कर गारा बनाया जा सकता है। बालू और चूने को मिल में पीस कर पानी मिलाकर पेस्ट के रूप में बदल कर प्रयोग किया जाता है। मिट्टी को 12 घंटे पूर्व भिगोना पड़ता है और पर्याप्त पानी मिलाकर पेस्ट बनाया जाता है।

कंक्रीट

मोटे कंकड़ एवं टूटे पत्थरों के टुकड़ों के मिश्रण को कंक्रीट कहते हैं। बारीक कंक्रीट में बालू अथवा सुरखी और सीमेंट अथवा चूना आता है। चिपकाने वाले पदार्थ के प्रयोग किये जाने के अनुरूप कंक्रीट को सीमेंट कंक्रीट अथवा चूना कंक्रीट कहते हैं। नींव फर्श, लिंटल्स आदि में इसका प्रयोग किया जाता है। कंकड के टुकडों का आकार 60 मि.मी. से 9 मि.मी. तक पाया जाता है। साधारण नींव के लिए आयतन के आधार पर 1 भाग सीमेंट, 2 भाग बालू एवं 6 भाग कंकड को मिला कर मिश्रण बनाया जाता है। फर्श के लिए जहाँ अधिक शक्ति वाली सामग्री चाहिए, उपर्युक्त का अनुपात क्रमशः 1:1:1½ कर दिया जाता है। मिश्रण बनाने के तुरंत पश्चात् प्रयोग कर लेना चाहिए। इसे

गीला रखना चाहिए और जब तक भली–भांति पक न जाए, छेड़ना नहीं चाहिए।

नींव

जब भवन का नक्शा अंतिम रूप से तैयार कर लिया जाए तो नींव खुदाने के लिए भूमि पर चिन्ह लगाना चाहिए। नींव की गहराई मृदा तथा रचना किये जाने वाले भवन पर निर्भर करती है। उचित गहराई तथा चौड़ाई तक नींव खोदने के पश्चात तली को ठीक से साफ करके उसमें पानी डालकर दृढ़ करना चाहिए। नींव में कंक्रीट 15 से.मी. की तहों में डालना चाहिए और उसे भली–भांति दबाना चाहिए। कंक्रीट की कुल लंबाई 30 से.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिए। नींव के दोनों ओर लगभग 7.5 से.मी. स्थान को छोड़ कर ईंटें अथवा पत्थर की दीवार बनानी चाहिए। भूमि स्तर के लगभग 60 से.मी. ऊँचाई तक नींव की दीवार को ऊंचा रखना चाहिए।

सारणी-7.6 विभिन्न प्रकार की मृदा वाली भूमि में नींव की गहराई एवं चौड़ाई (मीटर)

मृदा का प्रकार	नींव दीवार की विभिन्न ऊंचाई के लिए			
	नींव गहराई		नींव चौड़ाई	
	3.05	4.58	3.05	4.58
बालू	1.53	2.14	1.53	1.53
काली कपास	2.44	2.44	1.83	1.83
मोरम	1.22	1.22	1.22	1.22
बालू पत्थर	0.31	0.31	0.92	0.92

दीवारें

बांसों, लकड़ी के तख्तों, ईंट, पत्थर तथा मिट्टी आदि से दीवारें बनाई जा सकती हैं। इसके लिए उनकी उपयोगता, मूल्य, स्थानीय उपलब्धता आदि बातों को ध्यान में रखना होगा। बांसों की चिपन्टों से दीवार बनाने के पश्चात उस पर मिट्टी का प्लास्टर किया जाता है। धूप में सुखा कर बनाई गई ईंटों से दीवार बनाने पर मिट्टी के गारे की सहायता से दो ईंटों की चौड़ाई वाली

दीवार बनाई जाती है। इस प्रकार की दीवारें अस्थाई होती हैं। स्थाई रचना के लिए ईट एवं सीमेंट तथा चूना के गारे से बनी दीवारें अधिक टिकाऊ होती हैं। यदि दीवार की ऊंचाई 3 मीटर से कम हो तो दीवार की चौड़ाई 22.5 से.मी. पर्याप्त रहती है। दीवार की ऊंचाई अधिक होने पर उसकी चौड़ाई 35 से.मी. तक बढ़ाई जा सकती है। दीवारें चिकनी हों जिससे उन पर धूल एकत्रित न हो।

छत को सहारा देने वाली तथा पशु के सीधे संपर्क में आने वाली दीवारें बहुत दृढ़ होनी चाहिए। कंक्रीट की दीवारें जिनमें लंबाई तथा ऊँचाई में लोहे की छड़ें पड़ी हों, दृढ़ होती हैं। बड़े पशुओं के आवासों की दीवारें निर्बल होने से बार-बार गिरती हैं और उन पर अधिक व्यय होता है।

फर्श

फर्श दृढ और कुछ खुरदरा होना चाहिए। फर्श को कंक्रीट का बनाया जा सकता है तथा पक्की ईट का भी हो सकता है। ईटों का फर्श खुले क्षेत्र के लिए अच्छा रहता है जहां जल्दी-जल्दी धुलाई की आवश्यकता नहीं होती है। इसके लिए भूमि को खोद कर एकसार कर लिया जाता है तथा पानी डाल कर समतल किया जाता है। इसके ऊपर बालू की लगभग 15 से.मी. तह बिछा दी जाती है और फिर ईटों को किनारे की ओर से बिछा कर लगभग 11 से.मी. सीमेंट कंक्रीट के अन्दर में दबा दिया जाता है। ईटों पर सीमेंट से प्वाइंटिंग कर दी जाती है। फर्श पर पानी न ठहरने पाये, इसके लिए 600 में 1 का ढाल दिया जाता है।

जहां जल्दी-जल्दी धुलाई की आवश्यकता होती है, फर्श सीमेंट एवं कंक्रीट का बनाया जाता है। फर्श डालने वाले स्थान को समतल करके उस पर बालू की तह डाल दी जाती है। इसके ऊपर कंकड़, सीमेंट एवं कंक्रीट (1:1-1½) का मिश्रण लगभग 25 मि.मी. मोटाई में डाल देते हैं। इस आधार के नम रहते ही, इसके ऊपर सीमेंट एवं बालू (1:2) का गारा बिछाया जाता है। फर्श की ऊपरी सतह को अवश्यकतानुसार चिकना अथवा खुरदरा बनाया जा सकता है। लकड़ी के यंत्र से फर्श समतल करने से खुरदुरा तथा स्टाल से चिकना होता है।

फर्श को दृढ़ कुर्सी (पिलिन्थ) पर बनाया जाता है। कुर्सी की ऊंचाई निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है भूमि की किस्म, बाड़े की स्थिति एवं

महत्व, वृष्टि, नमी, जल निकास तथा कीड़े और बिच्छू आदि से बचाव आदि। साधारणतः बाड़ों की कुर्सी की ऊंचाई 45-90 सेंटीमीटर होती है। अधिक वर्षा एवं नमी वाले क्षेत्रों में ऊंचाई बढ़ाई जा सकती है। निकास नाली की भांति फर्श की ढाल भी 50 में 1 से 60 में 1 की दर से ही हो सकती है जिससे धुलाई के पश्चात पानी सुगमता से निकल जाए। सीमेंट कंक्रीट की फर्श चिकनी नहीं होनी चाहिए, इससे पशुओं के फिसलने का भय रहता है। इसको खुरदरा बनाने के लिए गीली सतह पर बरफी जाली अथवा तार की जाली को दबा कर हटा दिया जाता है। नग्न ईटों की बनी फर्श पर्याप्त रूप से खुरदरी होती है और इस पर पशु बहुत कम फिसलते हैं।

छत

आवास में पशुओं को वर्षा, सर्द एवं उष्ण वायु से बचाने के लिए छत की आवश्यकता होती है। छत देखने में सुंदर, हलकी और टिकाऊ होनी चाहिए। छत इस प्रकार के पदार्थ की बनी होनी चाहिए कि गर्मी, सर्दी एवं वर्षा से पशुओं का बचाव हो सके। इसके लिए ईट, टाइल्स, लोहा एवं ऐस्बेस्टोस की चद्दरों का प्रयोग किया जा सकता है। इसके साथ ही छत ऐसी होनी चाहिए कि बाड़े की नमी संघनित न हो। छत ताप की कुचालक भी होनी चाहिए।

छतें दो प्रकार की होती हैं। 1. ढालू और 2. चपटी। कम वर्षा वाले सूखे क्षेत्रों में चपटी छतें अधिक होती हैं। मध्यम से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में ढालू छतें बनानी चाहिए। जी.सी.आई., एस्बेस्टस एवं अल्युमिनियम की चद्दरों की छतों के अनेक लाभ हैं। ये छतें अग्नि प्रतिरोधक एवं पर्याप्त टिकाऊ होती हैं। इन चद्दरों द्वारा छतें बहुत कम समय में तैयार की जा सकती हैं। ये सफाई के लिए अधिक उपयुक्त तथा प्रयोग के सम्पूर्ण समय की दृष्टि से सस्ती होती हैं। चद्दरों के हल्के होने के कारण छत को अपने स्थान पर रखने के लिए कम भारी संरचनाओं की आवश्यकता पड़ती है।

लोहे तथा एल्यूमिनियम की चद्दरों से छत बनाने से वे ग्रीष्म ऋतु में शीघ्र ही गर्म तथा शीत ऋतु में शीघ्र ही ठंडी हो जाती हैं क्योंकि वे ताप की सुचालक हैं। एल्यूमिनियम की चद्दरों से सूर्य की किरणों के बड़ी मात्रा में परावर्तन (रिफ्लेक्सन) हो जाने से, उन्हें अपेक्षाकृत अच्छा माना जाता है। धातु की चद्दरों से छत बनाने पर छत को लगभग 30 से.मी. मोटी छप्पर से

ढकना चाहिए। छत के ऊपर की ओर सफेद पेंट तथा अंदर की ओर काला पेंट करना चाहिए। तेज वायु में छत को उखड़ जाने से बचाने के लिए, उन्हें कील से फ्रेम के साथ भली–भांति जोडना चाहिए।

सीमेंट एस्वेस्टस की चद्दरें छत के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं क्योंकि वे सुगमता से उपलब्ध होती हैं, उनमें टिकाऊपन है तथा वे आर्थिक दृष्टि से उपयोगी भी हैं। ये चद्दरें ताप की कुचालक होने के कारण ग्रीष्म ऋतु में गर्म तथा शीत ऋतु में शीघ्र ठंडी नहीं होती हैं। इस प्रकार की छत में 5 पर 1 का ढाल होना चाहिए।

यद्यपि छप्पर की छत पशुओं को सर्द एवं ग्रीष्म ऋतु में आरामप्रद होती हैं, वर्षा से सुरक्षा भी करती हैं तथा आर्थिक दृष्टि से उपयोगी भी हैं परंतु अपेक्षाकृत कम समय तक चलने और बार–बार मरम्मत करने के कारण लम्बी अवधि के पश्चात महंगी पडती हैं। इस प्रकार की छतों में आग की दुर्घटना का भी भय रहता है। छप्पर की छत बनाने के लिए पहले बांस की चपन्टों का फ्रेम बनाना पडता है और इसके ऊपर 7.5 से.मी. की तहों में घास आदि पदार्थों को डाल कर लगभग 30 से.मी. की मोटाई का छप्पर डाला जाता है। घास आदि को ठीक से दबाये रखने के लिए लगभग 0.6 मीटर की दूरी पर बांस की चिपन्टें लगाई जाती हैं। वर्षा के पानी से भली–भांति बचाव करने के लिए छप्पर के ऊपर से चिकनी मिट्टी एवं भूसा मिला मिश्रण का लेप कर देते हैं। छत का ढाल 35° होना चाहिए। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में छतें अधिक ढालू होती हैं।

छत एक अथवा दो ढाल की हो सकती हैं। एक ढाल की छत को झोपड़ी और 'हे' शेड के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसका चौड़ाई में फैलाव (बगल की दीवारों के मध्य दूरी) 3 मीटर होती है। दो ढाल की छतें अधिक फैलाव वाले मुख्य बाड़ों में होती हैं। एक ढाल वाली छत में एक ओर की दीवार (अथवा खंभों) में से एक ओर की दीवार की अपेक्षा दूसरे ओर की दीवार अधिक ऊंची होती है और कड़ियां आमने–सामने की दीवारों पर रखी रहती हैं (चित्र 7.15)।

दो ढाल वाली छतों में कैंचियों की आवश्यकता पडती है। एक तानदार दुपाखी छत (चित्र 7.16) अथवा गलपट्ट–धरन छत (चित्र 7.17) ऐसे बाडे के लिए ठीक होती है जिसका फैलाव 4–6 मीटर हो। इससे अधिक फैलाव (चौड़ाई) वाले बाड़े के लिए किंग पोस्ट छत कैंची (चित्र 7.18) प्रयोग की जाती है।

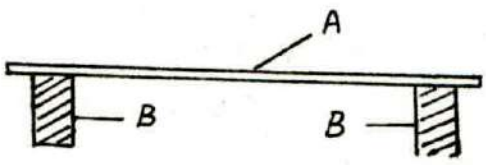

चित्र-7.15 एक ढाल की छत 1A एस्वेस्टास की चद्दरे, B छत संभालने वाले खम्भे

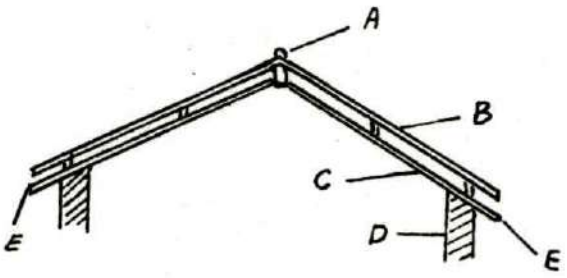

चित्र-7.16 पूर्ण रूप से बन्द पुपारवी छत A छत का जोड; B निर्माण की वस्तु; C ट्रस या कैंची, D खम्भे, E ईव्स

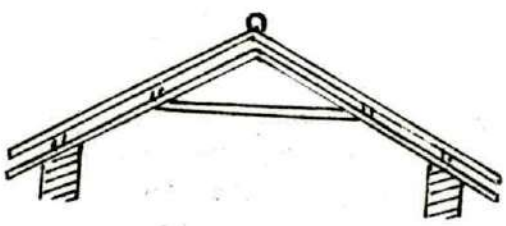

चित्र-7.17 गलपट्ट धरनी की कैंची छत

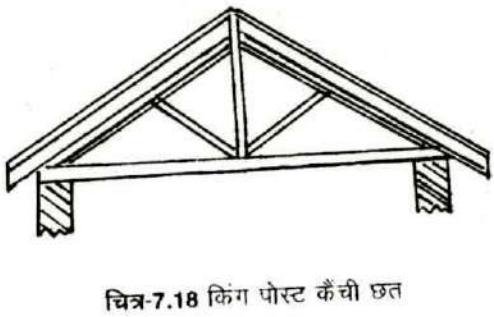

चित्र-7.18 किंग पोस्ट कैंची छत

खुले आवास की छत मुख्यतः खम्भों पर आश्रित होती है। खम्भों को ईटों अथवा पत्थरों या ढाले गये लोहे की पाइपों अथवा दृढ़ लकड़ी के खम्भों के द्वारा बनाया जाता है। ईटों के खम्भे को सीमेंट के गारे से जोड़ा जाता है। बाड़े की चौड़ाई तथा छत के प्रकार के अनुरूप प्रत्येक खम्भे को 2–3 मीटर के अंतर पर खड़ा किया जाता है। खम्भों की चौड़ाई अथवा व्यास निम्नलिखित होता है।

लोहे के पाइप = व्यास 10 से.मी.
पत्थर के खंभे = 10 x 10 से.मी. अथवा 8 x 15 से.मी.
इमारती लकड़ी के खम्भे = आयताकार – 10 x 10 से.मी. अथवा
= गोल – व्यास 15 से.मी.
ईटों के खंभे = 45 x 35 से.मी. अथवा
22 68 x 11.34 से.मी.
(ईटों की 2 लंबाई और चौड़ाई)

आहार नांद

खुले आवासों में उचित नांद स्थान प्राप्त होने पर ही पशुओं को उचित मात्रा में आहार प्राप्त हो सकता है। यद्यपि नांद को बाड़े के खुले अथवा ढके भाग में बनाया जा सकता है परन्तु ढके भाग में बनाया जाना अधिक उपयुक्त

है। नांद प्रति पशु न बनाकर कई पशुओं के लिए लगातार (साझा) होना चाहिए, इससे कम स्थान में अधिक पशु आहार प्राप्त कर सकते हैं। नांद को पत्थर फलकों, लकड़ी की पेटियों अथवा ईटों (सीमेंट अथवा चूने के गारे से जोड़ कर बनाया जा सकता है। नांद की सतह चिकनी होनी चाहिए। नांद के सभी नुकीले कोनों को गोल अथवा चिकना बना देना चाहिए। वयस्क तथा युवा पशुओं के लिए प्रयोग की जाने वाली नादें चित्र 7.19 एवं 7.20 में प्रदर्शित हैं।

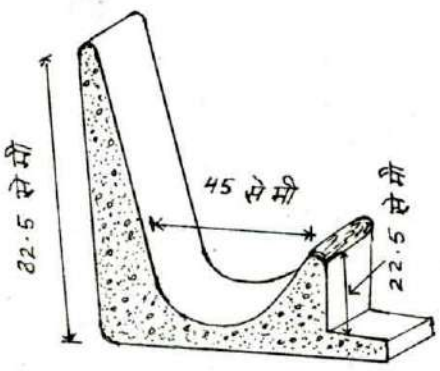

चित्र-7.19 युवा पशुओं की नीची नाद

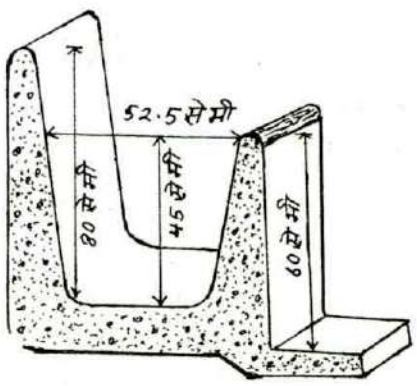

चित्र-7.20 वयस्क पशु की नांद

जल नांद अथवा टंकी

जल नांद को सीमेंट, कंक्रीट, ईटों (सीमेंट गारे से जोड़ कर) अथवा पत्थर फलकों (सीमेंट से जोड़ कर) बनाया जाता है। बड़े बाड़ों में पानी की टंकी गोल अथवा आयताकार होती है। टंकियां आवसा में उचित स्थान पर स्थित होनी चाहिए। टंकी से 2 मीटर की दूरी तक के क्षेत्र का फर्श कंक्रीट का बना होना चाहिए जिससे उसे सुगमता से साफ किया जा सके तथा कीचड़ न उठे (चित्र–7.21)।

नल

प्रत्येक जल नांद में एक नल होना चाहिए। नल से निकलने वाले पानी की मात्रा को तैरने वाले वाल्व (फ्लोट बाल्व) द्वारा नियंत्रित किया जाता है। नल में टोंटी लगाना परमावश्यक नहीं है। जैसे–जैसे पानी पीन से टंकी में पानी का स्तर गिरता है, नल से पानी निकल कर टंकी को भरता रहता है। बाडे के उपयुक्त स्थानों पर सफाई के लिए नल लगे रहने चाहिए।

निकास नली

खुले आवास गृहों के लिए खुली नालियाँ उपयुक्त होती हैं। निकास नाली बाडे के ढके एवं खुले स्थान के मिलाप वाले स्थान पर स्थित होनी चाहिए। नालियों की चौड़ाई 3–40 से.मी. और ढाल 40 में 1 होता है। छिछली यू (U) के आकार की 6–8 से.मी. गहराई वाली नाली, तेज कोनों वाली (आड़ी काट में आयताकार अथवा तिकोनी) नाली की अपेक्षा अच्छी होती है। पंक्ति में स्थित बाड़ों की नालियों को दीवार में छिद्र करके एक बना दिया जाता है और उन्हें पशु गृह में बाहर स्थित गड्ढे अथवा सीधे फसल उगाये जाने वाले खेतों से मिला देते हैं।

दरवाजे एवं मार्ग

फार्म पर प्रायः दो प्रकार के दरवाजे होते हैं। 1. प्रत्येक बाड़े में खुलने वाले और 2. फार्म घेरों और सड़कों के दरवाजे होते हैं। सडकों एवं घेरों के दरवाजे इतने चौड़े होते हैं कि उनके अंदर से भैंसा गाड़ी, ट्रक अथवा ट्रैक्टर निकल सके। इस प्रकार शेड़ों, बाड़ों अथवा घेरों अथवा फार्म की मुख्य सडक को जोड़ने के लिए मार्ग होते हैं। सामान्यतः विभिन्न फार्मों पर समान प्रकार के दरवाजे एवं मार्ग होते हैं (चित्र 7.22, सारणी 7.7)।

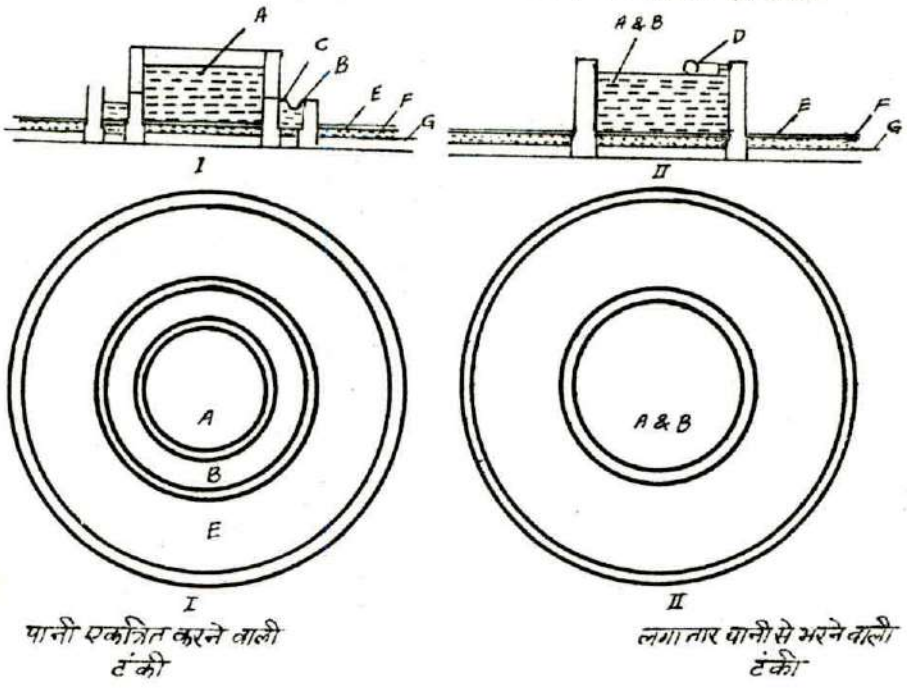

चित्र-7.21 A–पानी एकत्रित होने वाली टंकी, B–पानी पीने की टंकी, (A/B पानी एकत्रित एवं पीने के काम आने वाली टंकी), C–टोटी, D–फ्लोट कपाट वाली टोटी, E–प्लेट फार्म, F–मलनाली, G–भूमितल टंकी

सारणी-7.7 विभिन्न कार्यों हेतु दरवाजे एवं मार्ग

प्रकार	उपयोग	न्यूनतम चौड़ाई (मी.)	किस्म
नांद के साथ का चारा मार्ग	चारे की गाड़ी अथवा ट्रैक्टर ट्राली	1.5	रोड़ी
बाड़े में जाने वाले मार्ग	पशुओं को निकलने हेतु	1.2	कंकड़
फार्म सड़कें	ट्रक तथा ट्रैक्टरों हेतु	2.5	रोड़ी
बाड़ों के दरवाजे	प्रत्येक बाडे में	1.2	एक कब्जा
फार्म दरवाजे	फार्म में ट्रक तथा ट्रैक्टर ले जाने हेतु	2.5	दो कब्जे

दरवाजों को लोहा अथवा दृढ़ लकड़ी से बनाया जाता है। पशु फार्मों पर कब्जेदार दरवाजे अधिक अच्छे होते हैं (चित्र 7.22)।

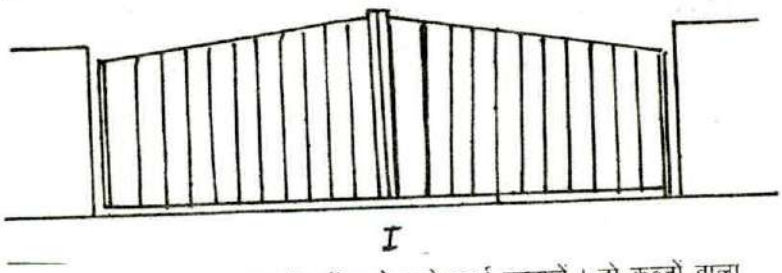

चित्र-7.22 साधारणतः उपयोग में आने वाले फार्म दरवाजें I. दो कब्जों वाला दरवाजा II. दो छडा वाला दरवाजा

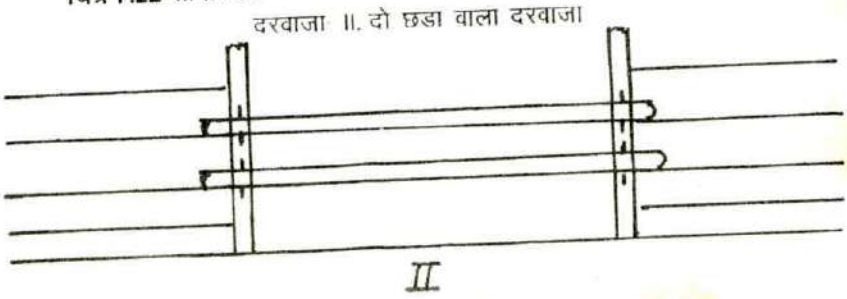

पद स्नान

पशुओं के पैरों के संक्रमण के बचाव के लिए पद स्नान कराया जाता है। पद स्नान की टंकी पैंदी में 3 x 3 मीटर तथा शिखर पर 12 x 4 मीटर (चित्र 7.23) होती है। इसकी गहराई लगभग 0.3 मीटर होती है तथा इसे प्रवेश द्वारा पर बनाया जाता है। पद स्नान की टंकी में कीटाणुनाशक घोल भरा रहता है। पशु, व्यक्ति एवं गाड़ियां खींचने वाले पशु, फार्म में प्रवेश करते अथवा बाहर जाते समय इस टंकी में भरे घोल के अंदर से निकलते हैं जिससे पशुओं के खुर, व्यक्तियों के जूतों एवं गाडियों के टायरों पर घोल लग जाता है और वे जीवाणुओं से मुक्त हो जाते हैं।

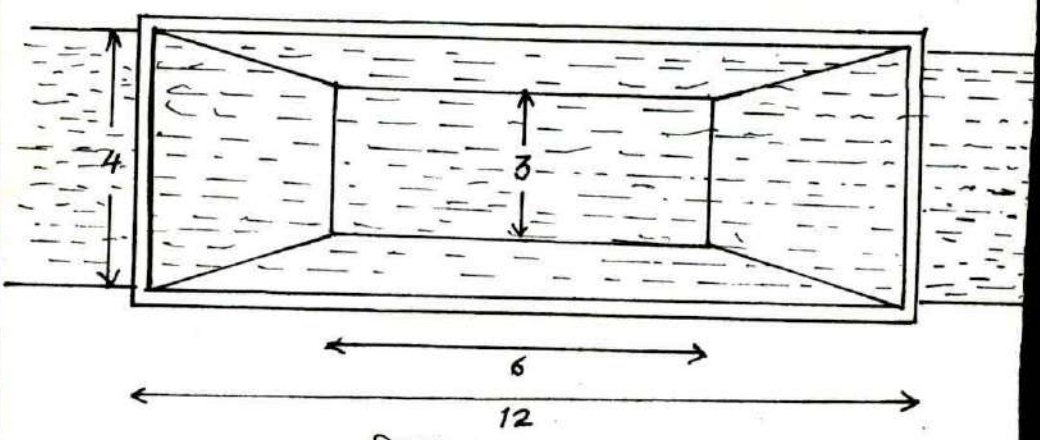

चित्र-7.23 पाद स्नान की टंकी

स्प्रे प्लेटफार्म

इसका आकार 2.5 x 1.8 मीटर होता है। प्लेटफार्म के एक ओर 2.5 से.मी. की ढाल होती है। फुहार (फव्वारा) टोंटियों को प्लेटफार्म के 2 मी. की ऊंचाई पर स्थित किया जाता है। फिसलन से पशुओं को बचाने के लिए प्लेटफार्म के फर्श को खुरदरा रखते हैं। इसके किनारे पर लगभग 7.5 से. मी. चौड़ी नाली होती है जिसकी ढाल प्लेटफार्म के निचली ओर होती है। नकली सीमेंट की एक टंकी में एकत्रित होने वाले घोल को पुनः प्रयोग कर सकते हैं। जिन पशुओं के शरीर से मक्खियाँ, कीटाणु अथवा जीवाणु नष्ट करने होते हैं, उन्हें प्लेटफार्म पर लाया जाता है और उनके ऊपर कीट नाशी अथवा जीवाणु नाशी घोल का स्प्रे कर दिया जाता है।

फार्म घेरे (बाड़)

फार्म की सीमा पर घेरा बनाने से फार्म की सुरक्षा की जा सकती है। घेरे के कारण बाहरी पशु फार्म के अंदर प्रवेश नहीं कर पाते हैं और चोरी की भी कम संभावना रहती है। घेरे हल्के, दृढ़ और टिकाऊ होने चाहिए। घेरे से फार्म के आकर्षण में वृद्धि होती है। घेरे अनेक प्रकार के होते हैं जो भूमि के क्षेत्र, उगाई जाने वाली फसलों, पशु की जातियों और सामग्री की उपलब्धता पर निर्भर करते हैं।

खेतों, चारागाहों और पशु गृहों के चारों ओर घेरे की आवश्यकता होती है। बाड़ों के खुले भाग को दीवारों के स्थान पर तार की बाड़ से घेरा जा सकता है। फार्म क्षेत्र को घेरने के लिए लोहे के कंटीले तारों का प्रयोग उत्तम रहता है। बाड़े के खुले भागों को पटरियों, लकड़ी की बल्लियों, लोहे के पाइपों, लकड़ी के तख्तों अथवा तारों की जाली से घेरा जा सकता है।

फार्म की सीमाओं पर 1.5 मी. ऊंची मिट्टी की दीवारों का घेरा उत्तम रहता है। सस्ती लकड़ी वाले क्षेत्रों में लकड़ी का घेरा उत्तम माना जाता है क्योंकि इसे कम स्थान की आवश्यकता होती है और इसे सुगमता से लगाया अथवा हटाया जा सकता है। लकड़ी का घेरा बनाने के लिए आवश्यक है कि उसे भूमि में दबाने से पूर्व कोलतार अथवा क्रियोसोल घोल में डुबो लेना चाहिए, जिससे उसमें दीमक न लग सके। खुले बाड़ों को लकड़ी से घेरना उत्तम रहता है। लकड़ी के घेरे दो प्रकार के होते हैं।

1. खम्भा एवं पटरी वाला घेरा

इस प्रकार के घेरे में 10 x 7.5 से.मी. आकार की चार–पांच आड़ी लकड़ी की पटरियों को खम्भों में कीलों द्वारा लगभग 22 से.मी. की दूरी पर जड़ दिया जाता है।

2. पुलि शैड प्रकार का घेरा

इस प्रकार के घेरे, उपयोग की गई लोहे की पटरियों, एन्गिलआइरनों, अथवा लोहे की पाइपों से भी बनाये जाते हैं। लोहे के खम्भों को 2–3 मी. भूमि में कंक्रीट के अंदर दबा दिया जाता है।

साधारणतः तार की जाली अथवा कंटीले तार के घेरे बनाये जाते हैं। भली–भांति बनाये गये तार के घेरे अधिक उपयोगी एवं टिकाऊ पाये गये हैं। फार्म पशु घरों को कंटीले तार से घेरना चाहिए। घेरा 1.5 मी. ऊंचा तथा 4–5 तारों का होता है। घेरे 0.4–0.3 मी. की दूरी पर स्थित होते हैं। भूमि (दृढ़ अथवा कोमल) एवं खम्भों की किसमें (लोहा, लकड़ी आदि) के अनुरूप खम्भे 3–4 मी. की दूरी पर स्थित होते हैं।

घेरे के अंत एवं कोने के खम्भों को भली–भांति कंक्रीट में दबा दिया जाता है। खम्भे में एक तान–छड़ दृढता के लिए लगाई जाती है जो कंक्रीट में दबा दी जाती है (चित्र 7.24)।

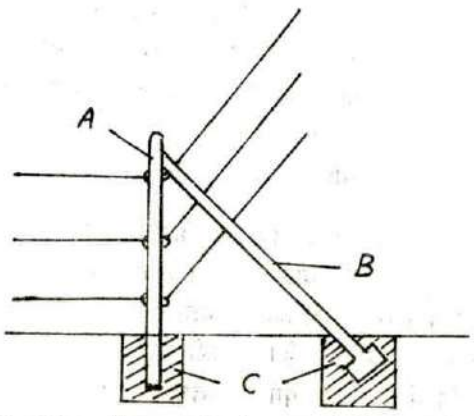

चित्र-7.24 घेरे के कोने पर स्थित खम्भे को दृढता से स्थिर करने की विधि A. कोने का खम्भा, B. तान–छड, C. कंक्रीट का ताला

वर्तमान समय में विद्युत के घेरे भी प्रयोग किये जाते हैं। चारागाहों के विभिन्न भागों में पशुओं को समान रूप से चराने के लिए, विद्युत के घेरों को काम में लाया जाता है। बाद में इसी घेरे को चरागाह के दूसरे भाग में लगा देते हैं। विद्युत घेरे में एक अच्छा दो तार होते हैं जो कि लकड़ी के खम्भों में बंधे रहते हैं। बछड़ों के लिए विद्युत तार लगभग 0.4 मी. ऊंचाई पर और वयस्क भैंसों के लिए लगभग 0.8 मी. की ऊंचाई पर लगाते हैं। पशु जैसे ही विद्युत तार के संपर्क में जाता है उसे विद्युत का झटका लगता है जिससे वह घेरे के उस पार जाने का प्रयास नहीं करता है।

18- -140/CSTT/ND/2K

अध्याय-8

भैंसों का प्रबंधन

विश्व के समशीतोष्ण भागों में पशु–पालक भैंस प्रबंधन की परंपरागत पद्धतियों को अपनाते रहे हैं और अभी तक पशु–पालन क्रिया–कलापों की नवीनतम विधियों को उपयोग नहीं किया जा रहा है। इसका मुख्य कारण अधिकांश पशु–पालकों द्वारा कृषि कार्य को प्रधानता देना और पशु पालन को सहायक व्यवसाय के रूप में अपनाना है। इसलिये पशु पालन पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है और उनको इन नवीनतम विधियों का अधिक ज्ञान भी नहीं है, फलस्वरूप इन तकनीकों का संतोषप्रद प्रयोग नहीं हो सकता है। भारत तथा पाकिस्तान जैसे देशों में भैंसों की उन्नत नस्लें उपलब्ध हैं और इन देशों में भैंस पालन का वैज्ञानिक ज्ञान का पालन करके, भैंस पालन एवं प्रबंधकीय व्यवस्था में अभूतपूर्व उन्नति की जा सकती है।

पशु प्रबंधन में वे सभी क्रियायें निहित हैं जिससे पशु को अधिकतम उत्पादन के लिए आराम सुनिश्चित होता है। इन क्रियाओं में पशु का संचालन तथा उसकी गृह एवं आहार व्यवस्था करना है।

कहा जाता है कि प्रबंधन विचार, सुविधाओं, संसाधनों, सामग्री एवं श्रम को समावेश करने की वह कला अथवा विज्ञान है, जिससे लाभप्रद उत्पाद प्राप्त हो सके अथवा सफलतापूर्वक सेवा की जा सके। अतः यह तथ्य कि प्रबंधक एक संगठित कार्यकर्ता अथवा साधनों को उत्पाद में परिवर्तित करने वाला होता है, बडे उद्योगों अथवा डेयरी फार्मों के लिए उपयुक्त हैं।

प्रबंधक के कार्य

सामान्य धारणा के अनुसार प्रबंधक को पांच प्रधान कार्य संपन्न करने चाहिए।

1. योजना तैयार करना
2. संगठित करना

3. समन्वयन करना

4. निर्देश देना एवं

5. नियंत्रण करना।

प्रबंधक के कार्यों की व्याख्या करने का दूसरा ढंग यह है कि निर्णय करने वाले के रूप में उसे निश्चित करना होता है कि उसे क्या, कब और कैसे करना चाहिए। प्रबंधक को निर्णय करने का अपना उत्तरदायित्व, अन्य कार्यकर्ताओं से भिन्न समझना चाहिए, जो कि आदेश के लिए प्रतीक्षा करता है। सफल निर्णय लेने के लिए प्रबंधक को निम्नलिखित क्रियाओं का निष्पादन करना चाहिए।

1. निरीक्षण करना

सभी उपलब्ध साधनों को एकत्रित करना, तकनीकी उपयुक्तता पर ध्यान केन्द्रित करना, हाट व्यवस्था पर विचार करना एवं व्यवसाय चलाने के लिए पूंजी की व्यवस्था करना आदि, कार्य इसमें आते हैं।

2. उद्देश्य स्थापित करना

वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए उद्देश्य स्थापित करना, प्रबंधक का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

3. समस्याओं की पहचान

उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु दुग्धशाला के कार्य संचालन में आने वाली समस्याओं की उचित समय पर पहचान करना, जिससे उनका निवारण किया जा सके।

4. विश्लेषण करना

वांछित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपलब्ध पूंजी, अनुमानित लाभ, आवश्यक श्रम आदि का विश्लेषण करना।

5. निर्णय लेना

व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के लिए उचित अवसर पर उचित निर्णय लेना।

6. कार्य करना

निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु चयनित योजनां को व्योहारिक रूप देना।

7. उत्तरदायित्व निर्धारण

निर्णय लिए गये कार्यों को व्यवहारिक बनाने के लिए, उत्तरदायित्व से अग्रसर होना।

8. मूल्यांकन करना

परिणामों को मापना और निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मापदंडों पर आधारित निष्पादनों का मूल्यांकन करना।

9. नियंत्रण करना

उत्पादन स्तर, श्रम कुशलता, मूल्य निवेश आदि पर दृष्टि रख कर नियंत्रित करना।

10. समायोजित करना

संभावित नये विकासों की व्यवहारिकता को दृष्टि में रख कर कार्य संचालन करना।

यद्यपि किसी भी प्रबंधक को उपर्युक्त पथ प्रदर्शक क्रियाओं पर, ब्यौरेवार विचार करके चलना व्यवहारिक नहीं होता है परन्तु अनुभव के साथ, कार्य संचालन में इन सभी का समावेश स्वयंमेव ही हो जाता है।

प्रबंधकीय उपकरण (साधन)

व्यवसाय को प्रभावित करने वाले कारकों से भली–भांति अवगत रहना, प्रबंधक का प्रथम कार्य है, क्योंकि दोषपूर्ण सूचनाओं के आधार पर सबल निर्णय नहीं लिए जा सकते हैं। व्यवसाय को सफलतापूर्वक संचालित करने हेतु, दोष मुक्त सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए निम्नलिखित साधनों से अत्यधिक सहायता प्राप्त होती है।

1. फार्म अभिलेख

किसी भी व्यापार को सफलतापूर्वक चलाने के लिए अभिलेख रखना अति आवश्यक है। डेयरी फार्मों पर निम्नलिखित अभिलेख रखे जाते हैं।

अ. प्रत्येक वर्ष के प्रारंभ एवं अन्त में सम्पत्ति, ऋण एवं वास्तविक मूल्य का लेखा रखना।

ब. पशुओं से प्राप्त होने वाले उत्पादों एवं उपजातों के अभिलेख।

स. सामयिक व्यय एवं आय का अभिलेख।

द. वार्षिक व्यय एवं आर्थिक सारांश।

य. कार्य के अभिलेखों का विश्लेषण, जिससे कि व्यापार के निर्बल एवं सबल बातों का अध्ययन किया जा सके और उद्योग में अधिक सफलता प्राप्त की जा सके।

2. तुलनात्मक बजट

पूंजी, श्रम एवं वास्तविक संभावित लाभ की दृष्टि से समस्त फार्म व्यवसाय के वैकल्पिक पद्धति की तुलना का यह एक द्रुतगामी एवं प्रभावी ढंग है।

3. वार्षिक बजटिंग

प्रचलित पद्धति को वर्ष दर वर्ष दिशा प्रदान करने में सहायक माना जाता है। सामायिक बजट, सामयिक उत्पादन एवं मूल्य पर आधारित होता है। ये कंपनी के वर्ष भर के व्यापार पर दृष्टिपात करके अग्रिम वर्ष में होने वाली त्रुटि के सुधार करने में सहायक होते हैं।

4. आंशिक बजटिंग

यह एक लघु युक्ति है जिसके द्वारा व्यापार के आय एवं व्यय की तुलना करके, वैकल्पिक तकनीकों के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

डेयरी फार्म पर अभिलेख

किसी भी व्यापार को लाभकर रूप से चलाने के लिए उचित अभिलेख रखने की आवश्यकता होती है। डेयरी चलाने वाला प्रबंधक यदि पशुओं को चारा प्रदान करने के लिए तथा उनसे प्राप्त होने वाले दूध, वसा आदि के अभिलेख उचित रूप से नहीं रखेगा तो इस उद्योग को ठीक से नहीं चला

सकेगा। जनन एवं प्रजनन के अभिलेखों से पशु की क्षमता के बारे में ज्ञान होता रहता है। डेयरी फार्म पर रखे जाने वाले निम्नलिखित प्रमुख अभिलेख हैं।

1. श्रमिक उपस्थिति एवं वेतन अभिलेख।
2. बछड़ों का अभिलेख।
3. पशु अभिलेख।
4. यूथ अभिलेख।
5. चारा–दाना प्राप्ति अभिलेख।
6. पशु–चारा दाना उपयोग अभिलेख।
7. सांड़ सर्विस अभिलेख।
8. ब्यांत अभिलेख।
9. दुग्ध उत्पादन अभिलेख।
10. दुग्ध वितरण अभिलेख।
11. पशु वंशावली अभिलेख।

इन विभिन्न अभिलेखों से मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं।

बछड़ा अभिलेख

जन्म लेते समय किसी बच्चे का लेखा, उसकी संख्या, लिंग आदि को इस अभिलेख में अंकित किया जाता है। इससे किसी भी समय यह ज्ञात किया जा सकता है कि अमुक बछड़ा फार्म पर पाला गया, क्रय किया गया अथवा उसका निष्कासन किया गया।

दूध अभिलेख

इस अभिलेख से पशु की दोषमुक्त व्यवस्था का आभास मिलता है। इसकी सहायता से पशु को उसके दूध उत्पादन के आधार पर आहार प्रदान

किया जा सकता है। अधिक दूध उत्पादन के लिए और अधिक पौष्टिक आहार तथा कम उत्पादन के लिए इसमें कटौती की जा सकती है।

प्रजनन अभिलेख

पशु को आगामी ब्यांत के लिए तैयार करने के लिए आवश्यक है कि उसे कई सप्ताहों का आराम दिया जाए। अतः अभिलेख के द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि कौन सी भैंस कब बच्चा देने वाली है। इससे उसे शुष्क काल में लाया जा सकता है। नर तथा मादा के सर्विस अभिलेख से ज्ञात हो जाता है कि भैंस किस सांड़ द्वारा गाभिन की गई थी। इससे उसके आहार एवं गृह व्यवस्था में भी सुविधा रहती है।

स्वास्थय अभिलेख

इस अभिलेख से पशु समूह में किसी भी पशु के स्वास्थ्य के बारे में ज्ञात हो जाता है। इसमें पशु के सामान्य स्वास्थ्य, क्षय रोग परीक्षण एवं गर्भपात परीक्षणों का लेखा रहता है।

हिस्ट्री अभिलेख

इसमें किसी पशु विशेष का नाम, संख्या, निष्पादन, रोग से ग्रसित होना, विक्रय कर दिया जाना एवं मृत्यु आदि के बारे में उल्लेख पाया जाता है।

आर्थिक अभिलेख

किसी भी फार्म की एक निश्चित समय में आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए उसकी रोकड़ (कैश बुक) तथा पशु धन (स्टाक बुक) अभिलेखों का होना आवश्यक होता है।

विभिन्न दशाओं में भैंसों का प्रबंधन

भैंस के फार्म के प्रबंधक को विभिन्न प्रकार के क्रिया–कलापों का समन्वय करना आवश्यक होता है। प्रबंधन की सफलता प्रबंधक के इस कौशल पर निर्भर करती है कि वह विभिन्न क्रियाओं को किस सीमा तक अपने नियंत्रण में कर सकता है।

आदर्श भैंस फार्म पर पशुओं की 2½ वर्ष की आयु में उत्पादन प्रारंभ

हो जाना चाहिए, बच्चा देने के लगभग 300 दिनों तक दूध देना चाहिए, बच्चा अंतराल 12–13 माह से अधिक नहीं होना चाहिए और प्रतिदिन प्रति पशु 20–25 कि.ग्रा. दूध उत्पादन होना चाहिए। मांस उत्पादन एवं कार्य निष्पादन के लिए आवश्यक है कि वृद्धि करने वाले बछड़ों में वृद्धि दर 800–1000 ग्राम प्रतिदिन हो जिससे वे शीघ्र वयस्क हो सकें।

यद्यपि जिस वातावरण में भैंस पाई गई हैं उपयुक्त मूल्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि भैंसों को निर्धन कृषक कठिनाई भरे पर्यावरण एवं जलवायु में रखते हैं।

इसके अतिरिक्त इन भैंस–पालकों द्वारा उचित आहार एवं विपणन व्यवस्था करना भी सुगम नहीं है।

प्रबंधक को प्रतिकूल पर्यावरण से पशुओं को बचाने के प्रयास करने चाहिए। पशु की वृद्धि एवं उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारकों पर नियंत्रण पाना भी प्रबंधक का महत्वपूर्ण कार्य है।

गाभिन गायों की देखभाल एवं प्रबंधन

ब्यांत के अन्तिम भाग में मादा को लगभग 6–8 सप्ताह का समय अपने स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। इस समय उसे अच्छा और पौष्टिक आहार चाहिए। बच्चा देने के समय पशु को अपच से बचाया जाना चाहिए क्योंकि इससे उसे बच्चा देते समय अधिक दर्द होता है। बच्चा देने के समय पशु को एक खुले बाड़े (3.6 x 3.6 मीटर) में रखना चाहिए। इस बाड़े के फर्श पर बिछावन की मोटी तह (10–15 सेंटीमीटर) पड़ी रहनी चाहिए। बाड़े का कर्मचारी पशु से परिचित होना चाहिए। आवास का पर्यावरण स्वच्छ होना चाहिए। गाभिन पशुओं को उन पशुओं के पास न रखें जिनका कभी भी गर्भपात हुआ हो। गाभिन पशु को अधिक लंबा सफर तथा तेज नहीं चलाना चाहिए। इन पशुओं को डराना धमकाना भी अच्छा नहीं है। गाभिन पशु के लिए खनिज लवण की ईटें रखें जिसे वह चाट सके।

प्रसव के लक्षण

प्रसव के निम्नलिखित लक्षण हैं।

अ. प्रसव के पूर्व पशु की योनि से चिकना तथा तार के समान लिसलिसा पदार्थ निकलना प्रारंभ हो जाता है।

ब. दर्द के कारण पशु अपने दोनों ओर देखता है तथा पूंछ हिलाता रहता है।

स. पशु बेचैनी के कारण कभी उठता और कभी बैठता है।

द. प्रसव के समय सर्वप्रथम जल थैली दिखाई पड़ती है और फिर बच्चा बाहर आता है। यदि थैली दिखाई देने के एक घंटे पश्चात तक बच्चे का जन्म न हो तो पशु चिकित्सक की सहायता लें।

प्रसव के समय देखभाल

प्रसव के समय निम्नलिखित मुख्य बातों का ध्यान रखें।

अ. प्रसव के समय सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

ब. पशु को साफ करने के लिए गुनगुने पानी के साथ साबुन तथा लुब्रिकेटिंग तेल, जिसमें कार्बोलिक अथवा अन्य रोगाणु नाशक औषधि मिली हो, का प्रयोग करें।

स. ब्याने के पूर्व तथा पश्चात पशु को रेचक खाद्य पदाथ–उदाहरणार्थ – चोकर, हरा चारा, गुड़ एवं जौ आदि खिलायें।

द. थनों को गुनगुने पानी से धोकर मोटे कपडे से रगड़कर साफ कर दें।

य. बच्चा देने के लगभग 6–8 घंटों में जेर (प्लेसेन्टा) डालना आवश्यक है, ऐसा न होने पर पशु चिकित्सक की सहायता लें।

र. किसी भी परिस्थिति में पशु को जेर खाने नहीं देना चाहिए, क्योंकि उसमें प्रोटीन की अत्यधिक मात्रा होने से पशु की पाचन प्रणाली पर कुप्रभाव पड़ता है।

ल. बच्चा देने वाले पशु के आहार में 'हे' एवं दस्तावर दाना मिश्रण जिसमें गुड, अदरख और अजवाइन आदि मिला हो, बच्चा देने के पश्चात खिलाना चाहिए।

व. जेर डालने के पश्चात प्रथम दूध दोहन करना चाहिए और पशु को दूध का ताप (मिल्क फीवर) न होने पाये, इसलिए सम्पूर्ण दूध नहीं निकालना चाहिए।

दूध देने वाली भैंसों का प्रबंधन

दूध उत्पादन में भैंसों का हमारे देश में विशेष महत्व है। देश में कुल दूध उत्पादन का आधे से अधिक भैंसों द्वारा उत्पन्न किया जाता है।

भैंसें वर्ष के एक निश्चित समय (अगस्त–अक्टूबर) में बच्चा देती हैं। इसलिए वे शीत ऋतु में तो अधिक से अधिक दूध देती हैं परन्तु ग्रीष्म ऋतु में उनके दूध देने की क्षमता घट जाती है। ग्रीष्म ऋतु में भैंसें बहुत कम संख्या में बच्चे देती हैं।

भैंसों में निम्नलिखित अनेक समस्यायें पाई जाती हैं।

अ. ग्रीष्म ऋतु में भैंसों में थोडे समय के लिए तथा शांत अथवा मंद मद पाया जाता है और सांड़ों में भी निम्प कोटि का वीर्य उत्पन्न होता है।

ब. भैंसों में लैंगिक परिपक्वता बहुत देर से अर्थात 3½–4 वर्ष की आयु में आती है और बच्चा जनन काल भी लंबा (421–612 दिनों का) पाया गया है।

स. अनेक भैंसों में लम्बा शुष्क काल तथा छोटा ब्यांत काल पाये जाने से भैंसों की आर्थिक उपयोगिता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

द. शीत ऋतु में अधिक तथा ग्रीष्म ऋतु (अप्रैल से जुलाई) में कम दूध उत्पादन से, ग्रीष्म ऋतु में हाट में दूध के मूल्य बढ़ जाते हैं।

य. ग्रीष्म ऋतु में भैंसों के आहार ग्रहण की क्षमता भी कुप्रभावित होती है।

भैंस उत्पादन पर घातक प्रभाव

निम्नलिखित कारकों के घातक प्रभाव भैंस उत्पादन पर देखे गये हैं।

वातावरण

गायों की अपेक्षा भैंसों के शरीर का ताप नीचा पाया गया है जिससे उनमें निम्न ताप क्षमता का पाया जाना स्वाभाविक है। तापीय घात से दूध उत्पादन एवं जनन पर कुप्रभाव पड़ता है। पशुओं का सूक्ष्म पर्यावरण जिसमें उचित आहार व्यवस्था, छाया एवं पर्याप्त पानी व्यवस्था सम्मलित है, महत्वपूर्ण है।

क्रिया विज्ञान संबंधी

इसमें निम्न कारक सम्मिलित हैं।

अ. भैंसों की त्वचा का रंग काला होता है जो कि सूर्य की किरणों का शोषण करता है जिससे पशु की त्वचा के ताप में वृद्धि होती है।

ब. भैंसों में पसीना वाली ग्रंथियों के सक्रिय न होने से शरीर का आवश्यकता से अधिक ताप पसीने द्वारा निकल नहीं पाता है।

स. ताप संचालक का कार्य करने के लिए गायों की भांति भैंसों में बालों की मोटी तह नहीं होती है।

द. पशु के प्रत्येक माह मद में आने पर प्रतिबल (स्ट्रेस) पड़ता है।

य. आंशिक पानी वाले स्वभाव के कारण भैंसों में बेचैनी अनुभव की जाती है।

पोषण संबंधी

इसमें निम्न कारक प्रभावित करते हैं।

अ. उच्च परिवेश ताप से पौष्टिक तत्वों की उपयोगिता कम हो जाती है। रूमेन से रक्त प्रवाह पर भी प्रभाव पड़ता है जिससे तत्वों का शोषण कम हो जाता है।

ब. तापीय घात से आहार ग्रहण की मात्रा घट जाती है तथा पशु छाया में बैठना पसंद करता है। उचित पोषण होने पर भी तापीय घात से दूध उत्पादन, जनन क्षमता एवं पाचन क्रिया कुप्रभावित होती है और सांडों के वीर्य के गुण भी कुप्रभावित होते हैं।

मानव उदासीनता

मानवों के कारण भी उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है।

अ. नरों को अत्यधिक दूरी पर चलाना।

ब. वध करने के पूर्व पशु को निर्दयतापूर्वक पीटना।

दूध उत्पादन

डेयरी पशुओं पर व्यय किये जाने वाले धन का अन्ततोगत्वा अभिप्राय उनसे अधिक से अधिक दूध प्राप्त करना होता है।

पशु अयन अथवा स्तन की रचना, दूध देने का स्वभाव और ग्वाले से जुड़े सभी कारक, अयन से दूध प्राप्त करने की क्षमता और अंत में दूध से प्राप्ति होने वाली आय को प्रभावित करते हैं।

मुर्रा भैंसों में सर्वाधिक विख्यात 65% अयन की आकृति कटोरा की भांति होती है तथा इससे कम प्रसिद्ध आकृति तसला (ट्रफ) की तरह एवं गोल है (शास्त्री एवं भगत, 1988)। सामान्यतः अयन आगे और पीछे की ओर प्रसार करता है। मुर्रा नस्ल की भैंसें जिनका अयन गहरा होता है तथा भली–भांति आगे एवं पीछे की ओर फैला रहता है, उसमें अच्छे दूध उत्पादन के गुण होते हैं विशेष कर दूध प्रवाह दर (सारणी 8.1)।

महादेप्पा, आदि (1971) ने ज्ञात किया है कि दैनिक, प्रातः एवं संध्या दूध निकालने की औसत दर क्रमशः 0.76 ± 0.02, 0.74 ± 0.03 एवं 0.78 ± 0.02 कि.ग्रा. प्रति मिनट पाई गई है। इसके विपरीत रागव आदि (1971) ने यह दर 1.0 बतलाई है। बासु, आदि (1975) ने ज्ञात किया है कि घबड़ाई हुई एवं बेचैन भैंसों में दूध उतारने में अधिक समय लगता है और अपेक्षाकृत सीधी भैंसों के निम्न दूध प्रवाह एवं उत्पादन पाया जाता है। गंगवार (1976) ने प्रारंभिक, मध्य एवं अंतिम ब्यांत में, दूध उतारने का समय क्रमशः 4285, 373.3 एवं 321.0 सैकंड, प्रति दूध निकालने पर दूध प्रवाह दर क्रमशः 0.71, 0.68 एवं 0.62 कि.ग्रा. प्रति मिनट प्राप्त की है।

भैंसों में उच्च दूध उत्पादन एवं समुचित प्रबंधन

इसके लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं।

आवास

पशुओं को दिन के समय अंदर गृहों में और रात्रि के समय खुले में (शास्त्री, 1987) अथवा आधी दीवार वाले बाड़े में रखना, जिसकी आधी दीवार ग्रीष्म ऋतु के सर्वाधिक गर्म दिन खस से ढकी हो, उचित पाया गया है (पाण्डे एवं रायजादा, 1979)। इस आवास व्यवस्था में यदि ग्रीष्म ऋतु में उच्च ताप

को कम करने के उपाय किये जाएं (शास्त्री एवं जोरजी, 1985) तो अधिक संख्या में मादा पशु मद में आते हैं तथा गर्भधारण दर में वृद्धि होती है। इससे नर पशुओं के वीर्य की गुणवत्ता में भी सुधार होता है। ग्रीष्म ऋतु में वातावरण के प्रकोप से पशुओं को बचाने के प्रयासों का उन पर लाभप्रद प्रभाव पड़ता है (सारणी–8.2)।

ग्रीष्म ऋतु में विभिन्न प्रकार की आवास व्यवस्था का उनके परिवेश ताप, पशु की शरीर क्रिया विज्ञान एवं उत्पादन क्षमता पर लाभप्रद प्रभाव पड़ता है (सारणी 8.3)।

परिवेश ताप पर नियंत्रण

इसके लिए निम्न उपाय आवश्यक हैं।

अ. ग्रीष्म ऋतु में उच्च परिवेश ताप के कुप्रभाव से पशु को बचाने के लिए उसके ऊपर पानी छिड़कना अथवा पशुओं को पानी में लिटाना चाहिए (चित्र 8.1)। कच्चे भवनों में पशु को रखने से भी ताप का कम प्रभाव

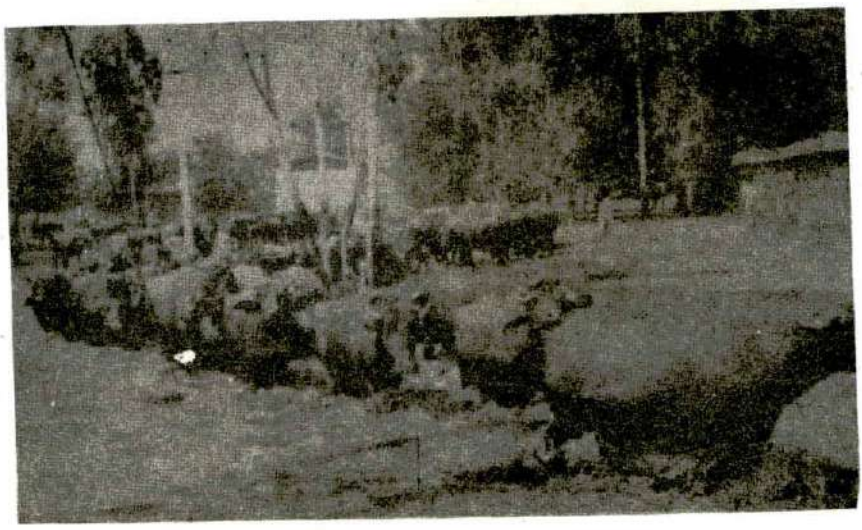

चित्र-8.1 भैंसों का तालाब में लोटना

पड़ता है। दिन में 2–3 बार पशु के शरीर पर पानी का भीगा कपड़ा फिरा कर शरीर के नम करने से भी पशु आराम का अनुभव करता है (पाण्डे एवं रायजादा, 1979; तोमर, 1980)। प्रातः, दोपहर एवं संध्या समय 2–3 बाल्टी ठंडा पानी पशुओं के शरीर पर डालने से, उच्च परिवेश ताप से पशुओं को राहत मिलती है तथा वे मद में आ सकते हैं।

ब. अधिक गर्मी के समय घर में पानी छिड़कें और खिड़कियां एवं रोशनदान खुले रख कर वायु का आवागमन बनाये रखें।

स. ग्रीष्म ऋतु में पशुओं को दिन में 3–4 बार ठंडा एवं स्वच्छ पानी पिलाया जाना चाहिएं इससे उनके दूध में वृद्धि होगी और पशु आराम अनुभव करेगा। ग्रीष्म ऋतु में पशु शीत ऋतु की अपेक्षा लगभग 50 लिटर अधिक पानी पीता है। कुल पानी का 70 प्रतिशत प्रातः 9 बजे से संध्या 9 बजे के मध्य पाया जाता है। खुले बनाम बंद आवास का पानी एवं आहार ग्रहण क्षमता पर प्रभाव देखा गया है (सारणी–8.4)।

मिनेट (1947) एवं मलिक (1960) ने ज्ञात किया कि परिवेश ताप तथा प्रकाश के विकरण प्रभाव को उचित छाया व्यवस्था एवं पानी का प्रयोग करके कम किया जा सकता है। अन्य विख्यात विद्धानों (मिश्रा एवं सेनगुप्ता, 1965; सिन्हा, आदि 1966 और सेनगुप्ता, आदि 1968) ने अन्वेषणों के द्वारा सिद्ध किया कि आवास के चारों ओर खुले स्थानों पर खस–खस का प्रयोग करने से दूध उत्पादन में 60 प्रतिशत वृद्धि हो सकती है। खस–खस के प्रयोग से ऐसे सांड़ों को भी लाभ पहुंचा, जिनकी उच्च ताप से काम लिप्सा कम हो गई थी।

प्रजनन

यद्यपि भैंसों में कुछ हार्मोन संबंधी कठिनाईयां पाई गई हैं (मदान, 1987; कक्कड एवं राजदान, 1988) परंतु उनमें लम्बा बच्चा जनन अन्तराल पूर्ण रूप से वातावरण संबंधी कारकों के कारण ही होता है और इसका नियंत्रण मानव के हाथों में है।

ग्रीष्म ऋतु से संबंधित निम्न उर्वरता (बसु, 1962; गिल, 1973; सिंह एवं सिंह, 1984) से मौसमी प्रजनन और लंबा बच्चा जनन अन्तराल की प्रवृति

आ जाती है (रेड्डी, 1985; त्रिपाठी, 1986) जिससे अंत में ग्रीष्म ऋतु में दूध उत्पादन में कमी आ जाती है। तापीय घात एवं हरे चारों की कमी भी इसका एक कारण हैं।

मानसून की वर्षा से वनस्पतियों की भरपूर वृद्धि होती है। 2–3 माह तक चरने के पश्चात् उन्हें अच्छा पोषण प्राप्त होता है और इसके पश्चात् भैंसें प्रजनन में आती हैं।

बच्चा जनन अन्तराल की अवधि, भैंसों के बच्चा होने के पूर्व एवं बाद के पौष्टिक स्तर, (गिल एवं सरकी, 1985; देशमुख, 1987), प्रारंभिक ब्यांत एवं दूध उत्पादन का स्तर (सिंह, आदि 1980; गुप्ता आदि, 1981 और सान्धु, 1985), जनन स्वास्थ्य, वीनिंग अथवा दूध पिलाना (सकलिंग), मद ज्ञात करने के कारक एवं सफल सेचन आदि पर निर्भर करता है। इन सभी पर मौसम का प्रभाव पड़ता है और सर्वाधिक गंभीर प्रभाव उष्ण मौसम का पड़ता है। इसलिए वैज्ञानिकों द्वारा उनके आहार, आवास एवं तापीय उपायों पर विशेष ध्यान दिया जाता है जिससे भैंस निरंतर प्रजनन करती रहें।

जनन

अनेक भैंसें मद में आने के स्पष्ट लक्षण प्रकट नहीं करती हैं अथवा थोड़े समय के लिए ही प्रदर्शित करती हैं। लगभग 60 प्रतिशत भैंसें मद में आने के लक्षण 2.0 बजे रात्रि से 8.0 बजे प्रातः तक प्रदर्शित करती हैं। इसलिए लगभग 4.0 घंटों के अंतर से एक खस्सी सांड़ 6 बजे संध्या से 6 बजे प्रातः तक, पशुओं के मद में आने की पहचान करने के लिए छोड़ना चाहिए। गर्भ धारण कराने के लिए भैंसों को मद में आने के 14–20 घंटों के बीच गर्भित करवा देना चाहिए। सफल गर्भ धारण के लिए आवश्यक है कि गर्भाधान कुशल तकनीशियन द्वारा अच्छे वीर्य से किया जाए। यदि वीर्य में शुक्राणुओं की गति एवं घनत्व अधिक तथा रचना असामान्यतः प्रतिशत बहुत कम हो, तो वीर्य उत्तम कोटि का माना जाता है। प्रत्येक भैंस के सफल गर्भधारण के लिए शुक्राणुओं की संख्या 0.5 करोड़ होनी चाहिए। अनुभवों द्वारा ज्ञात किया गया है कि गर्भित कराने के 1–2 घंटे पूर्व यदि पशु को छाया में रखा जाए अथवा उसके ऊपर पानी छिड़क दिया जाए तो गर्भधारण दर में वृद्धि हो जाती है।

आहार व्यवस्था

दूध उत्पादन के लिए पौष्टिक तत्व प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन एवं खनिजों की आवश्यकता होती है। इनकी पूर्ति बनाये रखने के लिए पशुओं को उचित मात्रा में हरे चारे एवं दाना मिश्रण आदि प्राप्त होना चाहिए। हरे चारों की कमी होने पर साइलेज अथवा 'हे' को खिलाना चाहिए। हरे चारों में द्विदलीय चारों का पोषक मूल्य अधिक होता है। ग्रीष्म ऋतु में चरने के लिए पशुओं को यदि बाहर भेजना हो तो प्रातः (9–10 बजे से पूर्व) में तथा संध्या ठंडे समयों (5–7 बजे के पश्चात) में ही भेजा जाए। ग्रामीण भैंसों के दूध उत्पादन में सुधार के लिए विशेष कर ग्रीष्म ऋतु में आवश्यक है कि ब्यांत के प्रारंभिक काल में पोषण स्तर में सुधार लाया जाए (शुक्ला, आदि 1973; शुक्ला एवं सुपेकर, 1983; जिओरजी, 1979 एवं इनकेल, 1981)।

पानी की आवश्यकता

डेयरी पशु अपने शरीर की संपूर्ण वसा और आधी प्रोटीन खाकर भी जीवित रह सकते हैं, परन्तु उनके शरीर का यदि 10 प्रतिशत भी पानी समाप्त हो जाए तो उन्हें अत्यधिक बचैनी हो जाती है, वे चलने में लड़खड़ाते हैं और दुर्बल हो जाते हैं। यदि पशुओं के शरीर का 20–22 प्रतिशत पानी नष्ट हो जाए तो वे प्यास से मर सकते हैं। शरीर का लगभग 70 प्रतिशत भाग पानी होता है, दूध जिसे पशु उत्पन्न करता है, इसमें लगभग 80 प्रतिशत पानी होता है।

जीवन निर्वाह के लिए भैंसों को लगभग 7–8 गैलन पानी की आवश्यकता होती है। प्रति लिटर दूध उत्पादन के लिए लगभग 2 लिटर पानी चाहिए। भैंस के बाड़े को धोने और सफाई के लिए लगभग 10–15 गैलन पानी की आवश्यकता होती है। अतः सभी उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रतिदिन प्रति पशु लगभग 25 गैलन पानी की आवश्यकता होगी परन्तु अच्छा होगा यदि प्रतिदिन प्रति पशु 35–40 गैलन पानी की व्यवस्था हो सके। पशुओं के पीने का पानी हानिकर जीवाणु रहित होना चाहिए और उसमें संखिया (आरसेनिक), सीसा (लेड) आदि न मिला हो और न दुर्गंध आती हो। जो पानी स्वच्छ न हो तथा जिसमें मनुष्यों अथवा पशुओं की विष्ठा मिली हो एवं अपारदर्शी हो, पशुओं को पिलाने योग्य नहीं होता है।

सारणी-8.1 अयन की आकृति एवं आकार का मुर्रा भैंस के दूध उत्पादन के गुणों पर प्रभाव

विशिष्टतायें	दूध उतारने का समय (सेकंड)	दूध देने का समय (सेकंड)	दूध प्रवाह दर (कि.ग्रा./ मिनट)
अयन का आगे की ओर फैलाव			
(अ) लम्बा	103.7	205.4	0.99
(ब) मध्यम	97.6	249.9	0.90
(स) छोटा	72.8	227.6	0.90
अयन का पीछे की ओर फैलाव			
(अ) लम्बा	102.4	253.0	0.99
(ब) मध्यम	90.7	259.7	0.95
(स) छोटा	119.4	229.2	0.80
अयन की गहराई			
(अ) गहरा	99.4	305.3	1.02
(ब) मध्यम	100.6	249.1	0.95
(स) संकरा	102.9	220.1	0.79
अयन का पिछला जुड़ाव			
(अ) उच्च	100.5	255.6	0.96
(ब) मध्यम	100.9	238.7	0.92
अयन की संरचना			
(अ) संकुचनशील	96.6	251.8	0.98
(ब) मध्यम	120.2	566.6	0.83

भारद्धाज (1987)

19- -140/CSTT/ND/2K

सारणी-8.2 उष्ण परिवेश ताप से आराम पहुंचाने वाले उपायों का आर्थिक दृष्टि से उपयोगी गुणों पर प्रभाव

विशिष्टतायें	उच्च परिवेश ताप से आराम पहुंचाने वाले उपायों के साथ	बिना किसी उपाय के
प्रथम बच्चा जनन आयु (दिन)	1771	1882
ब्यांत का दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	1716	1713
ब्यांत की अवधि (दिन)	301	332
300 दिनों का दूध उत्पादन (कि.ग्रा.)	1680	1523
शुष्क काल (दिन)	125	222
बच्चा जनन अंतराल (दिन)	427	514

शास्त्री, आदि (1981)

पीने के पानी की आवश्यकता निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है।

1. शरीर का भार

उसी नस्ल के, शरीर में भारी पशुओं को पानी की कम आवश्यकता होती है।

2. आयु

प्रारंभिक आयु में वृद्धों की अपेक्षा शरीर में पानी की अधिक मात्रा होती है और उन्हें अधिक पानी की आवश्यकता होती है। कम आयु के पशुओं में पानी की कमी अधिक हानिकारक हो सकती है और उनकी वृद्धि को कुप्रभावित कर सकती है।

3. ऋतु

ग्रीष्म ऋतु में शीत ऋतु की अपेक्षा लगभग दो गुना अधिक पानी की आवश्यकता होती है।

सारणी-8.3 खुला आवास बनाम बन्द आवास (बाड़ा) का पशुओं की दैहिकी एवं उत्पादन पर प्रभाव

विशिष्टतायें	आवास के प्रकार	ग्रीष्म ऋतु	वर्षा ऋतु	शीत ऋतु
बाड़े का ताप	खुला	42.1	37.7	22.4
(अधिकतम, सैल्सियस)	बंद	40.6	36.1	20.3
बाड़े का ताप	खुला	27.6	26.3	5.3
(न्यूनतम, सैल्सियस)	बंद	29.1	26.9	8.6
बाड़े की आपेक्षिक आर्द्रता	खुला	48.2	52.4	54.6
(प्रतिशत)	बंद	51.7	57.3	60.7
पशु श्वसन दर	खुला	34.5	21.5	14.2
(2 अपरान्ह)	बंद	34.3	27.8	11.1
पशु नाड़ी गति	खुला	58.3	63.0	60.9
	बंद	59.2	66.1	62.5
पशु शरीर का ताप	खुला	38.3	38.0	37.4
(सैल्सियस 2 अपरान्ह)	बंद	38.1	38.1	37.3
दैनिक दूध उत्पादन	खुला	8.1	8.2	6.5
(कि.ग्रा.)	बंद	7.6	7.9	6.3
दूध वसा	खुला	7.4	6.6	6.5
(प्रतिशत)	बंद	7.2	6.5	6.4
दूध वसा रहित ठोस	खुला	10.1	9.6	10.1
(प्रतिशत)	बंद	9.8	9.3	9.9

थोमस, आदि (1978)
यादव एवं गुप्ता (1983)
यादव एवं गुप्ता (1985)

4. आहार

शुष्क आहार ग्रहण करने पर हरे चारों की अपेक्षा अधिक पानी चाहिए। अधिक प्रोटीन, रेशे (फाइवर) एवं खनिज वाले आहार को पचाने तथा शोषण करने के लिए भी अधिक पानी की आवश्यकता होती है।

सारणी-8.4 खुले बनाम बंद (बार्न) आवास का आहार एवं पानी ग्राह्यता पर प्रभाव

विशिष्टतायें	आवास का प्रकार	ग्रीष्म ऋतु	वर्षा ऋतु
दैनिक शुष्क आहार ग्राह्यता	खुला	13.1	11.7
(कि.ग्रा.)	बंद	11.8	11.5
शुष्क आहार ग्राह्यता प्रति कि.ग्रा.	खुला	0.126	0.117
चयापचय शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	बन्द	0.115	0.117
दैनिक पानी ग्राह्यता (लिटर)	खुला	75.2	59.6
	बंद	67.2	60.1
कुल पानी ग्राह्यता/कि.ग्रा., शुष्क	खुला	55	52
आहार ग्राह्यता (लिटर)	बंद	55	52

यादव एवं गुप्ता (1983)
यादव एवं गुप्ता (1985)

5. दूध की दशा

दूध देने वाले पशुओं को अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक पानी की आवश्यकता होती है।

जल नाद अथवा टंकी में पशु के समक्ष सदैव ही स्वच्छ पानी उपलब्ध रहना चाहिए। विभिन्न आयु एवं दशाओं में भैंसों की पानी की आवश्यकता सारणी 8.5 में प्रदर्शित है।

शुष्क भैंसों का प्रबंधन

पशुओं को शुष्क करना

निम्नलिखित प्रमुख कारणों से पशु का शुष्क रखना आवश्यक होता है।

अ. आहार में प्रदान किये जाने वाले तत्वों को गाभिन पशुओं में पनप रहे भ्रूण के विकास के लिए।

सारणी-8.5 खुले आवास व्यवस्था में 24 घंटों में प्रति पशु पानी की आवश्यकता (लिटर)

पशु	ऋतु	पीने का पानी	धुलाई के लिए पानी	कुल योग
बच्चा				
(कटड़ा,	शीत	11.8	15.2	27.0
कटड़ियां)	ग्रीष्म	28.4	23.6	48.0
ओसर	शीत	27.5	28.5	55.0
	ग्रीष्म	55.3	45.8	101.0
वयस्क				
1. शुष्क	शीत	45.1	23.3	68.4
	ग्रीष्म	55.5	36.5	92.0
2. दूध वाले	शीत	58.5	28.3	86.8
	ग्रीष्म	63.9	56.5	120.4

ब. दूध स्रावित करने वाले अंगों को विश्राम प्रदान करने हेतु।

स. दूध उत्पादन करने में जिन खनिजों का ह्रास हुआ है उन्हें पुनः आहार के द्वारा पशुओं को प्रदान करना।

द. बच्चा देने से पूर्व पशु शरीर के भंडारित तत्वों की पूर्ति करने के लिए।

व्योहारिक अनुभवों से देखा गया है कि पशुओं को शुष्क कराके जो विश्राम दिया जाता है, उससे उनका दूध उत्पादन अन्यों की अपेक्षा अधिक होता है।

शुष्क कराने की विधियाँ

दुधारू पशुओं को शुष्क कराने की निम्नलिखित विधियाँ हैं।

अ. अपूर्ण दोहनः शुष्क काल प्रारंभ होने के कुछ दिनों तक दूध दोहन नहीं करना चाहिए और दूध उत्पादन कम हो जाने पर दूध निकालना पूर्ण रूप से बंद कर देना चाहिए।

ब. कभी-कभी दोहनाः शुष्क काल प्रारंभ होने के पश्चात किसी–किसी दिन दूध निकालने से और अंत में पूर्ण रूप से बंद कर देने से पशु शुष्क हो जाता है।

स. पूर्ण रूप से दोहन बंदः पशुओं का दोहन बंद कर देने से कुछ दिनों में दूध ग्रंथियों में शोषित कर लिया जाता है और पशु शुष्क हो जाता है।

बच्चा देने के समय पशुओं का मध्यम मंसीला होना वांछनीय है, इसलिए इन पशुओं का अधिक मंसीलापन की तुलना में लंबा शुष्क काल होना आवश्यक होता है। शुष्क करने के समय जो पशु उत्तम पौष्टिक स्तर के हों, उन्हें 40–80 दिनों तक ही शुष्क रखा जाना चाहिए। कम समय कम उत्पादन वाले पशुओं के लिए सुझाया गया है। पतले पशुओं को अधिक समय तक शुष्क रखा जाता है।

सांड़ों की देखभाल एवं प्रबंधन

सांड़ यूथ का आधा माना जाता है अतः इसकी उचित देखभाल और प्रबंधन व्यवस्था पर अत्यधिक ध्यान देना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं।

अंगूठी पहनाना (रिंगिंग)

यद्यपि सांड़ सीधा दिखाई देता हो उसकी नाक में अंगूठी पहनाना परमावश्यक है। जब सांड़ 8 माह से 15 माह की आयु के मध्य हो तो उसे अंगूठी डालनी चाहिए। प्रारंभ में सांड़ की नाक में 10–12 से.मी. व्यास की तांबे की अंगूठी पहनाई जाती है परन्तु लगभग 2 वर्ष की आयु में इसे बंदूक की धातु की अंगूठी से बदल दिया जाता है। अंगूठी के चिकना न होने पर नाक को हानि होने की संभावना रहती है। कभी–कभी रस्सी को शक्ति के साथ झटका देने से नाक फट सकती है। ऐसा हो जाने पर सांड़ को बाड़े में खुला छोड़ा जाता है और कहीं ले जाते समय मुंहरी लगाई जाती है।

सांड़ों को गिराना

कभी–कभी छोटी शल्य चिकित्सा आदि के लिए सांड़ को गिराना पड़ता है। इसके लिए लगभग 2.5 से.मी. लंबाई की सूती रस्सी का प्रयोग करना चाहिए जो कोमल होती है। पशु के आकार के अनुरूप रस्सी की लंबाई 12–15

मीटर हो सकती है। ग्रीवा के चारों ओर रस्सी डाल कर गांठ लगा दी जाती है, अब रस्सी को वक्ष के चारों ओर घुमा कर, उसी रस्सी से निकाल कर कोख पर भी ऐसा ही कर लिया जाता है तथा रस्सी के खुले सिरे को खींचने से पशु एक ओर गिर जाता है। अब सिर को पकड कर दूसरी ओर घुमा कर नियंत्रण कर लिया जाता है। इस पूरे कार्य में सावधान रहना चाहिए।

पैरों को छांटना

जो सांड़ बाड़ों में रखे जाते हैं और उन्हें अधिक चलना–फिरना नहीं पड़ता है, उनके खुर बड़े हो जाते हैं और चलने फिरने में पशु को कष्ट देते हैं। देखने में भी बढ़े हुए खुर अच्छे नही लगते हैं। खुरों को तेज चाकू अथवा अन्य धार वाले यंत्र से सावधानी पूर्वक छांटना चाहिए।

सींगों को छांटना एवं पोलिश करना

खुरदरे सींगों को रेती अथवा रेगमाल (सेन्ड पेपर) से रगड़ कर साफ किया जाता है और इसके पश्चात पॉलिश कर दिया जाता है। ऐसा करने पर सींग देखने में सुंदर और भले लगते हैं।

सांड़ों की देखभाल में सावधानियाँ

सांड़ों की देखभाल में सदैव ही सावधान रहना चाहिए। सदैव ही दृढ़ता के साथ पशु को पकड़ना चाहिए और कितना ही सीधा सांड़ होने पर उसका अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए। कभी भी सांड़ को मुख्य सड़क से नहीं निकालना चाहिए क्योंकि इन परिस्थितियों में उसके अनियंत्रित हो जाने के कारण दुर्घटना होने की संभावना रहती है।

सांड़ का चयन करते समय ध्यान रखना चाहिए कि उसकी वास्तविक नस्ल है तथा उसके माता–पिता का उच्च उत्पादन रहा है। सांड़ रोगों से मुक्त होना चाहिए। जब तक सांड़ वयस्क (3–3½ वर्ष की आयु) न हो जाए उसे प्रजनन के लिए प्रयोग न किया जाए। सांड़ को घुमाना एवं निरंतर व्यायाम कराना आवश्यक है अन्यथा वह अनावश्यक रूप से स्थूल हो जायेगा।

सांड़ों की आहार व्यवस्था

प्रजनन कार्य को सुचारू रूप से करने के लिए सांड़ों की उचित आहार व्यवस्था होनी चाहिए जिस समय बरसीम एवं बेदालीय हरे चारे उपलब्ध हों,

थोड़ी मात्रा में ही दाना मिश्रण की आवश्यकता होती है। हरे चारे उपलब्ध न होने पर, यदि भूसे जैसे निम्न कोटि के चारों के साथ आहार व्यवस्था करनी पड़े, तो दाना मिश्रण की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। आहार में उचित मात्रा में खनिज मिश्रण मिलाना चाहिए। विटामिन ए की कमी होने पर निम्न कोटि का वीर्य उत्पादन होता है अतः आहार में हरे चारों की अनुपस्थिति होने पर विटामिन पूरक को आहार में मिलाना आवश्यक है जिससे आवश्यक विटामिन ए की पूर्ति की जा सके।

भारवाही भैंसों का प्रबंधन

सत्रहवीं दशक में विकसित एवं विकासशील देशों में ऊर्जा की मांग में वृद्धि होने के साथ ही वैज्ञानिकों एवं सरकारों ने ऊर्जा के नये एवं वैकल्पिक स्रोतों के बारे में विचार करना प्रारंभ कर दिया है। यद्यपि व्यापारिक ऊर्जा स्रोतों की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट हो रहा है तथापि इसके प्राचीन एवं प्रचलित साधनों उदाहरणार्थ – लकड़ी, बायोगैस, पशु शक्ति की क्षमता बढ़ाने की ओर भी समुचित ध्यान दिया जा रहा है।

अध्ययनों द्वारा ज्ञात किया गया है कि अनेक विकसित देशों में भारवाही पशुओं ने कृषि कार्यों और भार वाहन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है इस पर भी पशु शक्ति की क्षमता को भली–भांति उपयोग में नहीं लाया जा रहा है और निर्धन कृषकों तथा समाज को इसका पूरा लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है। भार वाहन की दृष्टि से पशुओं में गोवंश का स्थान प्रथम और इसके पश्चात भैंसों का महत्व है। भैंसों की भार वाहन शक्ति में सुधार लाने की पर्याप्त संभावनायें हैं, इससे उनके स्वामियों को पर्याप्त धन लाभ होगा और यातायात में भार वाहन क्षमता का विकास होगा।

भारवाही शक्ति उपयोग के क्षेत्र

करोड़ों छोटे एवं सीमांत कृषकों के कृषि कार्य एवं भार वाहन के लिए उपयोगिता की दृष्टि से पशु भारवाही शक्ति का बड़े पैमाने पर विकास करने एवं सुधार की नई तकनीकी का आविष्कार करने की आवश्यकता है क्योंकि अनेक विकासशील देशों में आने वाले पचास वर्षों से अधिक समय तक इसकी उपयोगिता यथावत रहने की संभावना है।

पशु शक्ति, पेट्रोलियम शक्ति का पूरक है उसका प्रतिद्वंदी नहीं। जहां भी तकनीकी दृष्टि से अपनाने योग्य, आर्थिक दृष्टि से उपयोगी और पर्यावरण

की दृष्टि से वांछित हो, पेट्रोलियम शक्ति को उत्साहित करना चाहिए। भारवाही पशु शक्ति का उपयोग वहां ही करना चाहिए, जहां परमावश्यक और उपयोगी हो। पशु शक्ति का सुधरा स्वरूप, वास्तव में, पेट्रोलियम आधार वाले कार्यों के लिए एक सुदृढ़ आधार ही प्रदान नहीं करेगा अपितु रोजगार के अधिक अवसर भी प्रदान करेगा। कुछ देशों में कोयला और विदेशी मुद्रा की कमी के कारण, भारवाही पशु शक्ति पर निर्भर करना परमावश्यक हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि इसको और अधिक उपयोगी बनाने के लिए तथा हानियों को कम करने के लिए तकनीकी में और अधिक सुधार किये जायें।

विकासशील देशों में फसल उगाने के लिए प्रयोग किये जाने वाले कुल क्षेत्र का 50 प्रतिशत भाग पशुओं द्वारा जोता बोया जाता है। हमारे देश में लगभग 100 मिलियन जोतें, दो हैक्टर से भी कम हैं, जहां ट्रैक्टर का प्रयोग करना आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी है और छोटे किसानों की क्रय शक्ति से बाहर हैं। अफ्रीका के अनेक भागों में जहां ट्रैक्टर को बनाने एवं मरम्मत की सुविधायें नहीं हैं अथवा अपर्याप्त हैं, पशु–शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। पहाड़ी क्षेत्रों में जहां खेत ढालदार और संकरे होते हैं तथा दलदली भूमि पर और दूर–दूर जाने वाले छोटे–छोटे भूमि के टुकड़ों पर ट्रैक्टर का प्रयोग असंभव होता है।

विकासशील देशों में विशेष कर कम आय वाले देशों में, गांव पक्की सड़कों से नहीं जुड़े हैं। भारत जैसे देशों में जहां बहुत कुछ विकास हुआ है, गांवों की कुल संख्या के लगभग आधे गांव पक्की सड़कों से नहीं जुड़े हैं। अतः इन मार्गों पर पेट्रोल से चलने वाले वाहनों का प्रयोग संभव नहीं है। कम दूरी उदाहरणार्थ – 30 किलोमीटर की दूरी तक लगभग 10 क्विंटल भार वाहन करने के लिए पशुओं द्वारा चलाई जाने वाली गाड़ी ही अधिक उपयोगी तथा व्यवसायिक और आर्थिक दृष्टि से उचित है। अनेक ग्रामीण सड़कों पर ट्रकों का चलना कठिन होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में जहां कम मात्रा में भार वाहन करना हो तथा सामग्री को चढ़ाने और उतारने में ढोने की अपेक्षा अधिक समय लगना हो, पशुओं द्वारा चलाया जाने वाला वाहन अधिक उपयोगी होता है।

भारवाही पशु शक्ति अनेक अन्य प्रणालियों से जुड़ी हुई हैं। कुछ देशों में भारवाही पशु दूध उत्पादन के उपजात भारवाही पशु शक्ति, दूध, मांस उत्पादन, सामाजिक वानिकी एवं व्यर्थ भूमि विकास, ग्रामीण उद्योग, यातायात,

ईंधन वाली लकड़ी, बायोगैस, बायोमॉस कर्ज एवं विपणन सहकारिता, पशु–पालन एवं चिकित्सा सेवा आदि से जुड़ी हुई हैं।

विकासशील देशों में भारवाही पशुओं की संख्या 300–400 मिलियन है। इनसे 150 मिलियन हार्स पॉवर की शक्ति प्राप्त होती है। विकासशील देशों में इन पशुओं से प्राप्य शक्ति का विपणन मूल्य लगभग 100 मिलियन अमेरिकन डॉलर है।

भैंसों का भारवाही शक्ति के रूप में प्रयोग करने वाले देश, चीन, भारत, इंडोनेशिया, नेपाल, फिलीपाइंस, बर्मा, वियतनाम, पाकिस्तान एवं बंगला देश हैं। संभवतः भारवाही भैंसों की संख्या अधिक है। कुछ देशों में मादायें भी कार्य के लिए प्रयोग की जाती हैं।

भारवाही भैंसों के गुण

सामान्यतः, भैंसें गोवंशों से अधिक दृढ़ और शक्तिशाली होती हैं परन्तु वे कुछ रोगों के लिए अधिक संवेदनशील हैं। इनके नर बछड़ों की मृत्यु दर अधिक है।

भारवाही भैंसों का चयन करते समय ध्यान रखना चाहिए कि पशुओं का वक्ष, गहरा और चौड़ा हो, ग्रीवा, मोटी हो, विदर्स स्पष्ट हों तथा शरीर मंसीला एवं आकृष्ट हो। शरीर लंबा, आनुपातिक एवं पूर्ण रूप से विकसित पसलियों वाला होना चाहिए।

छोटे पैरों वाले और हृष्ट–पुष्ट पशु काली मिट्टी वाली भूमि को जुताई करने तथा धान के खेतों में कीचड़ उठाने के लिए अच्छे माने जाते हैं। गेहूं, चना तथा बाजरा आदि फसलों के लिए खेतों की तैयारी करने के लिए, लम्बे पैरों वाले पशु अच्छे माने जाते हैं।

वैज्ञानिक तौर पर, सिर, ग्रीवा और धड़ एक–दूसरे के उचित अनुपात में होने चाहिए। पैर शरीर की ऊंचाई एवं लंबाई के अनुसार होने चाहिए। कुल मिला कर शरीर आनुपातिक और संतुलित हो, अगले एवं पिछले पैर ठीक से शरीर से संलग्न हों और उनके जोड़ सुदृढ़ हों।

कार्य करने वाले भैंसों के चौड़े नथुने तथा शक्तिशाली जबड़े होने चाहिए। सर चौड़ा तथा मंसीला और ग्रीवा के अनुपात में होना चाहिए। इस

प्रकार की ग्रीवा से जुआ (योक) रखने के लिए पर्याप्त स्थान प्राप्त हो जाता है। कार्य करते समय, पशु के अगले भाग से झटके सहन करने की शक्ति प्राप्त होती है अतः यह भाग, मंसीला पूर्ण रूप से विकसित और पीछे की ओर ढालू होना चाहिए। घुटने फेटलोक और पैस्टर्न के जोड़, पूर्ण विकसित और लोचदार होने चाहिए। खुर साधारण तौर पर विकसित और स्पष्ट हों तथा उनमें दरारें नहीं होनी चाहिए।

शरीर का पिछला भाग, पशु को शक्ति प्रदान करने के साथ चलने में भी सहायक होता है। इसलिए अगले भाग की तरह इसमें भी लंबे कोख और पूर्ण रूप से विकसित मांसपेशियाँ होनी चाहिए। टखने के जोड़ का पशु के कार्य करने के समय आगे ढकेलने में विशेष महत्व है।

भारवाही पशु का उदर (एबडोमिन) बड़ा, फैला हुआ, अनुपातिक और कसा हुआ होना चाहिए।

सामान्यतः बधिया किये गये नर कठिन परिश्रम के कार्य के लिए प्रयोग किये जाते हैं परन्तु मादाओं को भी दूध देना बंद करने पर और अधिक समय तक गाभिन न होने की दशा में कार्य में लाया जाता है। भैंसें अधिक धूप में परिश्रम का कार्य करने से हांफने लगती हैं अतः इनको प्रातः एवं संध्या के समय और आकाश में बादल छाये होने की दशा में कार्य में लगाना अच्छा रहता है। साधारणतः तीन वर्ष की आयु में भैंसों को कार्य में प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया जाता है।

आहार व्यवस्था एवं देखभाल

अनेक वैज्ञानिकों ने सुझाव दिये हैं कि कार्य करने वाले पशुओं को प्रोटीन एवं ऊर्जा की आवश्यकतायें शरीर भार, कार्य करते रहने के समय, वातावरण, आयु, लिंग तथा शरीर क्रिया एवं दैहिकी के स्तर से प्रभावित होती है (इब्राहिम, 1985; बामुआलिम एवं कारटिआर्सो, 1985; गो 1983)। कार्य करने के समय के आधार पर, कार्य को हल्का (4 घंटे), मध्यम (6 घंटे) और भारी (8 घंटे) में बांटा जा सकता है। पशुओं की पोषण आवश्यकता कार्य के अनुसार ही पूरी की जानी चाहिए। प्रोटीन एवं ऊर्जा के चौड़े अनुपात से, पाचनशीलता स्वाद एवं ऊर्जा हानि कुप्रभावित होती है। अतः यह अनुपात उचित सीमा में होना चाहिए। खनिज–मूत्र, विष्ठा तथा त्वचा के द्वारा नष्ट हो जाते हैं इसलिए,

उन्हें लगातार पशु को उपलब्ध करना चाहिए। इनमें सोडियम, क्लोराइड, फॉस्फोरस, सल्फर, कोबाल्ट, मैगनीशियम, आयोडीन, लोहा, मैंगनीज, जस्ता (जिंक) तथा तांबा मुख्य हैं।

श्रमपूर्वक कार्य करते समय पशु की चयापचय दर 2.9 से 6.6 बढ़ जाती है। धीमी गति से चल रहे और अधिक भार ढो रहे पशु, कम भार तथा तीव्र गति से चलने वाले पशुओं से ऊर्जा उपयोग करने में अधिक दक्ष होते हैं।

अच्छी गुणवत्ता वाले हरे चारे उपलब्ध होने पर मध्यम कार्य कर रहे पशुओं को कम मात्रा में दाना मिश्रण (लगभग 1.0 कि.ग्रा.) आवश्यकता होती है। इसी कार्य को करने के लिए कम मात्रा में हरे चारे तथा भूसा जैसे घटिया पोषक मूल्य के खाद्य पदार्थ प्राप्त होने पर अधिक दाना (लगभग 3.0 कि.ग्रा.) आवश्यक होता है। उचित मात्रा में खनिज पदार्थ, साधारण नमक और स्वच्छ एवं ताजा पानी की प्रचुर मात्रा पशुओं को उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

पानी की विशिष्ट ऊष्मा, वायु से हजारों गुनी अधिक होती है। अतः पानी की प्रत्येक एकक (यूनिट) के द्वारा, वायु की अपेक्षा पशु शरीर से अत्यधिक मात्रा में ऊष्मा उत्पन्न होती है परन्तु बड़े आकार वाले पशुओं में यह अधिक समय तक बनी रहती है और ग्रीष्म ऋतु में कार्य समाप्त करने के लगभग 3 घंटों तक भी सामान्य नहीं होती है। पशु की त्वचा की मोटाई भी ऊष्मा को शीघ्र वातावरण में दूर करने में बाधक होती है।

भारवाही पद्धति में सुधार लाना

देश की आवश्यकतानुसार कुछ देशों में दूध वाली तथा अन्य में भारवाही नस्लों को रखा जाता है। पशु के भार और भार वाहन क्षमता में आनुवंशिक सुधार किया जा सकता है। दूध देने तथा भारवाही क्षमता दोनों गुणों का समावेश एक नस्ल में कराया जा सकता है।

जिन देशों में पर्याप्त पेट्रोल पदार्थ उपलब्ध हैं, मशीनीकरण अपना सकते हैं परन्तु बंगला देश एवं मिस्र जहां घरेलू पेट्रोल पदार्थ नहीं हैं, पशु शरीर पर निर्भर करना पड़ेगा।

भारवाही पशु यदि वर्ष में 200–300 दिनों तक प्रयोग किये जाएं तो उनके पालक, उन्हें वर्ष भर आहार खिला सकते हैं परन्तु 200 दिनों से अधिक

समय तक उनसे कार्य न लिए जाने की दशा में उन्हें जीवन निर्वाह आहार पर ही रखा जा सकता है। यदि इससे भी कम मात्रा में पौष्टिक तत्व प्राप्त होते हैं तो पशु निर्बल हो जाते हैं और जब कार्य का समय आता है तो वे भली–भांति कार्य नहीं कर पाते हैं। इसके लिए पशु खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि करनी होगी, पड़ती भूमि में चारे उगाने होंगे और निम्न कोटि के चारों का पौष्टिक मूल्य बढ़ाना होगा।

कार्यों में प्रयोग किये जाने वाले यंत्रों में सुधार, सड़कों की दशा सुधार करने से अल्पायु में ही पशुओं को कार्यों में प्रयोग करना संभव हो सकेगा तथा वयस्क होने की आयु तक उन पर किया गया आहार आदि का व्यय पशु पालक पर भार नहीं होगा।

आशा है कि भविष्य में राजनैतिक चेतना से पशु शक्ति के महत्व को और अधिक समझा जायेगा तथा भारवाही पद्धति में सुधार पर अधिक बजट रखा जायेगा। गोष्टियां, कार्यशालायें आयोजित करने से भी इस ओर राष्ट्रीय जागृति लाई जा सकती है।

भैंस प्रबंधन की अन्य उपयोगी बातें

आदर्श फार्म प्रबंधक को नित्य प्रातः डेयरी के सभी पशुओं का निरीक्षण करना चाहिए। प्रातः जब पशु बाहर निकाले जा रहे हों तो वह यह भी ज्ञात कर सकता है कि कौन से पशु मद में हैं। संध्या के समय यदि पशु चरने के पश्चात लौटते हैं तो प्रबंधक को ध्यान से उनका निरीक्षण करना चाहिए कि किसी को चोट तो नहीं लगी है, उनकी कोखें (फ्लैंक्स) आहार खाने से भरी दिखाई दे रही हैं, कोई पशु अस्वस्थ तो नहीं है आदि।

यद्यपि बड़े फार्मों पर प्रबंधक को अपने कर्मचारियों पर बहुत कुछ निर्भर करना पड़ता है, तथापि अनेक महत्वपूर्ण दैनिक कार्यों पर प्रबंधक को कड़ी दृष्टि रखनी पड़ती है।

देखभाल में नियमानुकूलन

दुधारू पशुओं के प्रतिदिन के कार्यों में परिवर्तन करना उचित नहीं है। उनके आहार खिलाने, दूध निकालने तथा व्यायाम कराने में एक निश्चित कार्यक्रम अपनाना चाहिए, जिसमें नियमानुकूलन हो और परिवर्तन न किया

जाए। दुधारू पशुओं का निश्चित समय पर, निश्चित ग्वाले द्वारा एक ही ढंग से दूध निकाला जाए और समान प्रकार से व्यायाम कराया जाए। दैनिक क्रियाकलापों में परिवर्तन करने पर भी दूध उत्पादन कुप्रभावित होता है।

देखभाल में दयालुता

दुधारू पशुओं से दयालुता का व्यवहार करना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में पशुओं की मार–पीट नहीं करना चाहिए। यह मात्र निर्दयता ही नहीं इससे दूध उत्पादन में गिरावट भी आती है। हमें इनसे जंगली पशुओं की भांति व्यवहार न करके, पूर्ण प्यार की दृष्टि से देखना चाहिए। दयापूर्ण बर्ताव से पशुओं पर सदैव ही लाभप्रद प्रभाव पड़ता है।

व्यायाम

व्यायाम से पशुओं की क्षुधा बढ़ती है और पशु सक्रिय रहता है। पशु की चयापचय क्रियायें सुचारू रूप से चलती हैं तथा पशु स्वस्थ रहता है। एक ही स्थान पर अधिक समय तक खड़े रहने से पैरों की मांसपेशियां दुर्बल हो जाती हैं, टखनों की बाह्य वृद्धि हो सकती है और पैरों पर अनावश्यक दबाव पड़ता है। जनन करने वाले पशुओं को व्यायाम लाभप्रद होता है।

दुधारू पशुओं को हल्का व्यायाम आवश्यक है और अधिक व्यायाम देने से उनके शरीर से ऊर्जा का ह्रास होता है, अन्यथा इसका उपयोग दूध उत्पादन में किया जा सकता है। बाहरी व्यायाम से पशु को धूप प्राप्त होती है तथा विटामिन डी की पूर्ति की जा सकती है। खुली आवास व्यवस्था में अलग से व्यायाम देने की आवश्यकता नहीं होती है परन्तु बांध कर रखे जाने वाले पशुओं के लिए आवश्यक है कि वे दिन में एक या दो बार खुले स्थान में ले जाये जायें।

जब बाड़ों की सफाई की जा रही हो तो दिन में दो बार पशुओं को बाहर निकाल देने से पर्याप्त व्यायाम हो जाता है।

बछड़ों को यदि बाड़ों में खुला छोड़ दिया जाए तो वहां घूमने और उछल–कूद करने से उनका पर्याप्त व्यायाम हो जाता है। प्रजनन करने वाले सांड़ों को अच्छी दशा में रखने के लिए नित्य व्यायाम की आवश्यकता होती है। इसके लिए प्रति सांड़ लगभग 120 वर्ग मीटर क्षेत्र की आवश्यकता होती

है और प्रतिदिन लगभग एक घंटे तक व्यायाम कराया जा सकता है। बड़े फार्मों पर जहां अधिक संख्या में सांड़ रखे जाते हैं, एक साथ व्यायाम कराने के लिए एक यंत्र होता है जिसमें बांध कर सांड़ों को घुमाने से व्यायाम हो जाता है (चित्र 8.2)।

डेयरी पशुओं पर खुरैरा करना

पशुओं के शरीर पर खुरैरा करने से ढीले बाल, गोबर मिट्टी आदि के धब्बे छूट जाते हैं। इससे पशुओं से प्राप्त होने वाला दूध स्वच्छ रहता है। खुरैरा करने से पशु के शरीर में रक्त का संचार अच्छा होता है। इसके लिए ब्रश का प्रयोग किया जाता है परन्तु ब्रश के प्राप्त न होने पर खुरदुरी रस्सी मोड़ कर अथवा टाट के टुकड़े से भी पशु शरीर को रगड़ा जा सकता है। खुरैरा सदैव बालों की दिशा में ही करना चाहिए। खुरैरा करने से पशुओं के शरीर से चिपके परजीवी भी हटाये जा सकते हैं।

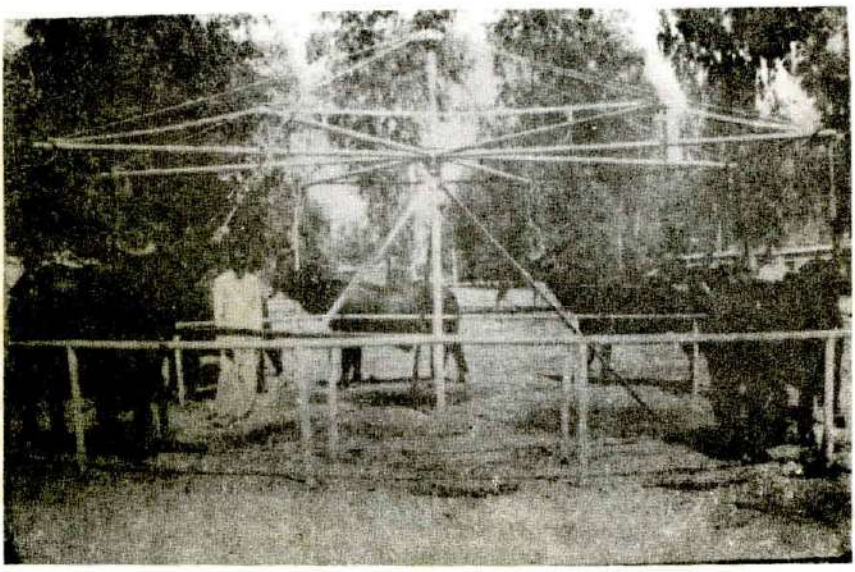

चित्र-8.2 व्यायाम की युक्ति

डेयरी पशुओं की छंटनी

डेयरी फार्म पर पशुओं की संख्या निरंतर बढ़ती रहती है और इसके साथ ही अनेक पशु ऐसी अवस्था में आ जाते हें कि उन पर व्यय करना आर्थिक दृष्टि से उपयोगी नहीं होता है अतः निम्न प्रकार के पशुओं की छंटनी करना आवश्यक है।

अ. पशु जो छूत के रोगों से ग्रसित हैं।

ब. जिन पशुओं की पूर्ण वृद्धि नहीं हो सकी है।

स. कम उत्पादन देने वाले पशु।

द. लंबे बच्चा जनन अन्तराल वाले पशु।

य. जिन पशुओं की ब्यांत अवधि बहुत कम है और

र. लंबी शुष्क काल प्रदर्शित करने वाले पशु।

भैंसों के अवांछित स्वभाव पर नियंत्रण

पशुओं में कुछ अवांछित स्वभाव पाये जाते हैं, जिनका उत्पादन पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, इनमें मुख्य निम्नलिखित हैं।

दूध पीना (चूसना)

यूथ में कभी–कभी कुछ पशुओं में स्वयं का अथवा अन्य पशुओं का दूध पीने का स्वभाव बन जाता है, इससे अयन का संक्रमण होता है तथा दूध उत्पादन में कमी आती है। इस स्वभाव का कारण तो ज्ञात नहीं है परन्तु ऐसे पशु को समूह से अलग रख कर अथवा उसकी नाक में अंगूठियां डाल कर इस स्वभाव से बचाया जा सकता है। किसी भी अपनाये जाने वाले उपाय का पशु के आहार खाने एवं पीने पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

चाटना (लिकिंग)

कुछ पशुओं में अन्य पशुओं को चाटने की आदत पड़ जाती है। दूध पीने की आयु में कुछ बच्चे दूसरे बच्चों को चाटते हैं तो उनके शरीर में बाल चले जाते हैं, इन पर पेट में जमे दूध के चढ़ जाने से एक गोला बन जाता है जो

दूध का गोला (मिल्क बाल) कहलाता है। बछड़ों को इस स्वभाव से बचाने के लिए दूध पिलाने के पश्चात उनकी जीभ पर नमक रगड़ दिया जाना चाहिए। मुंह पर रस्सी का जाल बांधने से भी इस समस्या का निराकरण किया जा सकता है।

रस्सी तोड़ना (फैन्स ब्रेकिंग)

चारागाह में चरते समय यदि चहारदीवारी अथवा रस्सी आदि की फैन्सिंग के दूसरी ओर चारे अधिक हरे अथवा अधिक मात्रा में दिखाई देते हैं तो पशु अपनी रस्सी तोड़ कर उधर जाने का प्रयास करते हैं। इससे बचने के लिए शक्तिशाली रस्सी का प्रयोग करनी ही उचित उपाय होगा।

20- -140/CSTT/ND/2K

श्रमिक उपस्थिति एवं वेतन आलेख

डेयरी फार्म का नाम.................................माह.............................वर्ष

क्रमांक	श्रमिक का नाम	पिता का नाम	पूरा पता	मासिक तिथियां									संपूर्ण उपस्थिति	वेतन दर	देय धनराशि	दण्ड धनराशि	वास्तविक देय धनराशि	भुगतान का दिनांक	प्राप्तकर्ता के हस्ताक्षर	विशेष विवरण
				1	2	3	4		28	29	30	31								

प्रबंधक के हस्ताक्षर

यूथ अभिलेख (हर्ड रजिस्टर)

डेयरी फार्म का नाम.................................माह.................................वर्ष

क्रमांक	नस्ल का नाम अन्य विवरण	अन्तिम योग	प्राप्त विवरण										माह का अन्तिम योग	विशेष विवरण
			नई उत्पत्ति	क्रय किये	अन्य स्रोतों से	पकड़े गये	अन्य फार्म से स्थानान्तरण	वर्तमान योग	मृत्यु	विक्रय	अन्य फार्मों का विवरण	योग		

प्रबंधक के हस्ताक्षर

पशु लेखा का अभिलेख (एनीमल रिकार्ड रजिस्टर)

डेयरी फार्म का नाम.................................माह.................................वर्ष

दिनांक	जनन अभिलेख		प्रसव अभिलेख						प्रसव अभिलेख							चिकित्सा अभिलेख			स्थानान्तरण अभिलेख				भार अभिलेख	
	सांड				बच्चे का विवरण											समय			कहां से		कहां को			
	नाम एवं संख्या	नस्ल	दिनांक	सामान्य/असामान्य	नर/मादा	जन्म का भार (कि.ग्रा.)	नाम एवं संख्या	वितरण	दिनांक	ब्यात का कुल उत्पादन (लिटर)	300 दिनों का कुल उत्पादन (लिटर)	दूध देने के दिन	शुष्क रहने के दिन	सम्पूर्ण पशु औसत	रोग एवं चिकित्सा	कब से	कब तक	चिकित्सक के हस्ताक्षर	दिनांक	स्थान	दिनांक	स्थान	शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	कार्यकर्ता के हस्ताक्षर

प्रबंधक के हस्ताक्षर

नवजात छौनों का अभिलेख

डेयरी फार्म का नाम.....माह.....वर्ष

क्रमांक	नाम एवं नम्बर	लिंग		माता का नाम एवं नम्बर	सांड का नाम एवं नम्बर	वितरण		विशेष विवरण
		नर	मादा			दिनांक	कैसे वितरण किया	

प्रबंधक के हस्ताक्षर

चारा-दाना प्राप्ति अभिलेख

डेयरी फार्म का नाम.....माह.....वर्ष

दिनांक	भूसा					दाने					खनिज लवण		विशेष विवरण
	भूसा	कड़वी	बरसीम	हे	साइलेज	खल	गेहूं चोकर	चावल चोकर	मक्का	चूनी	नमक	खनिज	

प्रबंधक के हस्ताक्षर

चारा-दाना उपयोग अभिलेख

डेयरी फार्म का नाम.....माह.....वर्ष .

भैंस	सांड	अन्य	युवा	एक वर्ष से कम आयु के बच्चे

दिनांक	चारे					दाने					खनिज लवण		विशेष विवरण
	भूसा	कडवी	बरसीम	हे	साइलेज	खल	गेहूं चोकर	चावल चोकर	मक्का	चूनी	नमक	खनिज	

प्रबंधक के हस्ताक्षर

सांड़ प्रजनन अभिलेख

डेयरी फार्म का नाम.....माह.....वर्ष

नस्ल.....सांड का नम्बर.....जन्म तिथि.....

गाभिन करने का दिनांक	गाभिन होने वाली गाय एवं का नाम एवं नम्बर	गर्भ धारण की सफलता/ असफलता	उत्पन्नन सन्तान का विवरण						विशेष विवरण
			जन्म तिथि	नाम एवं संख्या	जन्म के समय भार (कि.ग्रा.)	बच्चे का विवरण	कार्यकर्ता के हस्ताक्षर	दिनांक	

प्रबंधक के हस्ताक्षर

भैंस के गाभिन होने का अभिलेख

डेयरी फार्म का नाम.......................................माह.......................................वर्ष

क्रमांक	गाय का नाम एवं संख्या	नस्ल	गत बच्चा देने की तिथि	गाभिन होने का दिनांक	गाभिन करने वाले सांड़ का नाम एवं संख्या	सांड की नस्ल	बच्चा देने की तिथि	बच्चे का लिंग	विवरण	विशेष विवरण

प्रबंधक के हस्ताक्षर

दुग्ध उत्पादन अभिलेख

डेयरी फार्म का नाम.......................................माह.......................................वर्ष

क्रमांक	पशु का नाम एव तिथि	बच्चा देन की तिथि	गाभिन होन की तिथि	दूध का उत्पादन (लिटर)																	सम्पूर्ण उत्पादन (लिटर)			विशेष विवरण
				1		2		3		4			28		29		30		31					
				प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या		प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या	वर्तमान	गत	कुल	

प्रबंधक के हस्ताक्षर

दुग्ध वितरण अभिलेख

डेयरी फार्म का नाम...माह...वर्ष

क्रमांक	उपभोगताओं के नाम	दूध का उत्पादन (लिटर)																	योग	मूल्य	गत शेष	मूल्य	कुल मूल्य	प्राप्त धन राशि	वर्तमान मूल्य	शेष	विशेष विवरण
		1		2		3		4			28		29		30		31										
		प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या		प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या	प्रातः	सध्या									

प्रबंधक के हस्ताक्षर

दुग्ध उत्पादन अभिलेख

डेयरी फार्म का नाम...माह...वर्ष

क्रमांक	पशु का नाम एवं संख्या	बच्चा देने की तिथि	वर्ष	दुग्ध उत्पादन (लिटर)												ब्यात का कुल उत्पादन (लिटर)	औसत वसा प्रतिशत	दूध देने का दिन	शुष्क होने की तिथि	शुष्क रहने की अवधि	विशेष विवरण
				जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्तूबर	नवम्बर	दिसम्बर						

प्रबंधक के हस्ताक्षर

अध्याय-9

भैंसों में बछड़ा-पालन एवं प्रबंधन

आधुनिक युग में बछड़ा–पालन का उद्देश्य वैज्ञानिक विधि एवं आर्थिक दृष्टि से बछड़ा पालन करना है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों के यहाँ जिस दशा में बच्चे उत्पन्न होते हैं, उनमें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इन परिस्थितियों एवं वातावरण में वैज्ञानिक विधि से प्रबंधन करने में पशु–पालकों में सामान्य ज्ञान की कमी का पाया जाना भी महत्वपूर्ण है। खीस के महत्व को पूर्ण रूप से समझ पाने पर भी उसकी उचित मात्रा को उचित समय पर नहीं खिलाया जाता है। शुद्ध दूध को भी उचित ताप पर आवश्यकतानुसार प्रदान नहीं किया जाता है। बच्चों के निवास का स्थान स्वच्छ नहीं होता है और इसमें उनको अल्पायु में ही रोग लगने की संभावना रहती है। मादा बच्चों को भविष्य में दूध देने वाली भैंस बनाने की दृष्टि से पालन पोषण में नर बच्चों की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाता है अतः नर बच्चों की बड़ी संख्या में मृत्यु होती है।

भैंस प्रजनन की दृष्टि से परमावश्यक है कि भैंस के बच्चों की मृत्यु दर निम्न हो और वे शीघ्रताशीघ्र वयस्क हो सकें। इससे वे शीघ्र उत्पादन प्रारंभ कर सकेंगे। उचित पालन–पोषण एवं प्रबंधन से, नस्ल के वंशागति गुणों के अनुसार बच्चों की अनुकूलतम वृद्धि होती है। गर्भधारण के उपरांत से ही भ्रूण वृद्धि प्रारंभ होकर नवजात के जन्म के पश्चात् भी वृद्धि जारी रहती है। जन्म के समय के भार का बछड़ों की आगामी वृद्धि से घनिष्ठ संबंध है। सारणी 9.1 में भैंसों की विभिन्न नस्लों के बच्चों का जन्म भार प्रदर्शित किया गया है। जन्म के पश्चात बछड़ों के ऊतकों में वास्तविक संरचनात्मक वृद्धि होती है जिससे उनके कोशिकाओं की संख्या एवं आकार में वृद्धि होती है।

नवजात शावकों की देखभाल

जन्म से लगभग 305 दिनों में भैंस के शावकों का विकास पूर्ण होता है। जन्म के पूर्व पोषण एवं चयापचय संबंधी आवश्यकतायें माँ द्वारा पूर्ण की जाती हैं। भ्रूण विकास के समय बच्चों के शरीर का ताप नियंत्रण माँ की ताप

सारणी-9.1 नर मादा भैंस के शावकों का जन्म भार (कि.ग्रा.)

नस्ल	देश	जन्म के समय भार		संदर्भ
		नर	मादा	
सूरती	भारत	30.3	29.1	देव, 1940
मुर्रा	भारत	33.8	32.9	अरूणाचलम, 1952
मिस्री	मिस्र	38.5	36.4	ऑस्कर एवं राघव, 1952
मुर्रा	भारत	33.7	32.1	रेड्डी एवं रामकृष्ण, 1960
इटेलियन	इटली	41.6	–	मैमोन एवं बरगोनगिनि, 1960
मुर्रा	भारत	29.1	28.4	अग्रवाल, 1962
मुर्रा	भारत	33.5	32.0	नॉम्बियार एवं राजा, 1962
मुर्रा	भारत	28.0	23.2	राय एवं लुकटिके, 1962
मराठवाडा	भारत	24.4	22.7	हाड़ी, 1965
मुर्रा	भारत	29.3	31.4	सिंह, 1971
देसी	भारत	28.4	34.0	सिंह, 1971
मुर्रा	भारत	28.5	–	कोट्‌या, 1972
मुर्रा	भारत	–	29.1	राठी, 1973
मुर्रा	भारत	–	29.3	नौटियाल, 1973
नीली–रावी	भारत	–	30.5	नौटियाल, 1973
नीली–रावी	पाकिस्तान	39.0	37.5	वाहिद, 1973
नीली ग्रेड	भारत	–	29.9	नौटियाल, 1973
मेहसाना	भारत	16.0 से 140.0	–	नागरसंकर, 1975

नियंत्रण प्रणाली से किया जाता है। गर्भाशय के संक्रमण रहित वातावरण में भ्रूण को किसी प्रकार का रोग नहीं लगता है। जन्म के पश्चात शावकों को निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

1. बाह्य वातावरण के साथ वायु संबंधी विनमय को पुनः स्थापित करना एवं श्वसन क्रिया को प्रारंभ करना।

2. ठंडे वातावरण में शारीरिक ताप को नियंत्रित करना।

3. उच्च ऊर्जा वाली खीस को पचाने के लिए पाचन क्रिया का प्रारंभ करना।

4. रोग फैलाने वाले सूक्ष्म–जीवियों से स्वयं की रक्षा करनां

जन्म लेने वाले बच्चे एवं जच्चे (मादा) की देखभाल अति महत्वपूर्ण है। इस अवसर पर यदि सावधानीपूर्वक देखभाल न की जाए तो मादा का उत्पादन और बच्चे की वृद्धि कुप्रभावित हो सकती है। साधारणतः मादा की विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं होती है और वे बच्चे की भी देखभाल कर लेती है परन्तु यदि माँ बच्चे को स्वीकारने से मना कर दे, तो देखभाल करने वाले के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह बच्चे की स्वयं देखभाल करे। बच्चे के जन्म के तुरंत पश्चात् उनके मुंह एवं नथुनों से म्युकस निकाल देना चाहिए जिससे वह ठीक से सांस ले सके। यदि श्वसन प्रारंभ न हो तो वक्ष की दीवारों को एकांतर से दबा कर कृत्रिम श्वसन देना चाहिये। बच्चे के शरीर को मोटे कपड़े से रगड़ कर रक्त प्रवाह में सहायता करना चाहिये। नवजात बछड़ों को अधिक गर्म एवं सर्द मौसम से बचाना चाहिये। यदि बछड़ा निर्बल हो अथवा एक या दो घंटों में स्वयं खड़ा होकर दूध पीने में असमर्थ हो तो उसे सहारा देकर खड़ा करना चाहिये और दूध पिलाना चाहिए।

नाड़ (नाभि) बांधना

जन्म के पश्चात नाड़ का ठीक से उपचार न करने पर जीवाणु पशु के रक्त द्वारा ऊतकों तक पहुंचकर भयंकर रोग उत्पन्न कर सकते हैं। बछड़ों के उत्पन्न होने के पश्चात नाभि को 5 से.मी. की लंबाई तक छोड़ कर विसंक्रित कैंची से काटना चाहिये तथा इसके पश्चात रोगाणु–शोधक औषधि से पट्टी करने के पश्चात टिंचर आयोडीन में भीगी रूई नाड़ के अंदर प्रविष्ट कर देना चाहिये और नाड़ को बांध देना चाहिए। तीन–चार दिनों के पश्चात निष्क्रिय ऊतकों के साथ रूई गिर जाती है और नाभि पूर्ण–रूपेण ठीक हो जाती है।

बछड़ों की मृत्यु दर

भैंस के बछड़ों में, मां द्वारा प्लेसेन्टा से भ्रूण तक रोगप्रतिकारकों के न पहुंच सकने के कारण 20.0 प्रतिशत (गिल, 1978) से 40.0 प्रतिशत (राय, 1978) मृत्यु दर पाई गई है। जन्म के 30 दिनों के अंदर मृत्यु मुख्यतः दस्तों

के कारण होती है। इसका एक मुख्य कारण न्युमोनिया भी है। कुछ संगठित फार्मों पर पर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं एवं देखरेख के कारण मृत्यु–दर मात्र 8.61 प्रतिशत प्रकाशित की गई है। बछड़ों की मृत्यु की दृष्टि से जन्म के प्रारम्भिक 10 दिन अत्याधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

नवजात शावकों को खीस खिलाना

जन्म के तुरंत पश्चात बच्चों को खीस की उचित मात्रा प्रदान करना आवश्यक है। खीस में मातृक–प्रतिरोधी (एन्टीबॉडी) प्रोटीन, वसा एवं लैक्टोज पदार्थ पाये जाते हैं। प्रतिरोधी शावकों को रोग के संक्रमण से बचाते हैं। जन्म के समय शिशु के शरीर में रोग के सूक्ष्मजीवियों से संघर्ष करके अपनी रक्षा करने की प्रणाली विकसित नहीं होती है और वे सुगमता से रोग का संक्रमण करने वाले सूक्ष्मजीवियों का शिकार हो जाते हैं। शिशु के पाचन संस्थान की भांति एन्टीबॉडीस के लिए, जन्म के कुछ समय पश्चात तक पारगम्य होती है। जन्म के पश्चात यह पारगम्यता कम होना प्रारंभ हो जाती है और लगभग 24 घंटों में समाप्त हो जाती है। जो शावक जन्म के समय दुर्बल होते हैं और खीस ग्रहण करने में कठिनाई अनुभव करते हैं, आगामी जीवन में अच्छा स्वास्थ्य बनाये रखने में सफल नहीं होते हैं।

जन्म के पश्चात् विभिन्न समयों तक खीस खिलाने के अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि यद्यपि बच्चों के पाचन संस्थान की भांति जन्म के लगभग 24 घंटे पश्चात तक खीस के एंटीबाडीस का शोषण कर सकती है तथापि गामाग्लोब्युलिन का उच्च स्तर उन बच्चों के रक्त में ही अधिक समय तक रहता है जिन्हें जन्म के 15 मिनट पश्चात् ही खीस प्रदान कर दी जाती है। खीस का उच्च पोषक मूल्य (अध्याय 10; सारणी 10.3) तथा रोचक प्रवृति बच्चों को पोषण प्रदान करता है और पशु की आहार नलिका से विष्ठा को बाहर निकाल कर उसकी सफाई करता है।

सूरती भैंस की खीस एवं दूध में कुल इम्युग्लोब्युलिन की औसत सान्द्रता सारणी 9.2 में प्रदर्शित की गई है। जनम के समय यदि बच्चों को माँ से पृथक करके खीस खिलाया जाए तो स्वस्थ बच्चे सुगमता से बाल्टी से खीस पी लेते हैं परन्तु दुर्बल बच्चों को प्रशिक्षित करना पड़ता है और उन्हें दूध की बोतल द्वारा खीस पिलाया जाता है।

यदि मां से खीस उपलब्ध न हो तो उो अंडों एवं 30 मि.लि. अरंडी के तेल को मिलाकर पिलाने से समान प्रतिरोधी क्षमता बछड़े को प्राप्त हो सकती है। शावकों के शरीर में मां के सीरम का टीका लगाने से भी एण्डीबॉडी उनके शरीर में पहुंच सकते हैं।

एन्टीबायोटिक खिलाना तथा निवारक उपचार

तीन माह की आयु तक बछड़ों का रूमेन कार्य करना प्रारंभ नहीं करता है और इस समय उसे एन्टीबायोटिक देना आवश्यक होता हैं इनसे बछड़ों को रोग सहन करने की क्षमता प्राप्त होती है तथा उनकी वृद्धि में भी ये एन्टीबायोटिक सहायक होते हैं। बछड़ों के सफेद दस्तों को 45 कि.ग्रा. शारीरिक भार पर 45 मि.ग्रा. ऑरोमाइसिन खिलाकर ठीक किया जा सकता है। इसके स्थान पर प्रति 45 कि.ग्रा. भार पर 30 मि.ग्रा. टेरामाइसिन खिलाने पर भी यह रोग ठीक हो जाता है। एन्टीबायोटिक के प्रयोग से मांसपेशियों एवं अस्थिपंजर के आकार में भी वृद्धि होती है और बछड़ों के आहार ग्रहण की मात्रा भी बढ़ जाती है।

बछड़ों को माह में एक बार कृमि रहित (डी–वार्मिंग) करना चाहिये तथा सप्ताह में एक बार तेल में मिलाकर विटामिन ए (10,000 अंतर्राष्ट्रीय एकक) संक्रमणरोधी के रूप में देना चाहिये। बछड़ों के गृहों को प्रतिदिन निसंक्रामक से उपचारित करना चाहिये। बछड़ों को बाह्य परोपजीवियों से बचाने के भी प्रयास करने चाहिये। शीत ऋतु में बिछावन (धान का पुआल) का प्रयोग किया जाना चाहिये परंतु अन्य ऋतुओं में नहीं। जन्म से पांच दिनों तक नवजात बछड़ों को शीत वायु के झोंकों से बचाना चाहिये। इसके लिये यदि आवश्यक हो तो बछड़ा गृहों में अंगीठी का भी प्रयोग किया जाये, जूट के पर्दों का भी प्रयोग किया जा सकता है। बछड़ों के शरीर पर मोटे कपड़ों को भी बांधा जा सकता है।

शावकों में आहार पाचन

खीस शावकों की मात्र रोगों के संक्रमण से ही रक्षा नहीं करती, अपितु उन्हें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, कुल ठोस एवं वसा भी प्रदान करती है। भैंसों में खीस को सामान्य दूध में परिवर्तित होने में लगभग 3 दिन लगते हैं।

सारणी-9.2 कुल इम्युनोग्लोब्युलिन का भैंस की खीस एवं दूध में सांद्रता (मि.ग्रा./मि.ली.)

भैंस	ब्यात की दशा (दिनों में)							
	1	2	3	10	15	20	25	30
ओसर	28.60 ± 2.60	11.20 ± 2.23	6.80 ± 0.70	3.56 ± 0.06	3.83 ± 0.08	3.90 ± 0.03	2.79 ± 0.05	3.08 ± 0.01
धमक	41.60 ± 3.25	13.30 ± 1.22	3.62 ± 0.80	3.02 ± 0.07	3.11 ± 0.01	2.59 ± 0.09	2.58 ± 0.05	3.08 ± 0.01

परमार एवं मेहता (1987)

जब तक तरल आहार बच्चों को प्रदान किया जाता है आहार का पाचन मुख्य रूप से एबोमेज़म में होता है। ठोस पदार्थों को आहार में प्रदान करने के साथ ही जटिल जठर (कॉम्पलेक्स स्टोमक) का क्रमिक विकास (चित्र 9.1) प्रारंभ हो जाता है (सारणी 9.3)।

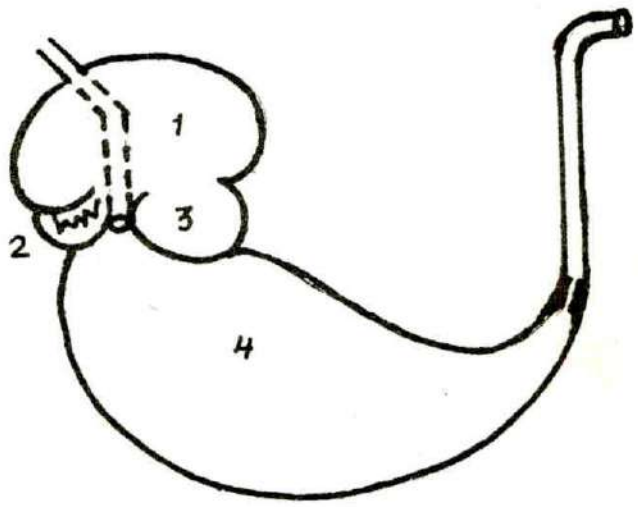

चित्र-9.1 नवजात शिशु का पेट
1. रूमेन; 2. रेटीकुलम; 3. ओमेजम; 4. एबोमेजम

सारणी-9.3 भैंसों के जटिल जठर का प्रतिशत विकास

	आयु (सप्ताह)						
जठर का भाग	0	4	8	12	16	20	24
रूमेन एवं रेटीकुलम	38	52	60	64	67	64	64
ओमेज़म	13	12	13	14	18	22	25
एबोमेज़म	49	36	17	22	15	14	11

कार्यकारी एवं संरचनात्मक विकास की दृष्टि से भैंसों के बच्चों के पाचन संस्थान की प्रमुख तीन निम्न अवस्थायें होती हैं।

1. साधारण अथवा एक आमाशय वाला पाचन

इस अवस्था में दूध एवं खीस जैसे तरल पदार्थ जो कि अति पाचनशील हैं, बच्चों को खिलाये जाते हैं। यह अवस्था लगभग 15 दिनों तक चलती है।

2. पाचन की कार्य सम्पादन (ट्रांजेक्सनल) अवस्था

इस अवस्था में पाचन संस्थान में इस प्रकार के परिवर्तन होना प्रारंभ हो जाते हैं कि बच्चे ठोस पदार्थों का भी पाचन कर सकें। तरल तथा दाना मिश्रण इस अवस्था के प्रारंभ में परंतु दाना मिश्रण एवं रेशेदार (फाइबर वाले) आहार इस अवस्था के अन्तिम समय में भली–भांति पचाये जा सकते हैं। यह अवस्था 15 दिनों से 3 माह की होती है।

3. रोमंथी अथवा बहु आमाशीय पाचन

इस अवस्था को प्राप्त होने तक पशु के जटिल जठर का विकास पूर्ण हो जाता है और पशु में रेशेदार (फाइबर) खाद्य पदार्थों को पचाने की पूर्ण क्षमता आ जाती है। तीन माह की आयु से जीवन पर्यन्त यह अवस्था चलती है।

भैंस के बच्चों की आहार व्यवस्था करते समय उनके जठर के विकास की विभिन्न दशाओं को ध्यान रखना चाहिये और उसी के अनुसार बच्चों को तरल तथा ठोस पदार्थ आहार में प्रदान करने चाहिये।

इस अवस्था में बच्चों को दूध देने पर वह ईसोफेगस के द्वारा सीधा एबोमेज़म में चला जाता है। यहां पर रेनेट के प्रभाव से दूध जम जाता है और जठर की आंतरिक गति से छोटे–छोटे टुकड़ों में बंट जाता है। इसके अंदर जो एन्टीबॉडीज पाई जाती हैं वे छोटी आंत में चली जाती हैं और आयु के अनुरूप शोषित कर ली जाती हैं। ब्यांत के साथ ही खीस एवं दूध में एन्टीबाडीज की मात्रा में परिवर्तन हो जाता है। खीस एवं दूध में उपस्थित प्रोटीन एवं वसा का आंशिक पाचन एबोमेजम में तथा आंशिक छोटी आंत में होता है।

जन्म के थोड़े समय पश्चात शावक अपने मुंह की सहायता से घास तथा अन्य वस्तुओं को पहचानना प्रारंभ कर देते हैं। लगभग 2 सप्ताह की आयु तक बच्चों को खाने योग्य एवं अयोग्य पदार्थ का ज्ञान हो जाता है। अतः आवश्यक है कि 15 दिन की अल्पायु से ही उनके समक्ष ठोस आहार रखने प्रारंभ कर देने चाहिये। जितना शीघ्र बच्चे ठोस पदार्थ खाना प्रारंभ कर देंगे, उनके जठर का विकास भी उतना ही शीघ्र सम्पन्न होगा और बच्चों को वयस्क होने की आयु तक दूध पर कम व्यय होगा। अधिक समय तक दूध प्रदान करने में जटिल जठर के विकास में देरी होती है और बच्चों का पोषण महंगा पड़ता है (चित्र 9.2)।

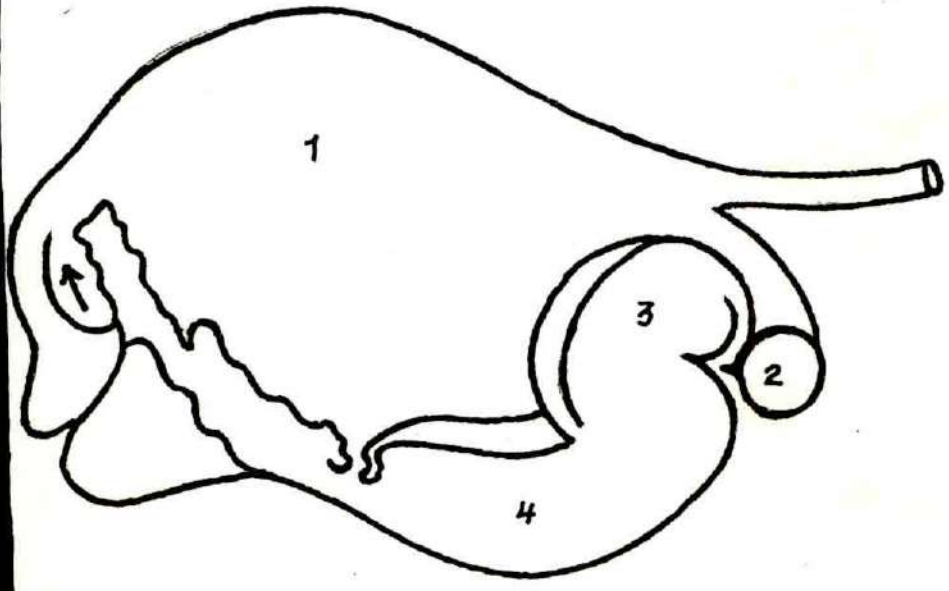

चित्र-9.2 भैंस का जटिल पेट (जठर)
1. रूमेन; 2. रेटीकुलम; 3. ओमेजम; 4. एबोमेजम

यद्यपि तीन माह की आयु में रूमेन का पूर्ण विकास हो जाता है परन्तु सामान्य वृद्धि के लिये उस समय मात्र घासें पोषक तत्व प्रदान करने में अपर्याप्त होती हैं अतः बच्चों के पोषक तत्वों की पूर्ति दाना मिश्रण से करना चाहिये।

बछड़ों की आहार व्यवस्था

भैंस के बछड़ों का आहार व्यवस्था मुख्यतः दो प्रकार से की जा सकती है।

1. थनों से लगकर दूध पीना

इसमें बछड़ों को प्राकृतिक विधि से स्तनपान कराया जाता है और बछड़े अपनी इच्छानुसार शुद्ध दूध के द्वारा लगभग सभी पौष्टिक तत्वों को ग्रहण कर पाते हैं जिससे उनकी समुचित शारीरिक वृद्धि होती है।

2. वीनिंग पद्धति

बछड़ों को कम अथवा अधिक मात्रा में दूध पिलाना दोनों ही हानिकारक हैं इससे बछड़ों की वृद्धि में गिरावट आ सकती है अथवा उनको रोग लग सकते हैं। अधिक मात्रा में बछड़ों को दूध पिलाने से बड़ी आंत में अवांछित सड़न होने लगती है और रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीवियों को उत्पन्न होने से आंत्रशोथ हो जाता है। यद्यपि भैंसों में माँ से अलग हटाकर बछड़ों को पालना कठिन और समस्यापूर्ण है परन्तु औसरों में यह कार्य सुगमता से किया जा सकता है। यदि आवश्यक हो और भैंस दूध उतारने में कठिनाई उत्पन्न करें तो एक ही बछड़े को कई मादाओं के दूध उतारने के लिये प्रयोग किया जा सकता है जिससे शेष अन्य बछड़ों का स्तनत्याग किया जा सके।

बछड़ों को दूध पिलाने का कार्यक्रम

भैंस के बछड़ों में सर्वोत्तम आहार क्षमता (1.16 कि.ग्रा. दूध के शुष्क पदार्थ पर) 1 कि.ग्रा. वृद्धि दर पाई गई है। दूध में उपस्थित तत्वों को पचाने में बछड़ों का आमाशय एवं आंत प्रणाली पूर्ण रूप से सक्षम है। बच्चों को दस्तों से बचाने के लिये आवश्यक है कि उन्हें शरीर के भार के अनुरूप दूध प्रदान किया जाए। वीनिंग वाले बछड़ों को शरीर के ताप पर गर्म दूध दिया जाये। इस दूध में लोहा, तांबा, मैगनीशियम, जिंक एवं मैंगनीज जो कि दूध में निम्न मात्रा में होते हैं, मिलाकर पिलाना चाहिये। बछड़ों के रूमेन के विकास के लिये 15 दिन

की आयु के पश्चात प्रतिदिन 100 ग्राम शुष्क पदार्थ हरे चारों के द्वारा प्रदान करना चाहिये। सारणी 9.4 में अरोड़ा (1988) के अनुसार बछड़ों को दूध पिलाने का कार्यक्रम दिया गया है।

सारणी-9.4 विभिन्न दशाओं में दूध पिलाने का कार्यक्रम

(अ)

आयु (दिन)	खीस	दूध
1–4	शरीर भार का 1/10	–
0–90	–	शरीर भार का 1/10

यद्यपि यह कार्यक्रम मंहगा है परन्तु इस पर सर्वोत्तम वृद्धि दर होती है।

(ब)

शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	आयु (दिन)	खीस	दूध
30 तक	0–4	शरीर भार का 1/10	–
30 तक	5–90	–	शरीर भार का 1/10
31–60	5–90	–	+शरीर भार का 1/20

इसी कार्यक्रम के अनुसार 26 कि.ग्रा. शारीरिक भार से 54 कि.ग्रा. शारीरिक भार तक वृद्धि करने में 3 माह का समय लगता है।

(स)

शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	आयु (दिन)	खीस	दूध	सप्रेटा दूध
30 तक	0–5	शारीरिक भार का 1/10	–	–
30 तक	6–30	–	शारीरिक भार का 1/10	–

25–30	31–60	–	शारीरिक भार का 1/15	शारीरिक भार का 1/25
35–70	61–90	–	शारीरिक भार का 1/25	शारीरिक भार का 1/15

(द)

आयु	खीस अथवा दूध पिलाने की दर (लिटर)
1–4 दिन	3.0
5–15 दिन	3.0
16–28 दिन	3.5
1–2 माह	4.0
2–3 माह	4.5

इसके पश्चात प्रति चार दिनों के पश्चात 1 कि.ग्रा. दूध कम कर दिया जाता है।

बछड़ों को दूध प्रतिस्थापक खिलाना

दूध प्रतिस्थापक मिश्रित आहार दूध की अपेक्षा सस्ता पाया गया है। इसे दूध के स्थान पर छोटे बछड़ों को खिलाया जाता है। छोटी आयु में बछड़ों द्वारा अधिक आहार न खा सकने के कारण, दूध प्रतिस्थापक खिलाने की आवश्यकता पड़ती है। बछड़ों को दूध प्रतिस्थापक दूध के शुष्क पदार्थ के बराबर खिलाया जाता है। दूध प्रतिस्थापक दूध के विस्तृत संघटन के अनुरूप होना चाहिये जिसमें प्रोटीन, अमीनो अम्ल, वाष्पशील वसा अम्लें, खनिज एवं विटामिनें, गुण और मात्रा दोनो ही दृष्टि से पूर्ण हों (सारणी 9.5), दूध प्रतिस्थापक का जैविक मूल्य दूध के बराबर होना चाहिये और उसमें कच्चे रेशे (क्रूड फाइवर) की मात्रा कम होनी चाहिये।

सारणी-9.5 दूध प्रतिस्थापक का संघटन

पदार्थ	मात्रा (कि.ग्रा.)
गेहूं	10.0
मछली का चूरा	12.0
अलसी का चूरा	40.0
दूध	13.0
बिनौले का तेल/गोला	7.0
सिट्रिक अम्ल	1.39
शीरा	10.0
खनिज	3.0
अलसी का तेल[2]	3.0
ब्युटिरिक अम्ल	0.3
एण्टीबायोटिक मिश्रण	0.3
रोवीमिक्स, ए.बी.डी.	0.015
	कुल योग = 100.00

1. खनिज मिश्रण प्रति 3 कि.ग्रा. पर – डाइकैल्शियम फॉस्फेट 1.6500; सोडियम क्लोराइड, 0.9000; खड़िया 0.3312; मैगनीशियम कार्बोनेट 0.0900; फेरस सल्फेट 0.0150; कॉपर सल्फेट 0.0021; मैंगनीज डाइ ऑक्साइड 0.0021; कोबाल्ट क्लोराइड, 0.0015; पोटेशियम आयोडाइड 0.003; सोडियम फ्लुओराइड 0.0003 एवं जिंक सल्फेट 0.0075 कि. ग्रा. (कुल योग 3.0 कि.ग्रा.)।
2. अलसी के तेल से पर्याप्त मात्रा में लिनोलिनिक अम्ल प्राप्त होती है।

मानव उपयोग के लिये दूध बचाने के लिये तथा दूध में पाये जाने वाले पौष्टिक तत्वों को बछड़ों को प्रदान करने के लिये बछड़ों को दूध प्रतिस्थापक प्रदान किया जाता है। इसका 200 ग्राम प्रति कि.ग्रा. दूध के स्थान पर धीरे–धीरे खिलाना चाहिये। दूध के खिलाने का समान्य सिद्धांत शरीर के भार के 1/10वें

भाग के भार से 1/2 कि.ग्रा. कम मात्रा होनी चाहिये। बछड़े दूध में पाये जाने वाले पौष्टिक तत्व लैक्टोज, प्रोटीन को भली–भांति पचा लेते हैं परन्तु अन्य कार्बोहाइड्रेट को पचाने में समय लगता है। दूध प्रतिस्थापक के साथ कम से कम एक लिटर दूध प्रतिदिन होना चाहिये और इसमें 6 गुना गर्म पानी मिला कर पिलाना चाहिये। सामान्यतः 10 दिनों से कम आयु के बच्चे दूध प्रतिस्थापक पसंद नहीं करते हैं। दूध प्रतिस्थापक खिला कर पाले गये बच्चों की वृद्धि में कोई असामान्यता नहीं होती है और न ही उनकी वयस्कता की आयु अथवा ब्यांत के उत्पादन पर कोई प्रभाव पड़ता है।

सारणी-9.6 दूध प्रतिस्थापक खिलाने का कार्यक्रम

आयु (दिन)	शारीरिक भार (कि.ग्रा.)	खीस	दूध	दूध प्रतिस्थापक (ग्राम)
1–5	–	शारीरिक भार का 1/10		–
6–9	–	–	शारीरिक भार का 1/10	–
10–13	–	–	उपर्युक्त	50
14–17	–	–	उपर्युक्त	100
18–21	–	–	1/2 कि.ग्रा. कम	175
22–25	–	–	1 कि.ग्रा. कम	250
26–29	–	–	1.5 कि.ग्रा. कम	325
30–33	35	–	2.0 कि.ग्रा. कम	375
34–36	40	–	2.5 कि.ग्रा. कम	450
–	40	–	1.5 कि.ग्रा.	450
–	45	–	1.5 कि.ग्रा.	525
–	50	–	1.5 कि.ग्रा.	600
–	55	–	1.5 कि.ग्रा.	800
–	60	–	1.0 कि.ग्रा.	900
–	65	–	1.0 कि.ग्रा.	950
–	70	–	1.0 कि.ग्रा.	1000

तीन माह से अधिक आयु के बछड़ों की आहार व्यवस्था

शारीरिक भार के अतिरिक्त 3 माह के अनेक बच्चों में सूक्ष्म जीवी किण्वन के लिये रूमेन का विकास हो जाता है। दूध एवं दूध प्रतिस्थापकों का मूल्य अधिक होने के कारण, इस आयु के पश्चात इन खाद्य पदार्थों का खिलाना आर्थिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है। अतः इस आयु के पश्चात 22.0 प्रतिशत कच्ची प्रोटीन (18.0 प्रतिशत पाचनशील कच्ची प्रोटीन) एवं 72 प्रतिशत कुल पाचनशील तत्वों वाला काफ स्टार्टर तीन माह से आगे की आयु में खिलाया जा सकता है। इसमें कुल प्रोटीन की 25 प्रतिशत पशु प्रोटीन होना चाहिये क्योंकि उचित वृद्धि आवश्यक अमीनो अम्लों के कारण इसको आवश्यक माना जाता है। इसके अतिरिक्त काफ स्टार्टर में पर्याप्त खनिज एवं विटामिन होना चाहिये। आवश्यकता से अधिक बछड़े, जन्म के पश्चात जितना शीघ्र हो, विक्रय कर देना चाहिए क्योंकि 3 माह की आयु तक भी उन्हें दूध पर रखना आर्थिक दृष्टि से मंहगा पड़ता है। नर बछड़ों को मांस अथवा कार्य करने के लिए पाला जा सकता है।

इस देश के विभिन्न स्थानों पर स्थानीय खाद्य पदार्थों की उपलब्धता के आधार पर विभिन्न काफ स्टार्टर बनाये जा सकते हैं।

सारणी-9.7 उत्तरी एवं पश्चिमी प्रदेशों के लिए काफ स्टार्टर

खाद्य पदार्थ	अनुपात	कुल प्रोटीन (%)	पाचनशील प्रोटीन (%)	कुल पाचन शील तत्व (%)
मक्का	42	3.78	2.94	33.60
मूंखफली की खल	28	11.20	9.80	21.00
मछली का चूरा	7	4.90	4.55	5.60
गेहूं का चोकर	20	3.20	2.00	12.00
खनिज	3	–	–	–
कुल योग		23.08	19.29	72.20

सारणी-9.8 दक्षिणी प्रदेशों के लिए काफ स्टार्टर

खाद्य पदार्थ	अनुपात	कुल प्रोटीन (%)	पाचनशील प्रोटीन (%)	कुल पाचन शील तत्व (%)
टेपियोका आटा	25	0.75	0.50	20.00
तिल की खल	30	12.00	10.50	22.50
गोले की खल	15	3.60	3.00	11.25
मछली चूरा	7	4.90	4.55	5.60
धान का चोकर	20	2.60	1.60	12.00
खनिज	3	–	–	–
कुल योग		23.85	20.15	71.35

सारणी-9.9 केन्द्रीय राज्यों के लिए काफ स्टार्टर

खाद्य पदार्थ	अनुपात	कुल प्रोटीन (%)	पाचनशील प्रोटीन (%)	कुल पाचन शील तत्व (%)
मक्का	30	2.70	2.10	24.0
अलसी की खल	40	12.00	10.00	30.0
मछली का चूरा	7	4.90	4.55	5.6
धान का चोकर	10	1.30	0.80	6.0
गेहूं का चोकर	10	1.60	1.00	6.0
खनिज	3	–	–	–
कुल योग		22.50	18.45	71.6

सारणी-9.10 पूर्वी प्रदेशों के लिए काफ स्टार्टर

खाद्य पदार्थ	अनुपात	कुल प्रोटीन (%)	पाचनशील प्रोटीन (%)	कुल पाचन शील तत्व (%)
मक्का	30	2.70	2.10	24.0
चना	10	2.50	2.00	8.0
मूंगफली की खल	20	8.0	7.00	15.0
मछली का चूरा	7	4.90	4.55	5.60
अलसी की खल	10	3.00	2.50	7.50
धान का चोकर	20	2.60	1.60	12.00
खनिज	3	–	–	–
कुल योग		23.70	19.75	72.10

अरोड़ा, 1988

बछड़ों को दाना खिलाना

काफ स्टार्टर 45 दिनों की आयु के पूर्व से भी खिलाया जा सकता है। दूध तथा वसा रहित दूध के साथ काफ स्टार्टर बछड़ों की उचित वृद्धि के लिए लाभदायक है तथापि 90 दिनों की आयु के पश्चात पशु प्रोटीन रहित साधारण दाना मिश्रण खिलाया जा सकता है परन्तु ऐसे आहार में 22 प्रतिशत प्रोटीन तथा 72 प्रतिशत कुल पाचनशील तत्व होने चाहिये। दूध वाले आहार से दूध रहित आहार का परिवर्तन धीरे–धीरे होना चाहिये जिससे वृद्धि पर कुप्रभाव न पड़े।

अरोड़ा (1988) ने कुछ आहार कार्यक्रम देश के विभिन्न भागों के लिये सुझाये हैं (सारणी 9.11 से 9.14)।

सारणी-9.11 उत्तरी एवं पश्चिमी प्रदेशों के लिये दाना मिश्रण

खाद्य पदार्थ	अनुपात	कुल प्रोटीन (%)	पाचनशील प्रोटीन (%)	कुल पाचन शील तत्व (%)
मक्का	35	3.15	2.45	28.00
मूंगफली की खल (छिलका रहित)	42	16.80	14.70	31.50
गेहूं का चोकर	20	3.20	2.40	13.00
खनिज	3	–	–	–
कुल योग		23.15	19.55	72.50

सारणी-9.12 दक्षिणी प्रदेशों के लिये दाना मिश्रण

खाद्य पदार्थ	अनुपात	कुल प्रोटीन (%)	पाचनशील प्रोटीन (%)	कुल पाचन शील तत्व (%)
टेपियोका आटा	25	0.75	0.50	20.00
तिल का आटा	30	12.00	10.50	22.50
मूंगफली की खल	15	3.60	3.00	11.25
शीरा	10	–	–	6.50
धान का चोकर	20	2.60	1.60	12.00
खनिज	–	–	–	–
कुल योग		18.95	15.60	72.25

सारणी-9.13 केन्द्रीय प्रदेशों के लिये दाना मिश्रण

खाद्य पदार्थ	अनुपात	कुल प्रोटीन (%)	पाचनशील प्रोटीन (%)	कुल पाचन शील तत्व (%)
जौ	17	2.04	1.53	13.60
अलसी की खल	30	9.00	7.50	22.50
रामतिल खल	30	9.00	7.50	22.50
गेहूं का चोकर	10	1.60	1.20	6.50
चावल का चोकर	10	1.30	0.90	6.50
खनिज	3	–	–	–
कुल योग		22.94	18.63	71.60

सारणी-9.14 पूर्वी प्रदेशों के लिये दाना मिश्रण

खाद्य पदार्थ	अनुपात	कुल प्रोटीन (%)	पाचनशील प्रोटीन (%)	कुल पाचन शील तत्व (%)
मक्का	27	2.43	1.89	21.60
चना	10	2.50	2.00	8.00
मूंगफली की खल	520	8.00	7.50	15.00
अलसी की खल	10	3.00	2.50	7.50
चावल का चोकर	20	2.60	1.60	12.00
शीरा	10	–	–	6.50
खनिज	3	–	–	–
कुल योग		18.53	15.49	70.60

3 माह की आयु में बछड़े चारे भी खा सकते हैं अतः उनका आहार शारीरिक भार के आधार पर बनाया जाना चाहिये जिसमें रसदार हरे चारे सम्मिलित हों। प्रति 50 कि.ग्रा. शारीरिक भार वृद्धि पर आहार की पुनः गणना की जानी चाहिये जैसे–जैसे भार बढ़ता जाए दाना मिश्रण की मात्रा कम कर देनी चाहिये और आहार में निम्न कोटि के चारे (गेहूं एवं धान के भूसे) भी सम्मिलित किये जा सकते हैं परन्तु पाचनशील पदार्थ, पाचनशील प्रोटीन, कुल पाचनशील तत्व की आवश्यकता की पूर्ति अवश्य ही होनी चाहिये। अच्छी गुणवत्ता वाले द्विदलीय हरे चारे के प्राप्त न होने पर दाना मिश्रण की मात्रा बढ़ाना चाहिये (सारणी 9.15)।

सारणी-9.15 विभिन्न शारीरिक भार एवं खाद्य पदार्थों से संतुतिल आहार की गणना

(अ)

खाद्य पदार्थ	मात्रा (कि.ग्रा.)	शुष्क पदार्थ (कि.ग्रा.)	पाचनशील प्रोटीन (कि.ग्रा.)	कुल पाचनशील तत्व (कि.ग्रा.)
300 कि.ग्रा. भार पर आवश्यकता	7.5	0.47	4.0	
गेहूं/धान का भूसा (शुष्क पदार्थ 90%)	2.75	2.5	–	1.0
ज्वार चारा (शुष्क पदार्थ 20%)	17.5	3.5	0.14	1.92
दाना मिश्रण (शुष्क पदार्थ 90%)	1.63	1.5	0.29	1.08

(ब)

खाद्य पदार्थ	मात्रा (कि.ग्रा.)	शुष्क पदार्थ (कि.ग्रा.)	पाचनशील प्रोटीन (कि.ग्रा.)	कुल पाचनशील तत्व (कि.ग्रा.)
400 कि.ग्रा. भार पर आवश्यकता	11.0	0.48	5.0	
गेहूं/धान का भूसा (शुष्क पदार्थ 90%)	7.15	6.5	–	2.6
बरसीम/लूसर्न (शुष्क पदार्थ 15%)	22.75	3.5	0.31	1.92
दाना मिश्रण (शुष्क पदार्थ 90%)	1.10	1.0	0.19	0.72

सेन एवं रे (1971)

(स)

खाद्य पदार्थ	मात्रा (कि.ग्रा.)	शुष्क पदार्थ (कि.ग्रा.)	पाचनशील प्रोटीन (कि.ग्रा.)	कुल पाचनशील तत्व (कि.ग्रा.)
450 कि.ग्रा. भार पर आवश्यकता		11.0	0.48	5.0
गेहूं/धान का भूसा (शुष्क पदार्थ 90%)	9.35	8.5	–	3.4
गेहूं का भूसा (शुष्क पदार्थ 90%)	9.35	8.5	–	3.4
दाना मिश्रण (शुष्क पदार्थ 90%)	2.75	2.5	0.49	1.8

रोमन्थी पशुओं में छः माह की आयु से ही बिना प्रोटीन वाले नाइट्रोजन पदार्थों (यूरिया, अमोनियम सल्फेट) का प्रयोग किया जा सकता है। कम मूल्य के कारण दाना मिश्रण में 3.0 प्रतिशत और संपूर्ण शुष्क पदार्थ के आधार पर 1.0 प्रतिशत की दर से इसे मिलाया जा सकता है (सारणी 9.16)।

सारणी-9.16 दाना मिश्रण में यूरिया मिश्रित करना

(अ)

खाद्य पदार्थ	मात्रा (प्रति 100) कि.ग्रा.	क्रूड प्रोटीन (%)
मक्का	50	4.50
मूंगफली की खल	10	4.00
गेहूं का चोकर	24	3.84
शीरा	10	–
खनिज	3	–
यूरिया	3	2.50
कुल योग		19.84

(ब)

खाद्य पदार्थ	मात्रा (प्रति 100) कि.ग्रा.	क्रूड प्रोटीन (%)
मक्का	37	3.33
मूंगफली की खल	25	10.00
गेहूं का चोकर	24	3.84
शीरा	10	–
खनिज	3	–
यूरिया	1	2.50
कुल योग		19.67